यू जी सी अनुमोदित पत्रिका
आई एस एस एन 0523-1418

अंक 312 वर्ष 63

भाषा

जनवरी–फरवरी 2024

आज़ादी का अमृत महोत्सव

सत्यमेव जयते

केंद्रीय हिंदी निदेशालय
उच्चतर शिक्षा विभाग
शिक्षा मंत्रालय, भारत सरकार

भाषा
जनवरी–फरवरी 2024

भाषा (द्वैमासिक)

लेखकों से अनुरोध

1. ***भाषा*** में छपने के लिए भेजी जाने वाली सामग्री यथासंभव सरल और सुबोध होनी चाहिए। रचनाएँ टंकित रूप में (यूनिकोड में) भेजी जाएँ। भेजी जानी वाली सामग्री के साथ रचनाकार कृपया अपनी पासपोर्ट आकार की फोटो, पूरा पता और अपना संक्षिप्त परिचय भी अवश्य भेजें।

2. लेख आदि सामान्यतः फुलस्केप आकार के दस टंकित पृष्ठों से अधिक नहीं होने चाहिए और हाशिया छोड़कर एक ओर ही टाइप किए जाने चाहिए। लेख इत्यादि रचनाएँ भेजते समय इस आशय का भी प्रमाण–पत्र भेजा जाय कि रचना अप्रकाशित है तथा किसी भी रूप में अन्यत्र प्रकाशित नहीं हुई है।

3. अनुवाद तथा लिप्यंतरण के साथ मूल लेखक की अनुमति भेजना अनिवार्य है। इससे रचना पर निर्णय लेने में हमें सुविधा होगी। मूल कविता का लिप्यंतरण टंकित होने पर उसकी वर्तनी संबंधी त्रुटियाँ प्रायः नहीं होंगी, अतः टंकित लिप्यंतरण ही अपेक्षित है। रचना में अपना नाम और पता हिंदी के साथ–साथ अंग्रेजी में भी देने का कष्ट करें।

4. सामग्री के प्रकाशन विषय में संपादक का निर्णय अंतिम माना जाएगा।

5. रचनाओं की अस्वीकृति के संबंध में अलग से कोई पत्राचार कर पाना हमारे लिए संभव नहीं है, अतः रचनाओं के साथ डाक टिकट लगा लिफाफा, पोस्टकार्ड आदि न भेंजे। इन पर कोई कार्रवाई नहीं की जाएगी।

6. अस्वीकृत रचनाएँ न लौटा पाने की विवशता/असमर्थता है। कृपया रचना प्रेषित करते समय इसकी प्रति अपने पास अवश्य रख लें।

7. भाषा में केंद्रीय हिंदी निदेशालय द्वारा स्वीकृत मानक हिंदी वर्तनी का प्रयोग किया जाता है। अतः रचनाएँ इसी वर्तनी के अनुसार टाइप करवाकर भेजी जाएँ।

8. समीक्षार्थ पुस्तकों की दो प्रतियाँ भेजी जानी चाहिए।

9. द्वैमासिक पत्रिका भाषा का ई–संस्करण केंद्रीय हिंदी निदेषालय की वेबसाइट (www.chdpublication.education.gov.in) पर देखा जा सकता है।

10. भाषा पत्रिका में प्रकाशित अंकों से संबंधित लेखकों/पाठकों की टिप्पणियों/सुझावों का स्वागत है। पत्रिका में प्रकाशित रचनाओं पर पाठकों की टिप्पणियों को 'आपने लिखा' शीर्षक के अंतर्गत प्रकाशित किया जाएगा।

संपादकीय कार्यालय

संपादक, भाषा, केंद्रीय हिंदी निदेशालय, पश्चिमी खंड–7, रामकृष्णपुरम,
नई दिल्ली–110066

भाषा

जनवरी–फरवरी 2024

विश्वविद्यालय अनुदान आयोग द्वारा अनुमोदित पत्रिका (क्रमांक–16)

अध्यक्ष, परामर्श एवं संपादन मंडल
प्रो. सुनील बाबुराव कुलकर्णी 'देशगव्हाणकर'

परामर्श मंडल
प्रो. सूर्यप्रसाद दीक्षित
सुश्री ममता कालिया
प्रो. सत्यकाम
प्रो. करुणाशंकर उपाध्याय
प्रो. पूरनचंद टंडन
प्रो. शैलेंद्र शर्मा
डॉ. एम. गोविंदराजन
डॉ. जे.एल.रेड्डी
श्री रविशंकर 'रवि'

संपादक
डॉ. अनिता डगोरे

सह–संपादक
डॉ. किरण झा
मीनाक्षी जंगपांगी

सहायक संपादक
श्री प्रदीप कुमार ठाकुर

कार्यालयीन व्यवस्था
विक्रान्त हुड्डा
संजीव कुमार

केंद्रीय हिंदी निदेशालय, उच्चतर शिक्षा विभाग,
शिक्षा मंत्रालय, भारत सरकार

ISSN 0523-1418
भाषा (द्वैमासिक)
वर्षः **63 अंकः 1 (312)**
जनवरी–फरवरी 2024

संपादकीय कार्यालय
केंद्रीय हिंदी निदेशालय,
उच्चतर शिक्षा विभाग,
शिक्षा मंत्रालय, भारत सरकार,
पश्चिमी खंड-7, रामकृष्णपुरम्,
नई दिल्ली-110066
वेबसाइटः www.chdpublication.education.gov.in
www.chd.education.gov.in
ई–मेलः bhashaunit@gmail.com
दूरभाषः 011-26105211è12

बिक्री केंद्रः
नियंत्रक,
प्रकाशन विभाग, सिविल लाइंस,
दिल्ली - 110054
वेबसाइटः www.deptpub.gov.in
ई–मेलः acop-dep@nic.in
दूरभाषः 011-23817823è 9689

सदस्यता हेतु ड्राफ्ट नियंत्रक,
प्रकाशन विभाग,
दिल्ली के पक्ष में भेजें।

बिक्री केंद्रः
केंद्रीय हिंदी निदेशालय,
उच्चतर शिक्षा विभाग,
शिक्षा मंत्रालय, भारत सरकार,
पश्चिमी खंड-7, रामकृष्णपुरम्,
नई दिल्ली-110066
वेबसाइटः www.chdpublication.education.gov.in
www.chd.education.gov.in
ई–मेलः bhashaunit@gmail.com
दूरभाषः 011–26105211 / 12

सदस्यता हेतु ड्राफ्ट निदेशक, केंद्रीय हिंदी निदेशालय,
नई दिल्ली के पक्ष में भेजें।

1. शुल्क सीधे www.bharatkosh.gov.in → Quick Payment → Ministry (007 Higher Education) → Purpose (Education receipt) में digital mode से जमा करवाई जा सकती है।
2. कृपया दिए गए बिंदुओं के आधार पर सूचनाएँ देते हुए संलग्न प्रोफॉर्मा भरकर भेजें।
3. भाषा पत्रिका की सदस्यता हेतु आवेदन पत्र निदेशालय की वेबसाइट www.chdpublication.education.gov.in से डाउनलोड किया जा सकता है।

मूल्य :			
1. एक प्रति का मूल्य	=	रु. 25.00	
2. वार्षिक सदस्यता शुल्क	=	रु. 125.00	
3. पंचवर्षीय सदस्यता शुल्क	=	रु. 625.00	(डाक खर्च सहित)
4. दस वर्षीय सदस्यता शुल्क	=	रु. 1250.00	
5. बीस वर्षीय सदस्यता शुल्क	=	रु. 2500.00	

पत्रिका में व्यक्त विचार लेखकों के अपने हैं। इनसे भारत सरकार या संपादन मंडल का सहमत होना अनिवार्य नहीं है।

अनुक्रमणिका

निदेशक की कलम से

संपादकीय

आलेख

1.	रवींद्र साहित्य के विविध पड़ाव	चक्रधर त्रिपाठी	09
2.	स्त्रीभाषा और हिंदी की स्त्री आलोचना का प्रश्न	सुधा सिंह	27
3.	आंचलिक उपन्यास और असमिया उपन्यासों में लोक चेतना एवं परंपरा	दिनेश कुमार चौबे	42
4.	विज्ञान संवाद की भाषा हिंदी : अनंत संभावनाएँ	ओम विकास	48
5.	हिंदी एवं अनुवादः दक्षिण भारतीय भाषा कन्नड के संदर्भ में	कोयल विश्वास	52
6.	राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 और आत्मनिर्भर भारत	ब्रजलता शर्मा	59
7.	भारतीय संगीत शिक्षा की परंपरा एवं राष्ट्रीय शिक्षा नीति–2020	प्रियंका	63
8.	भाषा, शिक्षण और बच्चों के अनुभव	गुंजन शर्मा अजय कुमार सिंह	73
9.	राष्ट्रभाषा के संदर्भ में काका कालेलकर के विचार	अमन कुमार	84
10.	हिंदी एवं पाश्चात्य साहित्य में पर्यावरणः समस्या एवं समाधान	प्रियंजन शर्मा	88
11.	आजादी के बाद का स्त्री और हिंदी साहित्य : राजेंद्र यादव के कथा साहित्य का विशेष संदर्भ	विवेकानंद यादव	98

12. जापान–भारत समन्वय सेतु : हिंदी सेवी तोमियो मिजोकामी	अखिलेश आर्येंदु	105
13. हिंदी फिल्मों का भाषिक परिप्रेक्ष्य	विजय कुमार मिश्र	109
14. आदिकाल से हिंदी की विकास यात्रा	वाय जी काले, अभिनय कुमार शर्मा	117
15. नाथ साहित्य की भाषिक संकल्पना का वैशिष्ट्य	राजेंद्र कुमार सेन	128
हिंदी कहानी		
16. रामरति का सुख	योगेंद्रनाथ शर्मा 'अरुण'	137
17. मौसम बदलते हैं	कुमकुम शर्मा	144
18. पहेली	रजनी दिसोदिया	150
हिंदी कविता		
19. बैसराण घाटी	राकेश रेणु	164
20. दरवाजे पर दस्तक	जसवीर त्यागी	165
अनूदित खंड (कहानी)		
21. गणित का पृष्ठ (असमिया / हिंदी)	मूल : रुमी लस्कर बोरा अनुवाद : विजय कुमार यादव	167
22. शेष पुष्प (जापानी / हिंदी)	मूल : नाकागामी केंजी अनुवाद : श्रीविलास सिंह	178
अनूदित खंड (कविता)		
23. मानवता का प्रवाह (तेलुगु / हिंदी)	मूल : सी. नारायण रेड्डी अनुवाद : मो. जमील अहमद	188 190
24. जंगली फूल (कुडुख / हिंदी)	मूल और अनुवादः पार्वती तिर्की	192
परख		
25. खुले मेरे ख्वाबों के पर धीरे–धीरे / रामदरश मिश्र की गजलें / सं. ओम निश्चल	वेदप्रकाश अमिताभ	194
26. टूटे पंखों से परवाज तक / सुमित्रा महरोल	विपिन बिहारी	196
संपर्क सूत्र		206
सदस्यता फॉर्म		210

निदेशक की कलम से

परिवर्तन शाश्वत एवं सतत घटित होने वाली प्रक्रिया है। जड़ता सदैव अवांछित ही रही है। जब किसी भी घटना या विकास के घटक के रूप में परिवर्तन को अनिवार्य स्वीकार्यता प्राप्त होती है तब वह नवीनता का संपोषक बन जाता है। जीर्ण गलित स्थापनाओं से मुक्ति ही जीवन पथ पर राह निर्मित करती है। इस समस्त प्रक्रिया में मात्र परिवर्तन का ही स्वर नहीं होता बल्कि परिमार्जन और संस्करण का भी महत्व है। ऐसा होने के फलस्वरूप ही हम प्रभावी रूप से अनुभव करते हैं कि हमने जिन राहों पर चलते–चलते यहाँ तक की यात्रा पूरी की है, उन मार्गों में काँटे तो थे जिसने कष्ट पहुँचाने का कार्य किया परंतु उन काँटों के कारण वह मार्ग महत्वहीन नहीं हुआ। बल्कि यह सोच विकसित हुई कि इन मार्गों को बाधारहित भी बनाया जा सकता है ताकि जीवनरूपी यात्रा के विभिन्न पड़ावों के सोपान सुगम हो पाएँ। अनिवार्य घटक के रूप में परिवर्तन स्वीकार्य हुआ।

'बहता पानी निर्मला' जल वही निर्मल है जिसमें नैरंतर्य है। जमा हुआ जल सड़ांध उत्पन्न करता है। निरंतरता के केंद्रीय तत्व के रूप में मंगल की कामना निहित होती है। यह विचार तब सर्वजन हिताय और सर्वजन सुखाय का स्वर बनता है। आर्चाय द्विवेदी का यह कथन "अगर निरंतर व्यवस्थाओं का संस्कार और परिमार्जन नहीं होता रहेगा तो एक दिन व्यवस्थाएँ तो टूटेंगी ही अपने साथ धर्म को भी तोड़ देंगी।" निरंतरता का ही आकांक्षी है। भारतीय मनीषा ने सदैव ज्ञान को आत्मसात करने के लिए अपने गवाक्ष खुले रखे ताकि वातायन बना रहे– "आनो भद्राः क्रतवो यन्तु विश्वत!" सभी दिशाओं से आने वाले ज्ञान को आत्मसात करना ध्येय रहा है। विचारों की जड़ता यहाँ कदापि स्वीकार्य नहीं है।

भारतवर्ष के कोने–कोने में व्याप्त संस्कृति और विचारों से हमारा साक्षात्कार हो, हमारे बीच समरसता स्थापित हो इसके लिए देशभर के साहित्य संसार को सुधी पाठकों तक पहुँचाने में भाषा पत्रिका सन्नद्ध है। अखिल भारतीय स्वरूप की परिचायक भाषा पत्रिका विभिन्न आस्वाद की रचनाओं के साथ विज्ञ पाठकों के समक्ष प्रस्तुत है। आशा है यह अंक पाठकों के लिए रूचिकर और ज्ञानवर्धक सिद्ध होगा। आपके सुझावों का सदैव स्वागत है।

जय हिंद!

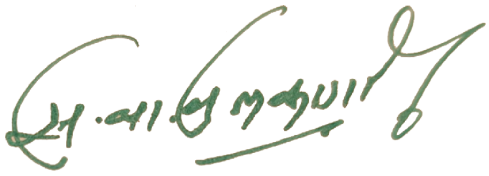

(प्रो.सुनील बाबुराव कुलकर्णी 'देशगव्हाणकर')

रे प्रवासी, जाग, तेरे
देश का संवाद आया।

भेदमय संदेश सुन पुलकित
खगों ने चंचु खोली;
प्रेम से झुक–झुक प्रणति में
पादपों की पंक्ति डोली;
दूर प्राची की तटी से
विश्व के तृण–तृण जगाता;
फिर उदय की वायु का वन में
सुपरिचित नाद आया।
रे प्रवासी, जाग, तेरे
देश का संवाद आया।

व्योम–सर में हो उठा विकसित
अरुण आलोक–शतदल;
चिर–दुखी धरणी विभा में
हो रही आनन्द–विह्वल।
चूमकर प्रति रोम से सिर
पर चढ़ा वरदान प्रभु का,
रश्मि–अंजलि में पिता का
स्नेह–आशीर्वाद आया।
रे प्रवासी, जाग, तेरे
देश का संवाद आया।

सिंधु–तट का आर्य भावुक
आज जग मेरे हृदय में,
खोजता उद्‌गम विभा का
दीप्त–मुख विस्मित उदय में;
उग रहा जिस क्षितिज–रेखा
से अरुण, उसके परे क्या?
एक भूला देश धूमिल–
सा मुझे क्यों याद आया?
रे प्रवासी, जाग, तेरे
देश का संवाद आया।

रामधारी सिंह दिनकर

संपादकीय

जब किसी देश या समाज में अलग–अलग भाषा प्रयोग में लाई जाती है तो उसे भाषाई विविधता कहते हैं। इसी परिप्रेक्ष्य के संदर्भ में कहा जा सकता है कि भारत एक ऐसा देश है जो अपनी भौगोलिक संरचना के कारण अपने अंदर विभिन्न भाषाओं एवं बोलियों को समेटे हुए है। शायद इसी कारण 'कोस–कोस पर पानी बदले, चार कोस पर बानी' जैसी कहावत चरितार्थ होती है। इसी भाषाई विविधता के स्वरूप को बनाए रखने में 'भाषा' पत्रिका का विशेष योगदान रहा है। यह बताते हुए मुझे हर्ष हो रहा है कि 'भाषा' पत्रिका अपने आरंभिक काल से लेकर अब तक निरंतर प्रकाशित होते हुए 63वें वर्ष के पायदान पर पहुँच चुकी है। यदि पीछे मुड़कर देखें तो हम पाते हैं कि 'भाषा' ने भारत में बोली जाने वाली विभिन्न भारतीय भाषाओं के साहित्य को अपने कलेवर में सम्मानपूर्वक स्थान दिया है। 'भाषा' अपने विषय कलेवर में जहाँ लेख, कहानी, कविता व समीक्षा को समाहित करती रही है वहीं विदेशी भाषाओं की कहानियों व कविताओं के अनुवाद के साथ विभिन्न विषयों पर विशेषांक भी प्रकाशित करती रही है। हमेशा की तरह इस अंक में भी कई विषयों को समाहित किया गया है जिससे पाठकों का संक्षिप्त परिचय करवाया जा सकता है।

बांग्ला साहित्य में जहाँ बड़े–बड़े रचनाकार, साहित्यकार हुए हैं उन्हीं में से एक नाम रवींद्रनाथ ठाकुर का आता है जो अपनी कविताओं, कहानियों, नाटकों उपन्यासों आदि के लिए जाने जाते रहे हैं जिन्होंने आध्यात्म से लेकर तत्कालीन यथार्थ स्थितियों पर लेखनी चलाई है। उनके साहित्य में जहाँ जमीनदारों द्वारा शोषित किसानो व मजदूरों का उत्पीड़न दिखाई पड़ता है वहीं स्त्रियों की दुर्दशा व स्त्रियों का मनोविज्ञान भी उनकी लेखनी में दिखाई पड़ता है। रवींद्र साहित्य पर प्रस्तुत लेख पठनीय है।

इसके अतिरिक्त यदि भारतीय शास्त्रीय संगीत की बात की जाए तो भारतीय संगीत की नींव वैदिक काल में पड़ चुकी थी जो कालांतर में बौद्ध काल तक आते–आते अपने चरम स्तर पर थी। चारों वेदों में से 'सामवेद' संगीत पर आधारित वेद है। संगीत से संबंधित ऐसी अनेक जानकारियाँ प्रस्तुत लेख से प्राप्त की जा सकती हैं। आज भी भारतीय शास्त्रीय संगीत व नृत्य अपनी इस प्राचीनतम धरोहर को संभाले हुए विश्व में अपनी पहचान बनाए हुए है।

नाथ साहित्य पर आधारित लेख पाठकों को एक प्राचीनतम साहित्य के स्वरूप, उसकी भाषा, विचार एवं विशेषताओं से अवगत करवाता है। नाथ साहित्य वह साहित्य है जो नैतिक आचरण और मन की शुद्धता पर बल देता है।

जिसका साहित्य 9वीं शताब्दी के मध्य का माना जाता है जिसमें प्रमुख नाम गुरू गोरखनाथ व मछेंद्रनाथ का आता है। ऐसी कई अन्य जानकारियों से पाठक लाभान्वित हो सकते हैं।

'जहाँ चाह वहाँ राह' जैसा मुहावरा प्रो. तोमियो मिजोकामी, जो जापान के मूल निवासी हैं उनपर पूरी तरह चरितार्थ होता है। जो अपनी जापानी भाषा के अतिरिक्त हिंदी, पंजाबी, असमिया, तमिल, मराठी, फ्रेंच, जर्मनी आदि भाषाओं का ज्ञान रखते हैं। जिन्होंने हिंदी नाटकों को जापानी शैली में प्रस्तुत कर हिंदी को विश्व के पटल पर रखा है। भारतीय साहित्य के प्रति उनका यह योगदान विशेष रूप से उल्लेखनीय है।

प्रो. सुमित्रा महरोल की आत्मकथा 'टूटे पखों से परवाज तक' की समीक्षा को पढ़ने पर पाते हैं कि मनुष्य के अंदर यदि दृढ़ संकल्प हो तो रास्ते में आने वाली हर कठिनाई को पार किया जा सकता है। इसके अतिरिक्त ऐसे कई विषय हैं जो पठनीय हैं। आशा है यह अंक पाठकों को रूचिकर लगेगा। यदि आपका कोई सुझाव हो तो अवश्य भेजें।

अनिता

(डॉ. अनिता डगोरे)

रवींद्र साहित्य के विविध पड़ाव

चक्रधर त्रिपाठी

विश्वकवि रवींद्रनाथ ठाकुर को रचनाओं की विपुलता व विचित्रताओं, भाव–भंगिमा व शिल्प की निपुणता में निस्संदेह एक लंबी अवधि तक प्रमुख व्यक्ति के रूप में स्वीकार किया जा सकता है। 19वीं शताब्दी की शुरुआत से ही कवि, नाटककार, कहानीकार, संगीत–स्रष्टा व चित्रकार आदि अनेक रूपों में उन्होंने कला का विविध व विचित्र धाराओं में अपनी अभूतपूर्व रचनात्मकता दिखाई है। बीसवीं शताब्दी के पूर्व से ही उनकी रचना–क्षमता में उत्कृष्टता देखने को मिलती है, फिर भी नवीनता व कल्पनाओं तथा रूप–चेतना को हासिल करने हेतु उनका रचनाधर्मी मन सदा सचेष्ट रहा है।

रवींद्रनाथ द्वारा शिल्प, साहित्य व चित्रकला के विविध व विशाल फलक पर अपने को व्यापक व विस्तीर्ण बनाकर रखने पर ही कवि रूप में उनका सम्मान विश्वजनीन बना है और इसीलिए वे विश्वकवि की उपाधि से विभूषित हैं। उनकी पहली काव्य रचना 'कवि कहानी' सन 1878 में एवं अंतिम काव्य–रचना उनके निधन से पहले सन 1941 में 'जन्म दिने' शीर्षक से प्रकाशित होई थी। साठ वर्षों से भी अधिक समय तक उन्होंने अनगिनत काव्य–कविता व गीतों की रचना की। उनके प्रकाशित काव्य–ग्रंथों की संख्या पैंतालीस से भी अधिक है। उनके द्वारा रचित कविताओं एवं गीतों का प्राचुर्य एवं विषय–वैचित्र्य किसी भी पाठक को चकित करने में सक्षम है। इसके अतिरिक्त शीलोत्कर्ष एवं भाव–गांभीर्य के समन्वय से उनकी काव्य रचना में जो विलक्षणता आ पाई है, वह अनुपम है। रवींद्र की काव्य–प्रतिभा में शनैः– शनैः निखार आता गया। बीसवीं सदी के दूसरे विश्वयुद्ध को लेकर उनकी तीव्र एवं कठिन जिज्ञासा में कवि चित्त का एक ओर विस्तार देखने को मिलता है तो दूसरी ओर प्राचीन भारत के सौंदर्यमयी कल्पना के लोक में वे विहार करते हुए पाए जाते हैं। 'हिबबर्ट लैक्चर' देते हुए रवींद्रनाथ ने अपने कविधर्म के संबंध में कहा था– ''मेरा धर्म एक कवि का धर्म है; यह धर्म किसी सदाचारी व्यक्ति का धर्म भी नहीं है या किसी धर्मतत्व

विशारद का भी धर्म नहीं है। मेरे गीतों की प्रेरणा जिस अदृश्य एवं चिह्नरहित पद से होकर आई है, उस पथ पर ही मैंने अपने धर्म का समस्त स्पर्श लाभ किया है। मेरा कवि–जीवन जिस रहस्यमयी धारा में निर्मित हुआ है, मेरे धर्म–जीवन ने भी उसी एक धारा का अनुकरण किया है। वे दोनों आपस में विवाह–सूत्र में आबद्ध हैं; यह मिलन काफी दिनों के उत्सव–अनुष्ठानों के बीच से ही संभव हो पाया है; लेकिन उन तथ्यों के संबंध में मैं कभी भी सचेतन नहीं था।''

'सांध्य संगीत' से लेकर 'मानसी' तक रवींद्र काव्य का उन्मेष काल माना जा सकता है। 'मानसी' से ही उनमें परिपक्वता के चिह्न दिखने लगे थे। 'सोनार तरी' से 'क्षणिका' तक कवि ने सौंदर्य में आत्मविस्मृत एवं स्थूल प्रेम का जयगान किया है। 'खेया' से 'गीताली' तक के उनके काव्य में सूक्ष्मलोक के सुर सुनाई देते हैं। 'बलाका' में फिर भी स्थूल जीवन के स्वर सुनाई देते हैं। 'बनरानी', 'महुआ' और 'पूरबी' काव्य में अनुभव समृद्ध कवि के युवा काल की स्मृतियों के साथ– साथ प्रकृति के प्रति अंतरंगता भी अपने सर्वोत्तम स्तर पर प्रकट हुई है। प्रारंभिक अवस्था से ही इनके काव्यों से विमर्श का नया स्वर उभरकर आया है। वैचारिक भावों का यह कौशल कभी गद्य की पंक्तियो में, वैचारिक लयात्मकता में, तो कभी कविता की छंदबद्धता में, तो कभी गल्प कहने के मीठे अंदाज में झलकता है। इसी के समानांतर इनके साहित्य में जीवन एवं मरण के शाश्वत प्रश्नों को भी निरीक्षण–परीक्षण के नए–नए संदर्भों में प्रस्तुत किया गया है। रवींद्रनाथ के काव्य साहित्य के विपुल भंडार को मोटे तौर पर कुछ बिंदुओं के माध्यम से रेखांकित किया जा सकता है–

प्रथमतः कविगुरु के विपुल साहित्य में जीवन और जगत के प्रति सच्चा प्रेम एवं भारतीय दर्शन की सुचिंतित परंपरा को आत्मसात किया गया है। इसका सबसे सार्थक उदाहरण है उन्नीसवीं शताब्दी में नव मानवतावादी चेतना का उन्मेष। बीसवीं शताब्दी में जब यूरोप लोभ, स्वार्थ एवं युद्ध की विभीषिका से हताश–निराश होकर आर्तनाद कर रहा था, ऐसी जटिल परिस्थिति में भी रवींद्रनाथ का मानवता के प्रति अगाध विश्वास था। ऐसी यौद्धिक परिस्थितियों के विरुद्ध उन्होंने एक ही मंत्र दिया था– मानवता से मोहभंग महापाप है।

द्वितीयतः कविगुरु का मानव–प्रेम के प्रति गहरा लगाव तथा मानव–प्रेम के प्रति तीव्र वासना को उनके संपूर्ण साहित्य में महसूस किया जा सकता है। उन्होंने मानव–जीवन के क्षुद्र प्रसंगों को कभी भी प्रश्रय नहीं दिया। उन्होंने सभी मनुष्यों को ईर्ष्या, क्रोध, लोभ, मोह–माया से ऊपर उठकर एक महामानव के रूप में देखा। उन्होंने शिद्दत से यह महसूस किया कि असीम के साथ एकाकार होना ही मनुष्य जीवन की वास्तविक मुक्ति है। इस भूलोक को आनंदलोक में परिवर्तित कर देना ही मनुष्य की प्रकृति का वास्तविक परिचय है।

तृतीयतः एक तरफ मानवलोक और दूसरी तरफ सृष्टि–संचालक असीम लोक।

इन दोनों के मध्य ही कविता का मन आलोड़ित होता रहता है। इसी द्वंद्व को कवि ने स्वयं कहा है–ससीम और असीम के मिलन की साधन–स्थली। उन्होंने अपने संपूर्ण साहित्य में ससीम और असीम के मिलन पर ही पूरा जोर लगाया है। उन्होंने एक ऐसे आनंदलोक की कल्पना की है, जहाँ ईश्वर का अगोचर रूप गोचर रूप धारण कर दुःख एवं पीड़ा से क्रंदन करती हुई मानवता को सही दिशा देकर मानवता को अमरत्व प्रदान करे। कवि की अंतश्चेतना में मूल रूप से यही अनुभूति इस तरह से समाहित है कि इसे रवींद्र साहित्य से विलग करके देखना संभव नहीं है। यही कारण है कि उनका काव्य विरह वेदना को आत्मसात करते हुए मानवता को दिशा देने वाला काव्य है।

चतुर्थतः रवींद्रनाथ मानवता के अखंड पुजारी हैं। समस्त गोचर सौंदर्य के मूल में उन्होंने अखंड सौंदर्य अर्थात प्राकृतिक सौंदर्य की मूल आत्मा को स्वीकार किया है। जीवन और प्राकृतिक सौंदर्य की तह में उन्होंने निरंतर आनंद में मगन जीवनलीला की ही कामना व्यक्त की थी।

उपनिषदों की ब्रह्म चेतना ही कवि की चेतना का मूल स्वरूप है। यहाँ ससीम और असीम एकाकार होकर आनंदवाद के रूप में प्रतिष्ठित हुए हैं। असीम की वही अनुभूति व्यक्तिगत अनुभूतियों के साँचे में ढलकर रहस्यमयी सुंदर नारी के रूप–सौंदर्य के रूप में उनकी कविताओं में अभिव्यक्त हुई है। इसी सूत्र का आश्रय पाकर इनकी कविताओं में प्रेम की चेतना वैश्विक चेतना के रूप में उभरकर आई है। अखिल सौंदर्य ही व्यक्ति की अंतःचेतना में प्रेम एवं विरह का स्वरूप धारणकर रोमांटिक क्रंदन के स्वर के रूप में उभरकर आया है।

उल्लेखनीय है कि रवींद्रनाथ के काव्य साहित्य में, मानव प्रेम ससीम से असीम की यात्रा के रूप में चित्रित होते हुए भी कामवासना के प्रतीक रूप में प्रेम इंद्रियातीत और अलौकिक रूप में प्रतिष्ठित हुआ है।

पंचमतः रवींद्रनाथ की साहित्यिक अवधारणा में प्रकृति का स्थान सर्वोपरि है। उन्होंने प्रकृति के सर्जक और रौद्र दोनों रूपों को बहुत करीब से देखा है; लेकिन उन्होंने अपनी रचनाओं में प्राकृतिक सौंदर्य का ही महिमामंडन किया है। एक मनुष्य के रूप में उन्होंने दुनिया के सभी लोगों को अपने परिवार के समान माना और उनके साथ गहरे आत्मिक लगाव को महसूस किया। दुनियादारी के छल–कपट से इतर, उन्होंने मानव–जीवन में सार्वभौमिकता के आनंद को सर्वदा महत्व दिया है। इसी दृष्टि से उन्होंने दुनियादारी की चालाकियों का भी सामना किया। मानव जीवन की वास्तविक मुक्ति इसी आनंद की प्रतिष्ठा में है।

षष्ठतः रवींद्रनाथ के साहित्य और उनकी जीवन–दृष्टि पर उपनिषदों का विशेष प्रभाव है। न केवल काव्य साहित्य पर, बल्कि उनके पूरे साहित्य में, जाने–अनजाने, शैली, विचार, भावनाओं यहाँ तक कि अभिव्यक्ति के तरीके में भी, उपनिषद की अमिट छाप स्पष्टतः दृष्टिगोचर होती है। डॉ. शशिभूषण दासगुप्त के शब्दों में–''ईश उपनिषद

में कही गई कहानी से रवींद्रनाथ इतने गहरे प्रभावित हुए कि वे इसे आजन्म भुला नहीं पाए। रानी को बताया जाता है कि सत्य का मुख सोने के घड़े से ढका हुआ है; जगत के पालनहार और जगत के प्रकाशकर्ता सूर्य से प्रार्थना की गई है कि हे सूर्यदेव! अपनी किरणों को समेटिए, तभी सत्य के ऊपर से सुनहरा पर्दा हटेगा। आचरण के दूर हटने से इस सृष्टि में समाहित उस दीप्तिमान पुरुष की छवि दिखाई देगी, जिसका अंश मेरे अंदर भी प्रकाशमान है। यह संदेश रवींद्र साहित्य के प्रत्येक युग के प्रत्येक चरण में दिखाई देता है–अर्थ के संदर्भ में, विचारों की एक विस्तृत शृंखला के संदर्भ में दिखाई देता है; मानो इसे बार–बार दोहराने के बाद भी इसे पूरा नहीं कहा जा सकता वास्तव में यह पूरे जीवन में एक अवर्णनीय भावना है। जिसे अनवरत बोलने की कोशिश की गई, जो बात बार–बार बोलने की कोशिश की गई, वह बात पूरी ही नहीं हुई।''

रवींद्रनाथ के साहित्य में उनकी जीवनानुभूतियों से निश्चित सत्यदर्शन क्रमबद्ध तरीके से निरंतर अखंड एवं अविच्छिन्न धारा के रूप में प्रवाहित होता है। जीवन और जगत के प्रति संचित अनुभव ही उनके साहित्य में भावपूर्ण सौंदर्य के रूप में प्रतिफलित हुआ है। इसलिए समय–समय पर उनके काव्य–साहित्य, कथा–साहित्य तथा निबंधों में जिस लेखकीय कौशल का परिचय मिलता है, वह उनके उपन्यासों तथा नाटकों में भी देखने योग्य है। रवींद्रनाथ के उपन्यासों पर विचार किया जाए तो उन्होंने लगभग बारह उपन्यास लिखे हैं।

बांग्ला उपन्यास के क्षेत्र में बंकिमचंद्र की उपन्यास शैली का अनुकरण करते हुए भी रवींद्रनाथ ने इस क्षेत्र में अपनी अलग पहचान बनाई है। उनके प्रथम दो उपन्यास 'बहु ठकुरानी का ठाठ' और 'राजर्षि' ऐतिहासिक पृष्ठभूमि पर आधारित प्रेमकथात्मक उपन्यास हैं। 'चोखेर बाली' उपन्यास की भूमिका में रवींद्रनाथ ने स्वयं कहा है– ''बंग दर्शन के नए–नए अंकों ने मेरे मन को राष्ट्र के प्रति, समाज के प्रति, चेतनाशील बनाया तो दूसरी तरफ कहानी, कविता तथा मानवचरित्र के नए–नए प्रतिमानों के प्रति संवेदनशील बनाया। साहित्य में नई पद्धति के अनुसरण करने का तात्पर्य परंपरा–दर–परंपरा घटनेवाली घटनाओं का विवरण देना मात्र नहीं है; बल्कि विश्लेषण करते हुए उसे अंतर्निहित कथाओं के मध्य में दिखाना भी है। इसी पद्धति का अनुपम प्रयोग है– 'चोखेर बाली'। इस उपन्यास में विवाहेत्तर प्रेम–प्रसंगों का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण किया गया है। ऐसे प्रसंग अपने स्वाभाविक रूप में चित्रित हुए हैं। महेंद्र, विनोदिनी, आशा और बिहारी आदि के चरित्रों को किसी विशेष विचारधारा के तत्वावधान में नहीं गढ़ा गया है; बल्कि जीवन के वास्तविक परिप्रेक्ष्य में उनके चरित्र का निर्माण हुआ है। विनोदनी का चरित्र गढ़ते समय रवींद्रनाथ ने घोर यथार्थवादी दृष्टिकोण का परिचय दिया है, जिससे बांग्ला उपन्यास साहित्य में वे बीसवीं शताब्दी की आधुनिक चेतना के संवाहक के रूप में अपनी पहचान बनाने में सफल हुए।

'नौका डूबी' (1906) उपन्यास के संदर्भ में लगभग सभी साहित्य प्रेमी, आलोचक एवं पाठक एक स्वर में स्वीकार करते हैं कि इस उपन्यास में रवींद्रनाथ ने अपनी प्रतिभा के साथ न्याय नहीं किया है। इस उपन्यास में रमेश, हेमलिनी और कमला के इर्द–गिर्द एक आपत्तिजनक घटना को लेकर ऐसी कथा बुनी गई है, जो कि औपन्यासिक मानदंडों को पूरा नहीं करती है। लेखकीय कौशल तथा मनोवैज्ञानिक ढंग से पात्रों की रचना करने के कारण इस उपन्यास के पात्र जीवंत प्रतीत होते हैं। इस उपन्यास की नायिका हेमलिनी रवींद्रनाथ के उपन्यासों की प्रथम आधुनिक, शिक्षित, सभ्य एवं कुशलतापूर्वक गढ़ा गया नारी चरित्र है। रवींद्रनाथ अपने उपन्यासों में जिस आदर्श नारी–चरित्र को गढ़ना चाहते थे; हेमलिनी, सूचरिता जैसी नायिकाएँ उसी सौंदर्यमयी परिकल्पना की प्रतिमूर्ति हैं।

रवींद्रनाथ के जीवनीकार प्रभात कुमार मुखोपाध्याय ने अपनी कविता 'रवींद्र–जीवनी' और 'रवींद्र साहित्य प्रवेशिका' में 'गोरा' (1910) के संबंध में लिखा है– ''गोरा बांग्ला साहित्य का एकमात्र उपन्यास है, जिसमें एक विशेष समय के समस्त शिक्षित बंगाली मध्यवर्गीय समाज के समय को सामाजिक–राष्ट्रीय चिंतनधारा, आदर्श, आक्रोश आंदोलन, धर्म एवं राष्ट्रीय जीवनधारा के नूतन आदर्श संधान हेतु भावावेग एवं चिंतनशील एवं तर्क–वितर्क, तार्किक पद्धति, अनुभूतियों की तीव्रता, बुद्धि एवं विवेक की सम्मती अर्थात एक शब्द में कहा जाए तो संपूर्ण देश और राष्ट्र की अवधारणा में एक वर्ग की समग्र जीवनधारा को रूपायित करने का प्रयत्न किया गया है। एकमात्र अपने इसी उपन्यास में अपने वृहत संदर्भ में समकालीन समाज राष्ट्र एवं आदर्शमयी स्त्री तथा पुरुषों के व्यक्तिगत समन्वय के माध्यम से सार्थक साहित्यिक दृष्टिकोण को चित्रित करने की कोशिश की गई है। वास्तव में 'गोरा' उपन्यास के माध्यम से समकालीन जीवन–पद्धति एवं उनके द्वंद्वों से उपजी परिस्थितियों का यथार्थ चित्र खींचा गया है। रवींद्रनाथ ने अपनी चिंतनशीलता में भारत के अतीत, वर्तमान और भविष्य के चित्र को समग्रता में रखने की कोशिश की है। राष्ट्रीय चेतना के बाधक तत्वों को आत्मसात करते हुए उन्होंने अपनी रचनाओं में अखंड भारतवर्ष की छवि प्रस्तुत की है। 'गोरा' उपन्यास में एक राष्ट्र के समग्र चिंतन को दर्शाने की कोशिश की गई है। इस उपन्यास में तत्कालीन सामंतवादी व्यवस्था के मध्य एक नए बुर्जुआ मानवतावादी पथ का अन्वेषण दिखाई देता है। यह पथ था विकास के प्रति आग्रह, अनुसंधान के प्रति कौतूहल एवं उदार नीति में विश्वास रखने वाला। बंगाल विभाजन के परिप्रेक्ष्य में 'गोरा' उपन्यास ने यह रास्ता दिखाया कि बाह्य शक्तियों के आक्रमण से लोहा लेने के लिए समाज की मुख्य धारा से कटे हुए लोगों को आत्मीयता के बंधन में बाँधकर ही पुनर्जीवित किया जा सकता है। 'गोरा' उपन्यास में अखंड भारत की अखंडता को बनाए रखने के लिए मानवतावादी कल्याणबोध का रास्ता दिखाया गया है। इनके उपन्यासों में नए युग का सूत्रपात होता है। 'चतुरंग' (1916), 'घरे बाइरे'

(1916) 'योगायोग'(1929), 'शेषेर कविता' (1929), 'दुई बोन' (1933), 'मालंच' (1934), 'चार अध्याय' (1934) आदि उपन्यास इसी के अंतर्गत आते हैं। इन उपन्यासों में रवींद्रनाथ ने उपन्यास लेखन की एक ऐसी शिल्प पद्धति का आविष्कार किया, जिसमें कल्पना की भावना प्रबल, घटनाओं की नगण्यता, भावों का अतिरेक, तत्वों की प्रधानता आदि मुख्य रूप से दृष्टिगोचर होती हैं। इस युग के उपन्यासों में एक प्रकार से सूक्ष्म से सूक्ष्मतर बौद्धिकता तथा कम शब्दों में गहरे अर्थ की अनुभूति पाठक को प्रत्येक पृष्ठ पर अभिभूत करती है।

'चतुरंग' उपन्यास मूलतः 'जेठा मोसाय', 'सचिस', 'श्री विलाश', 'दामिनी' नामक चार छोटी कहानियों का समन्वित रूप है। सचिस के जीवन–संघर्ष के समानांतर, दामिनी की तीव्र प्रेमाकांक्षा में उलझने के बाद, जो समस्याएँ जन्म लेती हैं, उसी के इर्द–गिर्द इन चार पात्रों की कहानी घूमती रहती है।

यह उपन्यास भाषा की दृष्टि से उपन्यासों में से एक है। भाव एवं शैली की दृष्टि से यह उपन्यास बांग्ला साहित्य की अन्यतम उपलब्धि है। चरित्र एवं घटनाओं को विशेष तरजीह नहीं देते हुए यहाँ केवल भाषा–विशिष्टता की दृष्टि से मानव–जीवन की अनुभूतियों को गहरे संदर्भ में उठाया गया है।

'घरे–बाइरे' उपन्यास में आमजन की भाषा में प्रेम के बहिरंग एवं अंतरंग समस्याओं को आत्मकथात्मक रूप में प्रस्तुत किया गया है। विमल, निखिलेश और संदीप के देश–प्रेम, विमला, निखिलेश और संदीप के निजी प्रेम प्रसंगों और अनुभवों को सांकेतिक भाषा के माध्यम से विश्लेषित किया गया है।

'घरे–बाइरे' के तेरह वर्ष बाद 'शेषेर कविता' की रचना हुई। इस उपन्यास की रोचकता से समकालीन साहित्य के पाठक आश्चर्यचकित एवं अभिभूत थे। गद्य–पद्य मिश्रित भाषा में आधुनिक समस्याओं एवं रोमांटिक प्रेम की चेतना के स्थूल एवं सूक्ष्म पक्षों को आधार बनाकर वह उपन्यास आज भी अद्वितीय है। भाषाई कौशल के माध्यम से रवींद्रनाथ ने यह दिखाया कि जीवन का वास्तविक आनंद जमीनी स्तर पर उपजे अशरीरी प्रेम अथवा आसमान में उपजे तारे की तरह टिमटिमाने वाले प्रेम को स्थायित्व प्रदान करने तथा मानव–जीवन के चेतनामयी संसार को आनंदमय बनाने में एक कविता यदि वास्तव में अपनी भूमिका निभाने के लिए उस स्तर तक पहुँचेगी, तभी अनंतकाल तक साहित्य और जीवन के बीच कोई अंतर नहीं रहेगा।

'शेषेर कविता' उपन्यास में अमित–लावण्या का अप्रतिम प्रेम और उसकी परिणति चिरकाल तक प्रेम की सत्यता का अनुपम उदाहरण है। यह प्रश्न अलग है कि अमित और लावण्या के प्रेम की त्रासदी कितनी वास्तविक और कितनी यथार्थ से परे है। आलोचकों ने इस प्रश्न को सिरे से खारिज नहीं किया है। 'योगायोग' उपन्यास में भारतीय संस्कृति के प्रति आत्मिक लगाव एवं द्वंद्वों को गहरे अर्थ में व्यक्त किया गया है। 'तीन पुरुष' रवींद्रनाथ का अधूरा उपन्यास है। इस उपन्यास में

जिन दो पुरुषों की कहानी को उठाया गया है, इससे स्पष्ट पता चलता है कि उनकी औपन्यासिक परिकल्पना कितनी जटिल थी। वैवाहिक जीवन को सभी लोग श्रद्धा के साथ स्वीकार करते हैं, किंतु कुमुदनी, मधुसूदन को अपना समस्त समर्पित करते हुए भी व्यक्तित्व विरोध एवं आत्मसमर्पण की रक्षा की दृष्टि से वह कभी भी मधुसूदन को आत्मिक रूप से अपने पति के रूप में स्वीकार नहीं कर पाती है। रवींद्रनाथ ने इस उपन्यास में कुमुदनी के चरित्र के माध्यम से यह तथ्य दर्शाने की कोशिश की है कि नारी का व्यक्तित्व विवाह से भी बड़ा है। उपन्यास के अंत में एक तात्विक सिद्धांत दिया गया है। इस उपन्यास में वृहद स्तर पर नारी–प्रश्नों को उठाया गया है। इस उपन्यास में जमींदारी व्यवस्था का अंत एवं पूँजीपति वर्ग के द्वंद्व को दिखाया गया है। मधुसूदन के चरित्र में गिरावट देखी जा सकती है। मनोवैज्ञानिक विश्लेषण की जिस प्रक्रिया को लेखक ने प्रमुख माध्यम बनाया है, मधुसूदन के चरित्र–चित्रण में इसका अभाव देखने को मिलता है। रवींद्रनाथ मूलतः एक गीति–कवि थे; इसलिए इनकी रचनाओं में घटनाओं के विवेचन तथा विश्लेषण की तुलना में भाषा को विशेष महत्व दिया गया है। भावों के चित्रण में उन्हें महारत हासिल थी। यही कारण है कि उनके अंतिम दौर के उपन्यासो में इसका प्रभाव अधिक देखने को मिलता है। 'चार अध्याय' – कहने को उपन्यास है; लेकिन वास्तव में यह उज्ज्वल प्रेम कविता है। इस संबंध में रवींद्रनाथ ने स्वयं लिखा है– ''चार अध्याय में जो पक्ष पाठकों को सबसे अधिक आकर्षित करता है, वह है कविता का अंश। उसकी भाषा मानो जादू है, इसके माध्यम से पाठकों को जो अनुभूति होती है, उसे ठीक–ठीक कहानी नहीं कहा जा सकता है। अतिन और एला के प्रेम–प्रसंग को गीत के माध्यम से प्रस्तुत किया गया है।'' 'चार अध्याय' वास्तव में गद्य में लिखा हुआ गीति–काव्य है।

बांग्ला उपन्यास में रवींद्रनाथ अपनी विशिष्ट पहचान रखते हैं, कथावस्तु एवं घटनाओं को परीक्षण–निरीक्षण की प्रक्रिया से गुजारते हुए चरित्र–चित्रण एवं उपन्यास की समग्रता संबंधी उनके दृष्टिकोण का अलग वैशिष्ट्य है। इनके संबंध में यह कहा जा सकता है कि बांग्ला साहित्य की अन्य विधाओं की तरह वे बांग्ला उपन्यास साहित्य के युगपुरुष हैं।

लघुकथा शिल्पगत बुनावट की वह कला है, जिसकी बूँद–बँद में सागर का जल समाया हुआ रहता है। बंकिमचंद्र के मार्गदर्शन में जिस प्रकार बांग्ला उपन्यास का जन्म और विकास हुआ, उसी प्रकार रवींद्रनाथ के निर्देशन में बांग्ला लघुकथा का जन्म और विकास हुआ है। 1877 में सोलह वर्षीय किशोर रवींद्रनाथ ने बांग्ला साहित्य की प्रथम लघुकथा 'भिखारिणी' लिखी थी, जो कि भारत पत्रिका में प्रकाशित हुई थी। इसी क्रम में 'घाटेर कथा' और 'राजपथेर कथा' लघुकथा प्रकाशित हुई। इसके उपरांत उत्तरबंग में पद्मापार की भूमि में उनके द्वारा लघुकथा लिखने का सिलसिला चल पड़ा। बाह्य जगत में प्रकृति लीला और अंतर्जगत अर्थात लोक में घटने वाली

सृजनशीलता के संबंध में विस्तारपूर्वक विश्लेषण 'करते हुए रवींद्रनाथ ने स्वयं कहा है–''सिलाइदह के पद्मापार नदी की नाव में मैं अकेला था; निर्जन नदी की गोद में बैठे–बैठे नदी की धारा के समान दिन बह जाता था। नाव नदी किनारे बँधी हुई रहती थी। दूर–दूर तक कोई भी व्यक्ति दिखाई नहीं देता। केवल पांडू रंग की विशाल जलराशि दिखाई देती थी। बीच–बीच में पानी अपने साथ–साथ घास के समूह को भी बहाकर ले जाता था। उसी समय पक्षियों का समूह अपने शिकार के लिए दल–के–दल आमंत्रित प्रतीत होते थे। नदी के उस पार पेड़–पौधों की घनी छाया के बीच ग्राम जीवन की यात्रा का मनभावन लोक, समय–समय पर महिलाओं द्वारा पानी लेकर जाना, बच्चों द्वारा पानी में छलाँग लगाना, तैरना, मस्ती करना, किसानों द्वारा गाय–भैंस लेकर नदी के उस पार खेती के लिए जाना, महाजनी नौका का मंथर गति से चलते जाना, डोंगो नौका का पाल के सहारे सांय–सांय करते हुए जल को चीरते जाना, नदी में मछुआरों द्वारा निरंतर जाल फेंकते जाना, मानो यह काम नहीं, बल्कि एक खेल है। सभी लोगों द्वारा बारी–बारी से अपने सुख–दुःख के अनुभव को मेरे पास चर्चा–परिचर्चा और शिकायत के रूप में रखना। मेरे लिए यह मेरी कहानी के स्त्रोत हैं। मानो ग्राम से ग्रामांतर यात्रा का मेरा अनुभव संसार है।'' समकालीन बांग्ला कविताओं को सामने रखकर यदि उनकी लघुकथाओं पर विचार किया जाए तो यह स्पष्ट हो जाएगा कि उनकी लघुकथाएँ अलग–अलग रूप में कविताओं का ही प्रतिरूप हैं।

रवींद्रनाथ की लघुकथाओं पर बारीकी से विचार करते हुए उसे तीन भागों में बाँटा जा सकता है–

उन्मेष पर्व	–	हितवादी साधन युग
विकास पर्व	–	भारती–सबूजपुत्र युग
परिणति पर्व	–	प्रवासी तीन संगीर युग

रवींद्रनाथ द्वारा रचित लघुकथा के प्रारंभिक दौर की रचनाएँ मूलतः 'हितवादी' एवं 'साधना' पत्रिका में प्रकाशित हुई थीं। इस दौर की प्रमुख लघुकथाओं में 'देना पावनान', 'पोस्टमास्टर', 'गिन्नी', 'रामकानइ की निबुद्धिता', 'व्यवधान', 'तराप्रसन्न की कीर्ति', 'कंकाल', 'एकरात्रि', 'जीवित और मृत', 'काबुलीवाला', 'छुट्टी' इत्यादि हैं। इस दौर की लघुकथाओं के संबंध में रवींद्रनाथ ने स्वयं कहा है–''एक युवती नौका पर सवार होकर अपने ससुराल गई, सहेलियाँ घाट–घाट पर उसके संबंध में बातें करने लगीं, ससुराल जाने पर उस बेचारी की क्या दुर्दशा होगी, कैसा घर है, एक दुष्ट लड़का दिनभर गाँव में इधर–उधर भटकता रहता है, दुष्टता चरम पर होती है, एक दिन वह अचानक घर छोड़कर शहर में अपने मामा के पास चली जाती है। केवल मैंने यही अपनी आँखों से देखा है। बाकी मैंने कल्पना का सहारा लिया है।'' इस वक्तव्य में 'समाप्ति' और 'छुट्टी' दोनों लघुकथा में उत्सव के संबंध में उन्होंने अपने अनुभव

को दर्ज किया है। ध्यान से देखने पर यह स्पष्ट हो जाएगा कि एक छोटी सी घटना को आधार बनाकर रवींद्रनाथ अपनी कल्पना के माध्यम से उसके अदृश्य रूपों को भी उजागर करने की क्षमता रखते थे।

लघुकथा के जागरूक पाठक यदि ध्यान से विचार करेंगे तो यह स्पष्ट होगा कि प्रारंभिक दौर की अधिकांश कथाओं में व्यक्ति विशेष के जीवन की घटना, सभी व्यक्तियों के जीवन से जुड़ती हुई प्रतीत होने लगती है। यही वह बिंदु 'है, जिसमें लघुकथा की प्रभावोत्पादकता छिपी हुई है। इस दौर की लघुकथाओं की एक और भी विशेषता है कि सभी लघुकथाएँ निसर्गमुखी हैं। यहाँ पर मनुष्य और प्रकृति के मध्य अभिन्न संबंध है। 'पत्रावली' के अंक में रवींद्रनाथ ने लिखा है– ''मेरी चेतना का प्रवाह घास–फूस से लेकर पेड़–पौधों की जड़ों में, शिराओं में धीरे–धीरे प्रवाहित होता जा रहा है।'' प्रकृति के प्रति यह अंतरंगता का भाव 'अतिथि', 'शुभा', 'आपद', 'छुट्टी', 'शुभदृष्टि' इत्यादि लघुकथाओं में विशेष तौर पर देखा जा सकता है। 'छुट्टी' लघुकथा में फटीक को प्रकृति की संतान के रूप में चित्रित किया गया है। गाँव का सुरम्य वातावरण, प्राकृतिक सौंदर्य छोड़ने के बाद शहरी जीवन बंदी जैसा प्रतीत होने लगता है। बच्चों के लिए जब खेलने की छुट्टी होती, तब वे खिड़की के सामने खड़े होकर घरों की छत निहारते रहते; जब भरी दोपहरी में किसी छत पर एक या दो बच्चे एक क्षण के लिए खेलते हुए दिखाई दे जाते तो उस समय उनका मन चंचल हो उठता।''

'अतिथि' का तारापद, 'पोस्ट मास्टर' का रतन, 'शुभा' की शुभा, 'समाप्ति' की मृण्मयी भी फटीक के समान ही प्रकृति की गोद में बड़े होनेवाले बच्चे हैं। इनके स्वभाव में, आवेग में, आचरण में, प्रकृति वियोग का मार्मिक सत्य उभरकर सामने आया है। इसी प्रकार 'मनिहारा' अथवा 'निशीथ' कहानी में कहानीकार ने वास्तविक और अवास्तविक के द्वंद्व में पिरोकर रहस्य की स्वप्निल दुनिया को गढ़ने की कोशिश की है। एक तरफ 'देना पावना' कहानी में आपसी लेनदेन जैसी सामाजिक कुप्रथा पर व्यंग्य किया गया है तो दूसरी तरफ 'क्षुधित पाषाण' कहानी में काल्पनिक समाधान भी प्रस्तुत किया गया है। 'अतिथि' कहानी के तारापद को, जिस प्रकार स्वाभाविक पथिक के रूप में चित्रित किया गया है, उसी प्रकार 'काबुलीवाला' कहानी के रहमत के संघर्षपूर्ण जीवन को वात्सल्य की थपकी से निर्मित किया गया है। इससे उसका चरित्र सदैव के लिए अमर हो गया है। कहानी लेखन में रोचक शिल्प के प्रयोग से पात्रों के परिवेश के साथ–साथ उनका मनोजगत भी जीवंत हो उठा है। ये पात्र पाठकों के हृदय में सदैव के लिए रच–बस गए हैं।

विकास पर्व की अधिकांशः कहानियाँ 'भारती' और 'सबुजपत्र' जैसी पत्रिकाओं में प्रकाशित हुई हैं। इस युग की कहानियों में तर्क, बुद्धि एवं चिंतन की प्रधानता देखने को मिलती है। 'हलदरगोष्ठी', 'स्त्रीर पत्र', 'पहला नंबर', 'अपरिचिता' इत्यादि

कहानियों में एक तरफ व्यक्तित्व की महिमा को स्वीकार किया गया है तो दूसरी तरफ स्त्री की स्वाधीन चेतना का पूर्ण विकास हुआ है। इस खंड की कुछ कहानियों में प्रेम से संबंधित जटिल मुद्दों को उठाया गया है। 'हिमालय दान' कहानी में जंगल में लकड़ी बीनने वाली लड़की की प्रेम कहानी का हृदयस्पर्शी चित्रण हुआ है। 'एक रात' कहानी का निष्ठुर नायक एकदा अपनी इच्छानुसार जब चाहे तब अपनी प्रेमिका सुरबाला को घर लाने को सक्षम था; किंतु प्रेम करने के बाद वह धीरे–धीरे उसकी उपेक्षा करने लगता है। बाद में वह सुरबाला को याद करते हुए अनुभव करता है–''वह मेरे सबसे अधिक निकट और अंतरंग हो सकती थी। आज उसे देखने की भी मनाही है। उससे बातचीत करना निषेध है और उसे याद करना पाप है।'' 'समाप्ति' कहानी का अपूर्व एक युवती से विवाह करता है। इसके उपरांत अचानक एक दिन चुंबन की घटना को लेकर उस युवती के मन में नारीत्व की चेतना जाग्रत हो जाती है। 'मध्यवर्ती' कहानी एक ऐसे वयस्क प्रेमी जोड़े की कहानी है, जिसमें द्वितीय विवाह को केंद्र में रखकर कहानी का ताना–बाना बुना गया है। इस कहानी में दाम्पत्य जीवन के जिस मुद्दे को आधार बनाया गया है, वह इस प्रकार है– ''हर सुंदरी ने एक बात कही, लेकिन निवारण के संबंध में एक भी जवाब नहीं दिया। पहले की तरह दोनों अगल–बगल सोते थे; लेकिन दोनों के मध्य मानो एक मृत युवती सो रही है। दोनों में किसी ने इसका अतिक्रमण नहीं किया।''

उल्लेखनीय है कि लघुकथा लेखन के प्रथम दो कालखंडों में ही रवींद्रनाथ ने अप्रत्याशित विषयों पर कहानी की रचना कर ली थी। 'मनिहारा', 'क्षुधित पाषाण', 'कंकाल' हिंसा की अप्रत्याशित घटनाओं पर आधारित उनकी कालजयी रचनाएँ हैं। 'मनिहारा' कहानी की नायिका मनी मालिका अपने दाम्पत्य जीवन से भी ऊपर गहनों को विशेष महत्व देती थी। इससे उसके जीवन में त्रासदी का आगमन होता है। 'क्षुधित पाषाण' कहानी में मुगलकालीन हिंसात्मक घटनाओं को आधार बनाया गया है। इस कहानी में मैहर अली के संबंध में करीम खान कहता है–'' एक समय उस महल में अनावश्यक वासना का नंगा नाच किया गया था, बलात्कार की चीखें चारों तरफ गूँजती थी–'उन पीड़ित आत्माओं के अभिशाप का परिणाम है कि इस महल का एक–एक टुकड़ा पत्थर मिट्टी से धूल धूसरित हो गया है। जिंदा व्यक्ति को पिशाच निगलने को तैयार बैठा है, जो लोग उसमें रहते थे, उनमें से केवल मेहर अली ही पागल होकर बाहर आ पाया। आज तक कोई अपने को उसका ग्रास बनने से रोक नहीं पाया है। 'कंकाल' कहानी एक मूर्त स्त्री की आत्मकथात्मक जीवनी है। इस बाल विधवा युवती को उसका प्रेमी विधु शेखर न केवल उसके साथ अत्याचार करता है, बल्कि उसे मौत के घाट उतार देता है। इन कहानियों पर गौर से विचार करने पर यह पता चलता है कि कथावस्तु एक दिशा में आगे बढ़ती है; किंतु अचानक चमत्कारिक ढंग से नाटकीयता उत्पन्न करने की कोशिश की जाती है। इस खंड की

सभी कहानियों का अंत त्रासद होता है। इन कहानियों में वास्तविकता का ऐसा द्वंद्व दिखाया गया है कि पाठक कहानी के चरम पर पहुँचकर फिर से उसकी गुत्थियों को समझने में व्यस्त हो जाता है।

परिणति पर अर्थात अंतिम दौर की 'तीन संगी' जैसी कहानियों में मनोवैज्ञानिक विश्लेषण को प्रधानता दी गई है। इन कहानियों में वैज्ञानिक चेतना का प्रभाव देखने को मिलता है। 'रविवार' कहानी का पात्र अभिक की अन्यतम इच्छा है कि वह एक कारखाना लगाए। वह एक ऐसा कलाकार है, जिसकी आशक्ति इंजीनियरिंग में है और वह चित्र बनाने में भी रुचि रखता है। 'शेष कथा' कहानी के अध्यापक अनिल कुमार एक वैज्ञानिक हैं, जिन्होंने कैंब्रिज यूनिवर्सिटी से पीएच.डी. की डिग्री ली है। नवीन माधव खनिज विधा के जानकार हैं। 'लेबोरेटरी' कहानी का नंदकिशोर तथा सोहिनी स्वयं वैज्ञानिक नहीं होते हुए भी विज्ञान के उपासक हैं। सोहिनी के व्यक्तित्व में आधुनिक नारी की छवि प्रथमतः दिखाई देती है–''हम लोग आजन्म तपस्विनी नहीं हैं। सदियों से अभिनय करते–करते लड़कियों की जान चली गई। द्रौपदी, कुंती की सेज पर सीता–सावित्री को बैठना पड़ता है।''

पचास वर्ष की उम्र तक रवींद्रनाथ पचास कहानियाँ लिख चुके थे। उन्होंने बांग्ला लघुकथा का लालन–पालन करते हुए उसे एक निश्चित गंतव्य तक पहुँचाया है। जगत और जीवन की अनेक समस्याओं को आधार बनाकर उन्होंने अपनी अनुभूतियों को उद्धृत किया है। इनकी अधिकांश कहानियाँ शिल्प की दृष्टि से उच्चकोटि की रचनाएँ हैं। चरित्र–चित्रण, त्रासद अंत एवं प्रकृति से परे वस्तुओं को भी नाटकीय ढंग से कहानी के अंत में सहायक बनाते हुए तथा मानवमन का वैज्ञानिक विश्लेषण करते हुए रवींद्रनाथ ने बांग्ला लघुकथा में एक प्रतिमान स्थापित किया है। दूर–दूर तक इस क्षेत्र में उनका कोई मुकाबला नहीं है। रवींद्रनाथ बांग्ला लघुकथा के जनक हैं तथा सम्राट भी।

रवींद्रनाथ द्वारा लिखे गए नाटक बांग्ला नाट्य साहित्य के साथ–साथ थिएटर के क्षेत्र में नई दिशाओं की खोज भी करते हैं। रवींद्रनाथ से पूर्व बांग्ला नाट्य साहित्य नाट्य लेखन के विधि–विधान के इर्द–गिर्द ही चक्कर काटता रहता था। बंधन का अतिक्रमण करने वाले, सागर–मंथन करने वाले रवींद्रनाथ ने बांग्ला नाट्य साहित्य को पारंपरिक विधि–विधान से ऊपर उठाया। उनके आगमन के उपरांत बांग्ला नाट्य साहित्य ने नाट्य क्षेत्र में एक मानदंड स्थापित किया। अनुभव से परिपूर्ण एवं रस से प्लावित उनकी मानसभूमि ही नाटकीय चेतना का उत्स है। बांग्ला नाट्य लेखन के मध्य उन्होंने जिस शिल्प कौशल एवं गंभीर दृष्टिकोण का परिचय दिया है, ऐसा उदाहरण इससे पहले कभी नहीं देखा गया।

रवींद्रनाथ की प्रतिभा मूलतः काव्यधर्मी है। उनके नाटकों में भी काव्य का आस्वादन स्वाभाविक रूप में आया है। इससे पहले रवींद्रनाथ की काव्य भावना के

संबंध में उल्लेख किया जा चुका है कि उनके समकालीन अन्य कवियों की रचनाओं को सामने रखकर तुलना करने पर रवींद्रनाथ की मानसिक दक्षता को समझने में कुछ सुविधा मिलेगी। 'आमरा देखी', 'खेया' युग से पहले उन्होंने जिन नाटकों की रचना की थी, उनमें गीतिकाव्य का प्रभाव सबसे अधिक देखने को मिलता है। प्रारंभिक दौर के कई नाटकों को छोड़ने के बावजूद 'विसर्जन', 'मालिनी' जैसे गीतिकाव्य में लिखे गए नाटक नाट्य–लेखन तथा अभिनय की दृष्टि से अतुलनीय नाटक हैं। 'खेया' से पहले तक की रचनाओं में कवि का मन वैश्विक सौंदर्य–चित्रण में आकंठ डूबा हुआ था। इसलिए इस समय के नाटकों में सौंदर्य का जो भाव उभरकर आया है, उसमें विश्वजगत तथा मानवजीवन का अखंड जयगान किया गया है। 'गीतांजलि' युग में उनकी सौंदर्य चेतना लौकिक से अलौकिक की ओर अग्रसर हुई है। तभी से उनके नाटकों में रूपक का प्रभाव दृष्टिगोचर होता है। 'गीतांजलि', 'गीतमाला', 'गीताली' में जिस प्रकार बाह्यजगत की प्रकृति में अतंर्जगत की चित्तवृत्तियाँ रचनात्मक प्रक्रिया में निमग्न होती हैं, उसी प्रकार पूर्ववर्ती नाटकों में घटनाएँ रूपक के माध्यम से परिणत हुई हैं।

रवींद्रनाथ के नाटकों की मुख्य खासियत उसकी भाषा है। उनके नाटकों में भाषा ही नाटकों के चरित्र, भाव और द्वंद्व को गंभीरतापूर्वक प्रस्तुत कर देती है। इनके नाटकों में पात्रों की संवाद–योजना यथासंभव संक्षिप्त और सीमित है। नाटकों में छोटे–छोटे संवाद होने के कारण पाठक और दर्शकों की दृष्टि हमेशा अभिनय के प्रति सजग रहती है। अभिनय के दौरान पात्रों के छोटे–छोटे वार्तालाप नाटक के आवेग को और बढ़ा देते हैं। यही कारण है कि रवींद्रनाथ के नाटकों में कथोपकथन अत्यंत जीवंत हो उठा है। नाटक लिखते समय रवींद्रनाथ को साधारण दर्शकों की चिंता नहीं थी। उन्होंने अपने नाटकों में स्थूल एवं रोमांचकारी घटनाओं पर विशेष ध्यान केंद्रित नहीं किया। इसका मतलब यह नहीं है कि रवींद्रनाथ के नाटकों में रसास्वादन नहीं हो पाता। रवींद्रनाथ के नाटकों को यथार्थ रूप में हृदयंगम करने के लिए पाठकों को अपने अंतर्जगत और बाह्यजगत को हमेशा सक्रिय रखना होगा।

मंच–सज्जा के संबंध में नाटककार रवींद्रनाथ के विचारों को भी जान लेना यहाँ समीचीन होगा। 1902 में प्रकाशित 'रंगमंच' नामक पुस्तक में उन्होंने मंच–सज्जा में पाश्चात्य प्रभाव को सिरे से खारिज किया है। उन्होंने कई स्थानों पर इससे संबंधित अपने विचारों को खुलकर रखा है! 'फाल्गुनी' (1916) नाटक में. उन्होंने लिखा है–''मुझे तस्वीरों की जरूरत नहीं है, मुझे दिल की जरूरत है। वहाँ सिर्फ धुन बजाकर तस्वीरों को जगाऊँगा।'' 1929 में प्रकाशित 'तपति' नाटक की भूमिका में उन्होंने जोर देकर कहा, ''आधुनिक यूरोपीय रंगमंच में सजावटी दृश्यों की अनिवार्यता नाटकों में व्यवधान का प्रतीक बन गया है। यह बचपना है। लोगों की नजरों को भ्रमित करने की एक कोशिश है। साहित्य और नाटक में इन चीजों को जबरदस्ती थोपना बाहुबल

दिखाने के समान है।'' मंच की साज–सज्जा संबंधी रवींद्रनाथ के इस दृष्टिकोण का उनके नाटकों में उत्तरोतर विकास हुआ है।

यह सर्वविदित है कि रवींद्रनाथ के आगमन से बांग्ला नाटक अत्यंत समृद्ध हुआ। गीतिनाट्य, काव्य नाटक, नाट्य काव्य, सांकेतिक नाटक, सामाजिक नाटक आदि नाट्य लेखन की अनेक विधियों को रवींद्रनाथ ने बांग्ला नाट्य साहित्य से जोड़कर नाट्य लेखन को बहुआयामी बनाया और बांग्ला नाट्य–साहित्य को समृद्ध किया। रवींद्रनाथ द्वारा लिखे गए गीतिनाट्य में मुख्य रूप से 'वाल्मीकि प्रतिभा', 'कालमृगया', 'माया का खेल' ये तीन नाटक प्रमुख हैं। इनके उपरांत 'रुद्रचंदन', 'प्रकृति का प्रतिशोध' इत्यादि काव्य नाटकों का प्रकाशन हुआ था। इस दौरान उनकी नाट्य प्रतिभा कभी संगीत तो कभी कविता के द्वंद्व में हिचकोले खाती रही। यही कारण है कि इस समय के गीतिनाट्य के समान काव्य नाटकों में भी संगीत की स्वर लहरी कुछ अधिक सुनाई देती है। 'वाल्मीकि प्रतिभा' (1881) में वाल्मीकि के मन में चलने वाले द्वंद्व और संघर्षों को दर्शाया गया है। यह संघर्ष सूक्ष्म, भावनात्मक स्तर पर अंतर्निहित है। 'माया खेला' (1888) में पाठक संगीत के उल्लास में डूबा रहता है। नाटक समाप्त होने पर ऐसा लगता है कि हम सपनों की दुनिया से लौटकर आए हैं। 'रुद्रचंद' (1881) दो विपरीत परिस्थितियों का नाटक है; क्रोध में प्रतिशोध और ममतामयी प्रेम की भावना। अदम्य, नेक–उत्साही, बड़े दिलवाले नायक रुद्रचंद के साथ–साथ दया और करुणा, ममतामयी बेटी अमिया की आदर्श और बेदाग छवि पाठकों और दर्शकों के दिल को छू लेनेवाली भावनाओं को व्यक्त करती है। यद्यपि 'प्रकृति का प्रतिशोध' (1884) एक नाटक होते हुए भी इसमें एक विशेष तत्व की प्रधानता है। इस संदर्भ में स्वयं रवींद्रनाथ ने कहा, ''मुझे लगता है कि यह मेरी कविता का केवल एक दृष्टिकोण है। उस दृष्टिकोण में सीमा के भीतर अनंत के साथ मिलन को व्यक्त किया गया है। यह कहा जा सकता है कि नाटकीय संघर्ष, नाटक–जिज्ञासा और उत्कृष्टता के संदर्भ में पाठकों और दर्शकों द्वारा अधिकांश नाटकों की सराहना की गई है।

रवींद्रनाथ के काव्य नाटक का दूसरा चरण 'राजा और रानी' (1889) से शुरू होता है। परवर्ती काल में रवींद्रनाथ अपनी कई रचनाओं की सराहना प्रसन्न मन से नहीं कर सके। 'राजा और रानी' ऐसी ही एक कृति है, इसलिए बाद में उन्होंने नाटक को पूरी तरह से संशोधित किया और 'तपती' नामक एक नए नाटक शैली की रचना की। 'विसर्जन' (1890) को समीक्षकों द्वारा रवींद्रनाथ के सर्वश्रेष्ठ नाटकों में से एक नाटक के रूप में सराहा गया है। हिंसा पर आधारित धार्मिक आचरण कभी भी किसी सच्चे धर्म का हिस्सा नहीं हो सकता है। मनुष्य की भक्ति और प्रेम उपासना ही भगवान की पूजा का सबसे अच्छा समर्पण है। मानवता का संसाधन ही भगवान की कृपा का मुख्य संकेतक है– ''इस नाटक में यही भाव निरूपित किया गया है।

हिंसात्मक शक्तियों के विरुद्ध प्रेम एवं तीव्र भावात्मक आवेगों के संघर्ष को नाटक में दिखाए गए लोगों ने सरलता से हृदयंगम कर लिया। महाभारत के प्रारंभिक भाग में अर्जुन–चित्रांगदा की कहानी पर आधारित 'चित्रांगदा' (1892) महाभारत की मूल कहानी का एक नया संस्करण है। चित्रांगदा को अर्जुन द्वारा अस्वीकार करना, चित्रांगदा द्वारा अर्जुन को प्राप्त करने की साधना, अर्जुन और चित्रांगदा का संभोग–सुख, चित्रांगदा का आत्मपरिचय आदि महाभारत की घटनाओं से अलग नाटककार ने आत्म–कल्पित घटनाओं के माध्यम से नाटक को कौतूहलपूर्ण बना दिया है। यह कहा जा सकता है कि प्रेम के प्रति नाटककार की मार्मिक भावनाएँ इन नाटकों में बाह्य घटनाओं से अधिक महत्वपूर्ण हो गई हैं। यहाँ प्रेम को एक साधारण सार्वभौम विचार के रूप में व्यक्त किया गया है। 'मालिनी' (1896) नाटक में दो विचारधाराओं के टकराव को 'विसर्जन' की तरह देखा जा सकता है। वास्तव में इस समय रवींद्रनाथ स्वयं व्यक्तिगत जीवन में धार्मिक रूढ़ियों के विरोधी के रूप में सक्रिय थे। 1891 में आदि ब्रह्मसमाज के सचिव के रूप में चुने जाने के बाद उन्होंने खुद को हिंदू–ब्रह्म संघर्ष में शामिल कर लिया। उन्होंने उस समय लिखी गई अपनी कविताओं, निबंधों आदि में हिंदू धर्म पर गंभीर हमला किया। 'विसर्जन' और 'मालिनी' में ब्राह्मणों द्वारा हिंदू धर्म पर कब्जा जमाने के खिलाफ उन्होंने कड़ा विरोध दर्ज किया। इसलिए गोबिंदमाणिक्य, अपर्णा या मालिनी ने जिस धर्म को स्थापित करने की कोशिश की है, वह वास्तव में हृदयधर्म, कल्याणधर्म, समाजधर्म या मानवधर्म है। उल्लेखनीय है कि 'विसर्जन' में परोक्ष रूप से बौद्ध धर्म के जिन आदर्शों को रूपायित किया गया है, मालिनी में नाटककार ने खुलकर इसका समर्थन किया है।

'मालिनी' की रचना के ठीक पहले और बाद में, रवींद्रनाथ ने कई नाट्यकाव्य लिखे, जिनमें नाटक पर कविता हावी रही। यह कहा जा सकता है कि नाटक यहाँ केवल एक साधन है, मुख्य उद्देश्य कविता है। 'गांधारी की अपील', 'कर्णकुंती संवाद', 'नरकवास', 'सती', 'लक्ष्मी की परीक्षा' आदि इसी शैली में लिखे गए नाटक हैं। नाट्य काव्य में नाटकीयता महत्वपूर्ण होते हुए व्यक्तिगत हृदय की भावनाओं का ज्वार इनके नाटकों को जीवंत बनाता है। मुझे 'विदाई–अभिशाप' नाट्य में कर्तव्य और प्रेम में द्वंद्वात्मक संघर्ष दिखाई देता है। 'गांधारी की अपील' में एक चौंका देनेवाला संघर्ष सामने आया है–माँ–बेटे, पिता–पुत्र, पति–पत्नी, सास–बहू के बीच। करीबी रिश्तों के बीच तीव्र संघर्ष को उजागर करनेवाला यह एक रोमांचकारी नाटक है। 'कर्णकुंती संवाद' में माँ–बेटे के बीच वैचारिक संघर्ष को उपजीव्य बनाया गया है। 'गांधारी की अपील' में जननी की सत्यनिष्ठता ममता पर विजय प्राप्त करती है; लेकिन 'कर्णकुंती संवाद' में सत्यनिष्ठता ममता के आगे झुक जाती है। एक माँ अपने बेटे का परित्याग करती है और दूसरी माँ प्यार से वंचित अपने बेटे को स्वीकार करने आई है। एक के बेटे ने अपने अभिमान के कारण सभी का परित्याग किया और एक के बेटे ने खुद को

हमेशा के लिए सभी से वंचित रखा। इन दो नाटकों से हमें पता चलता है कि प्रेम का एक ही रूप अलग–अलग संदर्भों में कैसे अलग–अलग रूप ले लेता है। 'सती' नाटक में बच्चों और माता–पिता के बीच ही द्वंद्व देखने को मिलता है। गांधारी और रमाबाई इन दो तेजस्विनी माताओं ने अपने उच्च आदर्शों के लिए अपने हृदय के स्नेह को भी त्याग दिया। गांधारी ने पुत्र का परित्याग किया, जबकि रमाबाई ने बेटे को जीवाजी की चिता के हवाले कर दिया। गांधारी की सत्यनिष्ठा व्यर्थ गई; लेकिन रमाबाई की अंधभक्ति की अंततः जीत होती है।

प्रसंगवश कहा जा सकता है कि रवींद्रनाथ के अधिकांश नाटकों पर काव्य का प्रभाव है। एकमात्र 'सती' नाटक मराठी इतिहास की कहानी पर आधारित है। इस नाटक में उन्होंने मूल कथा से कहीं भी छेड़छाड़ नहीं की है। इस नाटक की रचना में उन्होंने केवल भावधर्मिता को ही प्रक्षेपित अंश के रूप में प्रयोग किया है। शाश्वत जीने के जितने भी रूप उन्होंने देखे हैं, उसे अपनी रचनाओं में आंशिक सत्य या सामाजिक तथ्य के रूप में चित्रित करते हुए जीवन संघर्ष और उनकी अखंडता के मध्य उन्होंने सत्यधर्मिता और मानवतावाद की शाश्वतता को प्रमुखता दी है। जिस प्रकार सूर्य के आलोक से पूरी पृथ्वी आलोकित होती रहती है, उसी प्रकार इनकी संपूर्ण रचनाओं में मानवतावादी विचारधारा आलोकित होती रहती है।

अब रवींद्रनाथ के प्रहसन पर विचार करना समीचीन होगा। रवींद्रनाथ से पहले बहुत से रचनाकारों ने प्रहसन लिखे हैं। रवींद्रनाथ द्वारा लिखे गए प्रहसन अन्य लेखकों के द्वारा लिखे गए प्रहसन से अलग महत्व रखते हैं। संवेदनशील और प्रखर स्वतंत्रबोधसंपन्न कवि रवींद्रनाथ व्यंग्य लिखते समय भी अपनी विशिष्ट लेखकीय शैली को नहीं भूलते हैं। शब्दविन्यास की विशिष्टता, संतुलित भावना, तीक्ष्ण–मधुर संवाद और सूक्ष्मता इनके व्यंग्य की विशेषता है। 'बैकुंठ का खाता', 'चिरकुमार सभा' और 'शेष रक्षा' उनके तीन सफल प्रहसन हैं। 'बैकुंठ का खाता' में बैकुंठ का बैकुंठ के प्रति इतना लगाव है कि अन्य लोगों से वह इसके बारे में बातें करता रहता है। बैकुंठ के साथ–साथ अविनाश भी अपनी लिखी हुई रचनाओं को दूसरे को सुनाने के लिए व्यग्र हो उठता है। नाटककार ने यह दिखलाया है कि विशेष परिस्थिति में अधिकांश लोग व्यतिक्रम के शिकार हो जाते हैं; इसीलिए सबसे सरल तरीका यही है कि दूसरों की कमियों की अवहेलना करें। यदि ऐसा नहीं किया गया तो बुद्धिमान–से–बुद्धिमान व्यक्ति भी अपनी बुद्धि और विचार शक्ति खो सकता है। 'चिरकुमार सभा' नाटक में जितनी सभाओं का आयोजन होता है, उन चर्चाओं से ऐसा लगता है कि कौमार्य रक्षा को लेकर दृढ़–संकल्पित नहीं है। वास्तव में रवींद्रनाथ वैराग्य एवं संन्यास धर्म की भी हृदय से श्रद्धा नहीं करते थे। उनका यह विश्वास था कि मनुष्य अपने संपूर्ण जीवन में सांसारिक बंधनों के भीतर से ही चिर आनंद की अनुभूति एवं मुक्ति का प्रयास कर सकता है। उनकी दृष्टि में भोग–विलास के इतर वैराग्य जीवन मूल्यहीन तथा

हास्यास्पद है। रवींद्रनाथ के जीवनीकार प्रभात कुमार मुखोपाध्याय ने रवींद्र जीवनी में लिखा है–''संभवतः स्वामी विवेकानंद के संन्यासी संप्रदाय का मखौल उड़ाने के लिए ही रवींद्रनाथ ने प्रहसन की रचना की है।'' 'शेष रक्षा' प्रहसन 'गोड़ाए गलद' का ही परिमार्जित एवं संशोधित रूप है। इस प्रहसन में तीन जोड़ा युवक–युवतियों को अलग–अलग तरीके से स्वतंत्रतापूर्वक जीवन जीने की छूट दी गई है। अंत में तीनों के मिलन में कौतूहल उत्पन्न करके पाठकों के हृदय को रससिक्त करने का सफल प्रयास किया गया है।

नाटक के क्षेत्र में रवींद्रनाथ की अलग पहचान कायम करने में सांकेतिक एवं रूपक नाटकों की महत्वपूर्ण भूमिका है। नाटक में सांकेतिक और रूपकत्व को लेकर विद्वानों में आपस में मतभेद हैं। यहाँ तक कि कुछ आलोचकों ने ऐसे नाटकों को तथ्यात्मक नाटकों की श्रेणी में रखा है। 'राजा', 'अचलायतन', 'डाकघर', 'मुक्ताधारा', 'शरदोत्सव' इत्यादि नाटकों को इस श्रेणी के अंतर्गत रखा जा सकता है। वस्तुपक्ष की दृष्टि से समालोचकों ने इन नाटकों में एक से अधिक क्षेत्रों में रूपक या सांकेतिकता अथवा किसी–किसी नाटक में दोनों ही गुणों को उजागर किया है। भावों की दृष्टि से रवींद्रनाथ मूलतः कवि एवं सौंदर्य के पुजारी हैं। इनके संबंध में यह कथन निर्विरोध रूप से कहा जा सकता है कि उन्होंने जीवन के सौंदर्य पक्ष के साथ–साथ वस्तुवादी पक्षों को भी बारीक नजर से देखा है। संसार की जीवनलीला का रहस्य, मनुष्य–मनुष्य के बीच प्रेम संबंध, मधुर एवं जटिल संबंधों ने उनकी चेतना को निरंतर तरंगायित किया है। इनके सांकेतिक नाटकों में वस्तुवादी एवं सौंदर्य–पक्ष का पूर्ण समन्वय देखने को मिलता है। वैश्विक चिंता एवं उसके उपाय, सामाजिक बंधन और मुक्ति के उपाय, राष्ट्रहित की उन्नति एवं अवनति के लिए उठाए गए कदम तथा मानव जीवन की अनुभूतियों एवं वेदना तत्वों के प्रतिवाद में जिन भावों का प्रकाश हुआ है, वही इनके तथ्यात्मक नाटक हैं।

'गीतांजलि'–'गीतगम्य'–'गीताली' काल के दौरान रवींद्रनाथ का मन अरूप (निराकार ब्रह्म) की खोज में लगा था, तब उन्होंने निराकार ब्रह्म पर आधारित एक नाटक 'अरूप रतन' लिखा, जिसे बाद में 'राजा' (1910) कहा गया। इस नाटक के दो पक्ष हैं–

1. निराकार ब्रह्म के भीतर ही साकार ब्रह्म
   अर्थात सृष्टि का सार निहित है।
2. सत्य और शिव से साक्षात्कार तभी हो सकता है, जब कोई दुःख से परे हो जाए।

नाटक 'अचलायतन' (1819) में नाटककार ने जीवन और जड़ता के बीच के संघर्ष को दिखाया है। इस नाटक में यह दिखाया गया है कि सामाजिक अंधविश्वासों एवं रूढ़ियों के कारण किस तरह से समाज के विकास का रास्ता अवरुद्ध हो जाता है। 'खेया' की कविताओं में जिस राजा की कहानी का उल्लेख किया गया है, इस

नाटक में उन्हीं की कहानी को प्रमुखता मिली है। यह अवश्य है कि इस नाटक में उनके विविध रूपों का चित्रण हुआ है–' अचलायतनों के वे गुरु हैं, शोनापंशुओं के दादा ठाकुर, और दर्भकों के गोसाईं हैं। उन्होंने अचलायतन के अँधेरे घर के दरवाजे और खिड़कियाँ तोड़कर खुद को स्थापित किया तथा ज्ञान, कर्म और भक्ति के आधार से अचलायतनिक, शोनपुंशु और दर्भकों का संयोजन किया। रवींद्रनाथ द्वारा रचित सांकेतिक नाटकों में 'डाकघर' (1918) सबसे ज्यादा लोकप्रिय है। इस नाटक में सौंदर्य के प्रति आत्मिक लगाव और विरहणी नायिका के संतप्त चित्त और वेदना का मर्मस्पर्शी चित्रण हुआ है। इस नाटक में घर में कैद रहनेवाला बालक अमल मानो रवींद्रनाथ का ही प्रतिरूप है। 'मुक्तधारा' (1929) में रवींद्रनाथ ने मशीनीकरण और हिंसक राष्ट्रवाद का विरोध किया। उन्होंने दिखाया है कि मशीन मनुष्य को गुलामी की जंजीर में बाँधती है। इसका चरित्र मानवताविरोधी है। अपनी पुस्तक 'राष्ट्रवाद' में उन्होंने दिखाया है कि इस तंत्र के उपासक पश्चिमी देश शक्ति और धन के बल पर कट्टरपंथी राष्ट्रवादी बन रहे हैं। यह कट्टरपंथी राष्ट्रवाद मानव सभ्यता के लिए कितना हानिकारक है इसका उल्लेख उन्होंने 'Nationalism' नामक पुस्तक में किया है। 'रक्तकर्बी' (1931) नाटक में दिखाया गया है कि आधुनिक भौतिकवादी विश्व सभ्यता के दो ही अस्त्र हैं– मशीन और पूँजीवाद, दोनों एक–दूसरे के पूरक हैं। इन दोनों के संयोग से उभरनेवाली भौतिकवादी शक्ति ने इस दुनिया में अधिनायकवादी ताकतों को बढ़ावा दिया जो कि मिट्टी को पत्थर और मनुष्य को कठपुतली में तब्दील करता जा रहा है।

रवींद्रनाथ के नाट्य भंडार में कुछ सामाजिक और कुछ नृत्य नाटक भी हैं। उनके द्वारा लिखे गए 'शोधबोध', 'बाँसुरी' आदि सामाजिक नाटक हैं। 'नटीर पूजा', 'चित्रांगदा', 'चंडालिका', 'श्यामा' आदि उनके नृत्य नाटक हैं। रवींद्र की नाट्यप्रतिभा गीतिनाट्य से शुरू हुई और नृत्यनाटिका में समाप्त हुई। संगीत का आश्रय लेकर उनकी नाट्यप्रतिभा का उन्मेष हुआ और नृत्य का सहारा लेकर उनकी नाट्यप्रतिभा की पूर्णता हुई। नृत्य–नाटकों की रचना करने के कारण जीवन के अंतिम समय में नृत्य के प्रति उनका लगाव उतरोत्तर गहरा होता चला गया। शांतिनिकेतन में नृत्य–अभ्यास संबंधी चर्चा–परिचर्चा, नृत्य अभ्यास की निरंतरता, शांतिनिकेतन नृत्य शैली के अलावा, मणिपुरी नृत्य, काठियावाड़ और गुजराती लोकनृत्य, कथकली, कत्थक आदि के निरंतर अभ्यास से नृत्यकला का पूर्ण विकास हुआ। रवींद्रनाथ ने इन विविध नृत्य नाटकों को एक नया रूप दिया। यह रवींद्रनाथ ही थे, जिन्होंने पहली बार मंच पर भद्रघर के लड़कों का नृत्य प्रदर्शन करवाया था। नृत्य, संगीत और अभिनय को मिलाकर उनकी नृत्य नाटक की योजना बंगाल की सांस्कृतिक दुनिया में एक अद्भुत घटना के रूप में अंकित हो गई है। विश्वसाहित्य और भारतीय साहित्य में रवींद्रनाथ का साहित्यिक व्यक्तित्व अप्रतिम और बेजोड़ है। हमारा संपूर्ण समकालीन

रचनालोक आज भी उनके रचनालोक से आलोकित हो रहा है।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. अजीत कुमार घोष, 'बांग्ला नाटक का इतिहास', जनरल प्रिंटर्स, याओ पब्लिशर्स लिमिटेड, कोलकाता–13, आठवाँ संस्करण, 1999
2. उपेंद्रनाथ भट्टाचार्य, 'रवींद्र–काव्य–परिक्रमा', ओरिएंट बुक कंपनी, कोलकाता, संस्करण–25, बैसाख, 1993
3. क्षेत्र गुप्त, 'बांग्ला साहित्य का समग्र इतिहास', ग्रंथनिलय, कोलकाता–01, तेरहवाँ संस्करण, जुलाई–2009
4. चारुचंद बनर्जी, 'रवि रश्मी' (दो खंड), देज पब्लिकेशंस, कोलकाता–73, सेवेंथ कॉलेज स्ट्रीट एडिशन
5. निहाररंजन रॉय, 'रवींद्र साहित्य का परिचय', न्यू एज पब्लिशर्स, कोलकाता–09, संभन प्रिंटिंग
6. प्रभात कुमार मुखोपाध्याय, 'रवींद्र जीवनी और रवींद्र साहित्य परिचय', विश्व भारती, कोलकातां–17, पंचम संस्करण
7. प्रशांत कुमार पाल, 'रविजीवनी', आनंद पब्लिशर्स प्राइवेट लिमिटेड, कोलकाता–02, प्रथम संस्करण
8. श्री भूदेव चौधरी, 'बांग्ला साहित्य का संक्षिप्त इतिहास', देज पब्लिकेशंस, कोलकाता–73, प्रथम देज, संस्करण का पुनर्मुद्रण, दिसंबर–2000

❑❑❑

स्त्रीभाषा और हिंदी की स्त्री आलोचना का प्रश्न

सुधा सिंह

हिंदी में भाषा का प्रश्न पाठ्यक्रम के बँधे बँधाए ढर्रे से अलग तब निकल सका जब स्त्री लेखन और स्त्रीभाषा का प्रश्न सामने आया। जहाँ तक मेरी जानकारी है, हिंदी में स्त्री लेखन के संदर्भ में स्त्री भाषा के प्रश्न को सबसे पहले विस्तारपूर्वक जगदीश्वर चतुर्वेदी की पुस्तक 'स्त्रीवादी साहित्यविमर्श'[1] में विवेचित किया गया। इस पुस्तक के ग्यारहवें अध्याय में 'स्त्री भाषा की सैद्धांतिकी' शीर्षक से उनचालीस पन्ने का लंबा आलेख शामिल है। इसके पश्चात 'ज्ञान का स्त्रीवादी पाठ' (सन 2008, सिंह, सुधा, ग्रंथशल्पी, नई दिल्ली) में भी स्त्रीभाषा के प्रश्न पर गंभीरतापूर्वक विचार हुआ है। सन 2005–08 के बीच इस लेखिका द्वारा 'भाषा का कामुक खेल और स्त्री भाषा' ('पहल' पत्रिका) तथा दिल्ली विश्वविद्यालय के पाठ्यक्रम के लिए लिखे गए दो लेख– 'भाषा में वर्ग और लिंगबोध' तथा 'व्याकरण की चालाकियाँ और भाषाई खेल' प्रकाशित हुए। सन 2009 में 'संवेद', दिल्ली, पत्रिका की तरफ से अक्तूबर अंक में अनामिका जी की पुस्तिका 'स्त्री का भाषा–घर' निकली।

भाषा के प्रश्न पर बात करते हुए बात कहाँ से शुरू की जा रही है, यह सवाल महत्वपूर्ण है। यहाँ यह ध्यान रखना चाहिए कि भारत के परिप्रेक्ष्य में भाषा का सवाल आधुनिक जनतंत्र का अहम सवाल है। आधुनिक हिंदी साहित्य का आरंभ ही भाषा–विवाद के प्रश्न से होता है। लेकिन भाषा का यह विमर्श 19 वीं शती के आरंभ में राष्ट्र–राज्य की अवधारणा और राष्ट्रीयता के साथ जुड़ा हुआ था। वहाँ एक राष्ट्रीय भाषा और संपर्क भाषा की शिद्दत से ज़रूरत महसूस की गई। राष्ट्रभाषा के रूप में किसी एक भाषा की स्थापना राष्ट्रीय एकता और राष्ट्रहित के प्रश्न के साथ जुड़ा प्रश्न हुआ है। इस क्रम में किसी नई भाषा की निर्मित नहीं बल्कि उससे महत्वपूर्ण भाषा की पोजिशनिंग थी। भाषा की राष्ट्रीय छवि और राष्ट्रभाषा के रूप में उसकी पहचान को जनप्रिय बनाने का सवाल प्रमुख था।

भाषा तो पहले से मौजूद थी, व्यवहार में थी लेकिन गद्य की भाषा खड़ीबोली नहीं

थी।भाषा को पहचान के रूप में स्थापित करने की समस्या तब सामने आई जब छापे की मशीन और मुद्रण कला का जन्म हुआ और पहचान के रूप में गद्य को प्रमुख स्थान दिया गया। लेखक की पहचान गद्य से होने लगी, पहले पहचान का आधार कविता थी, अब कहानी, उपन्यास, निबंध आदि बनने लगे। गद्य के उदय के साथ भाषा की अस्मिता और भाषा के सवाल केंद्र में आए। ये सार्वभौम परिघटना है।यही परिघटना भारत की अन्य भाषाओं में भी घटित हुई। जिस जिस भाषा के साहित्य में गद्य आता चला गया, वहाँ भाषा की अस्मिता के प्रश्न भी उठ खड़े हुए। मराठी, तमिल, बाग्लां आदि भाषाओं में भी ऐसा ही हुआ।

उल्लेखनीय है कि भाषा पहले भी थी लेकिन जरूरत उसे आधुनिक विचारों और राष्ट्र के हितों के अनुरूप ढालने की थी। इसी क्रम में भाषा की कटाई–छटाई भी की गई। उसके देशज और स्थानीय स्वरूप को गँवारू समझा गया और उसके मानकीकरण के प्रयास आरंभ हुए। इससे भी बड़ी चीज जो घटित हुई कि इस नव विकसित राष्ट्रभाषा के साहित्य के निर्माण के प्रयत्न गंभीरता से आरंभ हुए।

इसमें प्रेस और गद्य साहित्य ने अपनी महती भूमिका निभाई। जातीय भाषा और भाषाई अस्मिता के प्रसंग में भाषा की भूमिका को जिस तरह देखा जाता रहा है, वह केवल संप्रेषण के माध्यम, राष्ट्रीय एकता के उपकरण आदि के रूप में है। प्रसिद्ध आलोचक रामिवलास शर्मा 19वीं शती में हल कर लिए गए भाषा विवाद के प्रश्न को नए संदर्भ में फिर से विवेचित करते हैं। अर्थात् हिंदी राष्ट्रभाषा के सर्वथा योग्य थी, उसमें भारतीयों के हृदय के तार जुड़े हुए थे, वैज्ञानिक विन्यास के कारण वह सर्वग्राह्यता का दावा रखती थी। खड़ी बोली हिंदी और उर्दू में कोई बड़ा भेद नहीं बस लिपि का भेद ही है जो दोनों को अलग भाषा बनाती है– ये सारी बातें रामिवलास जी ने आधुनिक काल में भाषा विवाद के संदर्भ में विवेचित की हैं। रामिवलास जी ने भाषा–विवेचना के क्रम में कई महत्वपूर्ण स्थापनाएँ दीं। इनमें सबसे महत्वपूर्ण स्थापना जातीय भाषा के संदर्भ में थी। खड़ी बोली हिंदी की प्रतिष्ठा उन्होंने जातीय भाषा के रूप में की। कई अर्थों में यह काम भाषा की पहचान को खोजने और विश्लेषित करने का था। लेकिन इसके बावजूद रामिवलास शर्मा के भाषा–संबंधी काम को अस्मिता विमर्श के दायरे में नहीं रख सकते। हालाँकि स्वयं रामिवलास जी हिंदी को जातीय अस्मिता के संदर्भ में रखकर विवेचित करते हैं, लेकिन वे कहीं भी अस्मिता विमर्श के आलोचनात्मक संदर्भों का इस्तेमाल खड़ी बोली हिंदी के जातीय स्वरूप की खोज और स्थापना के क्रम में नहीं करते।

हिंदी में रामिवलास जी से बड़ा भाषा विश्लेषक बीसवीं शती के उत्तरार्द्धा में नहीं हुआ। उनके यहाँ भाषा के विश्लेषण का संदर्भ बिंदु स्वाधीनता संग्राम और जातीयता (नेशनलटी) है। यही कारण है कि रामिवलास जी भाषिक अस्मिता के विविध रूपों को

एकदम स्वीकार नहीं करते। भाषाई पहचान के अंतर्गत उनके लिए क्षेत्रीय पहचान, भाषा का सांप्रदायिक रूप, उसमें निहित पुनरुत्थानवादी तत्व इन सबको वे भाषा की विवेचना में ठेलकर बाहर करते हैं और भाषा का एक सर्वसम्मत जनवादी रूप स्थिर करते हैं। यह ध्यान रखना चाहिए कि हिंदी के अखिल भारतीय जातीय स्वरूप की स्थापना का संदर्भ राष्ट्रीय स्वाधीनता आंदोलन से जुड़ा हुआ था।

बीसवीं शती के सातवें–आठवें दशक में भाषा का प्रश्न एक बार फिर से महत्वपूर्ण प्रश्न के रूप में उठा। लेकिन इस बार संदर्भ बदल चुका था। अब संदर्भ बिंदु जातीय अस्मिता न होकर जेंडर था। भाषा की भाषावैज्ञानिक, दार्शनिक और समाजशास्त्रीय विवेचन से अलग भाषा एक जेंडर निर्मित है, इस पर जोर देकर बात शुरू हुई। इस काम में फ्रांसीसी स्त्रीवादियों की बड़ी भूमिका रही है। भारत में भाषा के प्रश्न को जेंडर अस्मिता के प्रश्न की तरह विवेचित करने के काम इक्का–दुक्का हुए हैं। ऐसे काम जो अस्मिता विमर्श के रूप में भाषा को केंद्र में रखें और स्त्री भाषा की कोटि को सैद्धांतिक रूप से परिभाषित कर सकें, बहुत कम हुए हैं। हिंदी में इस पक्ष से गंभीर कामों का अभी भी घोर अभाव बना हुआ है। स्त्री लेखन और स्त्रीवादी लेखन उर्फ हम स्त्रीवादी नहीं हैं!

उल्लेखनीय है कि उन्नीसवीं सदी के उत्तरार्द्ध और बीसवीं सदी के पूर्वार्द्ध की भाषा संबंधी विवेचना के संदर्भ बिंदु अलग–अलग हैं। बात को यहाँ से समझना चाहिए अन्यथा विवेचनात्मक घालमेल की संभावना बनी रहेगी। जब हम स्त्री भाषा की बात करते हैं तो हमारे सामने बीसवीं सदी का स्त्री आंदोलन है। स्त्री आंदोलनों की भूमिका को पहचाने बिना स्त्री भाषा पर बात करना कॉस्मेटिक विमर्श होगा। जो हिंदी में अधिकांश लेखिकाओं के यहाँ फैला हुआ है। यह ध्यान रखना आवश्यक है कि भाषा का प्रश्न आधुनिक काल का सबसे बड़ा राजनीतिक प्रश्न है। भाषा की राजनीति को विवेचित किए बिना स्वाधीनता आंदोलन का परिप्रेक्ष्य समझ में नहीं आ सकता। इसी प्रकार स्वाधीनता आंदोलन के राजनीतिक परिप्रेक्ष्य के बिना भाषा के जातीय स्वरूप की अवधारणा का जन्म संभव नहीं था। न केवल इस कालखंड विशेष में भाषा विमर्श का बल्कि भारत में भाषावार प्रांतों के गठन के विमर्श का भी महत्वपूर्ण राजनीतिक संदर्भ रहा है। ठीक इसी प्रकार जब स्त्री विमर्श के तहत स्त्री भाषा के प्रश्नों को उठाया गया तो इसका भी महत्वपूर्ण राजनीतिक संदर्भ है जो स्त्री अधिकारों के लिए भारत और दुनिया भर में चल रहे स्त्री आंदोलनों से जुड़ता है

हिंदी के स्त्री विमर्श का सबसे बड़ा संकट है कि यह आज तक अपने को स्त्रीवादी साहित्य सैद्धांतिकी अथवा आलोचना से जोड़ नहीं पाया है। इसका सबसे बड़ा कारण है इसका गैर–राजनीतिक लेखन। अवधारणाओं से परहेज़ स्त्री आंदोलनों और मुद्दों से सक्रिय जुड़ाव और सरोकार का अभाव। अस्सी–नब्बे के दशक में स्त्री रचनाकारों के रूप में हम जिनकी तस्दीक करते हैं, वे दरअसल मुख्यधारा में पहले से

लिख रही लेखिकाएँ हैं, जो या तो स्वयं इधर आईं हैं अथवा विमर्श की ज़रूरतों के अनुसार कुछ निशानदेहियों के आधार पर उन्हें इधर खींच लाया गया है। यही वजह है कि आज भी बहुत–सी लेखिकाएँ अपने को स्त्रीवादी कहने से परहेज करती हैं। वे कई बार कहती पाई जाती हैं कि वे स्त्री की समस्याओं पर लिखती हैं लेकिन स्त्रीवादी नहीं हैं। स्त्रीवादी न होने के पीछे उनका तर्क क्या है–स्पष्ट नहीं। संभवतः वे समझती हों कि स्त्रीवाद की मुहर लगाए बिना वे ज्यादा स्वतंत्र हैं। कहीं न कहीं अंडरकरेंट के तौर पर यह चेतना भी शामिल है कि स्त्रीवाद का टैग लगने पर वे मुख्यधारा के लेखन से बाहर कर दी जाएँगी और स्त्रीवाद के दायरे तक समेट दी जाएँगी। साथ ही स्त्रीवाद को एक आक्रामक विमर्श मानने की धारणा भी इसके पीछे काम कर रही है स्त्रीवाद के समूहबद्ध प्रतिबद्धता से एक किस्म का अलगाव भी है, जो इस तरह की अभिव्यक्तियों में काम करता है। कुल मिलाकर यह भारत में स्त्रीवादी विमर्श के लिए बहुत उत्साहजनक स्थिति नहीं है।

हिंदी की स्त्री आलोचना की बुनियादी समस्याएँ

अगर आलोचना साहित्य का रिटर्न गिफ्ट नहीं है कि तू मेरी प्रशंसा कर मैं तेरी, तो मुझे वस्तुगत रूप से कुछ बातें कहनी ज़रूरी लगती हैं। कह सकते हैं कि इन आलोचनात्मक अवधारणाओं ने भारतीय ख़ासकर हिंदी स्त्री लेखन के स्वरूप निर्माण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। हम यह तर्क देकर संतुष्ट हो सकते हैं कि स्त्री की अनुभूति और संघर्ष का एक अंतरराष्ट्रीय परिप्रेक्ष्य है और उस संदर्भ में देश–विदेश में जो भी आलोचना विकसित हुई है वह सब हमारे काम की है। लेकिन इससे हिंदी की स्त्री आलोचना की कमियों पर पर्दा नहीं पड़ जाता। हमें यह स्वीकार करना होगा सृजनात्मक स्त्री लेखन से इतर हिंदी की स्त्रीवादी आलोचना की अवधारणाओं का न्यूनतम इस्तेमाल करती है। बुनियादी तौर पर वे सिर्फ नामस्मरण से काम चलाती हैं। हिंदी में कई बड़ी लेखिकाएँ जो विभिन्न पुरस्कारों से सम्मानित भी हैं यह कहती पाई जाती हैं कि आलोचना, उनके सृजनात्मक लेखन का विस्तार ही है। चूँकि हिंदी की मुख्यधारा में आलोचना के संबंध में यह प्रबल पुष्ट धारणा है कि वह रचना का सृजनात्मक विस्तार है तो स्त्री आलोचना में इस धारणा को ज्यों का त्यों ले लेना बहुत माकूल भी था। इस प्रक्रिया में अनुभव की प्रामाणिकता का प्राधान्य बना रहता है। यह ठीक है कि आलोचना, रचना का सृजनात्मक विस्तार अंशतः होती है, लेकिन स्त्रीवादी साहित्य आलोचना की अवधारणाओं के अभाव में इस तरह का आलोचना और निबंध–लेखन के अंततः दिशाहीनता का शिकार होने की संभावनाएँ ज्यादा हैं। इसका एक और पहलू यह है कि वे लेखन के नाम पर लेखन करके साहित्य का स्पेस तो घेर लेती हैं लेकिन स्त्रीवादी आलोचना में योगदान नहीं कर पातीं। 'साहित्य का स्पेस' में ऐसे पुरुष और स्त्री रचनाकारों की संख्या बहुत बड़ी है जो अवधारणाओं में न तो सोचते हैं और न ही लिखते हैं। इसे आलोचना या स्त्रीवादी आलोचना न कहकर

आलोचना में शब्दस्फीति कहना समीचीन होगा।

यह नहीं भूलना चाहिए कि स्त्रीवादी लेखन और आलोचना का सबसे प्रबल पक्ष राजनीतिक और अवधारणात्मक हस्तक्षेप का है। स्त्री लेखन से राजनीति को निकाल दीजिए, वह नई 'विनयपत्रिका' बन जाएगी! कबहुँक मेरो सुधि द्यायबौ टाइप! यह सच है कि स्त्री लेखन अनुभूति से आरंभ होता है लेकिन वहीं नहीं थम जाता, वह राजनीति तक पहुँचता है। अन्यथा उसकी पहचान स्त्रीवादी लेखन के तौर पर बन ही नहीं सकती। स्त्री लेखन और स्त्रीवादी लेखन पदबंध को समझने की ज़रूरत है।स्त्री लेखन और स्त्रीवादी लेखन अथवा स्त्री साहित्य जैसी अवधारणाएँ राजनीतिक अवधारणाएँ हैं। स्त्री–लेखन पद का अर्थ जहाँ केवल स्त्री के लिखे भर को संकेतित करता है, वहीं स्त्रीवादी लेखन स्त्री की विचारधारा से लैस राजनीतिक लेखन है। स्त्री–लेखन एक तरह से 'प्रोटोटाइप' पदबंध है जिसमें स्त्री द्वारा लिखा गया ही शामिल है जबकि स्त्रीवादी लेखन में स्त्री या पुरुष किसी के भी द्वारा किया गया ऐसा लेखन जो स्त्री चेतना से युक्त हो, उसका राजनीतिक संदर्भ हो, शामिल है। यह बुनियादी अंतर है। मैं मानती हूँ कि स्त्री–लेखन लेखन के क्षेत्र में अंततः उसी जैविक निर्धारणवाद में फँसता है जिसका शिकार उसे पुंसवादी मानसिकता विभिन्न क्षेत्रों में बनाए हुए है। इसका दूसरा साहित्यिक प्रतिफलन अनुभूति के साहित्य और अनुभूति की प्रामाणिकता के आधार पर अन्य जेंडर (एलजीबीटी तथा अन्य जेंडर रूप भी इसमें शामिल हैं) द्वारा स्त्री के विषय में लिखे गए से इंकार है। यह मानना है कि चूँकि कुछ अनुभव स्त्री की देह से जुड़े हैं और चूँकि स्त्री ही उन अनुभवों से जैविक तौर पर गुजरती है तो उन अनुभवों की प्रामाणिकता स्त्री की अनुभूतियों के बयान पर टिकी है, किसी अन्य की इस संबंध में प्रामाणिकता संदिग्ध है।

हिंदी में लेखिकाओं का लिखा बहुलांश स्त्रीलेखन की कोटि में ही आएगा। स्वयं जब लेखिकाएँ मंचों से और लिखकर उद्घोषणाएँ कर रही हैं कि वे स्त्रीवादी नहीं हैं तो हमें जबरन उन्हें स्त्रीवादी कहने का कोई हक केवल इसलिए नहीं मिल जाता कि हम उनके पाठक हैं। हमें उनकी बात पर सोचना होगा और बहुत सी अवधारणाओं को उन पर आरोपित करने से बचना होगा। जो अकसर उनके साहित्य का मूल्यांकन करते हुए हम करते हैं। कुछ आगे कहने से पहले यहाँ यह भी स्पष्ट कर देना चाहती हूँ कि स्त्रीवाद कोई स्थिर विचारधारा नहीं है जो स्थिर अवधारणाओं में सोचता है। यह निरंतर विकसित होती अवधारणाओं में सोचता है। स्त्रीवाद के अंतर्गत अलग–अलग समय में विचार के मुद्दे अलग–अलग रहे हैं और लगातार बदलते रहे हैं।

स्त्री एक साथ स्थानीय, जातीय और वैश्विक है, उसे इस परिप्रेक्ष्य में सोचना और लिखना चाहिए– इस चेतना का विकास जब तक स्त्री लेखन में नहीं होगा तब तक कोई संतुलित दृष्टिकोण विकसित नहीं होगा। हिंदी की पहली और अंतिम स्त्रीवादी चिंतक महादेवी वर्मा हैं जिनके यहाँ स्त्री चेतना के तीनों रूप मिलते हैं। उनके लेखन

में स्थानीयता और स्थानीय चिंतन कम से कम आता है और स्थानीयतावाद के रूप में तो नहीं ही आता है। पर आज जो स्त्री लेखन हो रहा, स्त्री लेखन की पहचान जहाँ से बनाई जा रही है वह सचेत या अचेत रूप से स्थानीय है। फलाँ जगह की बेटी, अलाँ जगह की बहू, जैसे पितृसत्ता से युक्त स्थानीय पहचानों को स्त्री और स्त्रीवादी दोनों किस्म का लेखन अपने गले में तमगे की तरह लटकाए घूम रहा है। बिना सोचे–समझे अखबार स्त्री की राष्ट्रीय–अंतरराष्ट्रीय उपलब्धियों पर इस तरह की हेडलाइन बनाते हैं, आसनसोल की बेटी ने नाम रौशन कर दिया, इलाहाबाद की बिटिया ने झंडा बुलंद किया, ढिमका जगह की बेटी की उपलब्धि ने सीना चौड़ा कर दिया– इस तरह के हेडलाइन अंततः स्त्री को पहचान और चेतना के उसी स्थानीयतावाद में कैद करते हैं जिससे लड़ने की जरूरत है।

महादेवी को मैं हिंदी की पहली मुकम्मल स्त्रीवादी चिंतक कहती हूँ। इसके पीछे कारण है उनके लेखन की विचारधारात्मक राजनीतिक चमक, एक साथ ही स्थानीय, जातीय और वैश्विक चेतना, भारतीय स्त्रीवाद की विशेषताओं को रेखांकित करने और उसका आधुनिक आधार तैयार करने की पहलकदमी। "लेनिन के विचारों का उनकी (महादेवी की) समूची सोच पर गहरा असर नज़र आता है। मसलन महादेवी ने बार–बार स्वाधीनता की आकांक्षा को अभिव्यक्ति दी है। इसका अर्थ है कि पूँजीवादी समाज में स्वाधीनता का अभाव वह बार–बार महसूस करती थीं अथवा यह भी कह सकते हैं कि पूँजीवाद औपचारिक तौर पर जिस स्वाधीनता का वायदा करता है उसे प्रयास करके ही अर्जित किया जा सकता है। अथवा यह भी कह सकते हैं कि शुद्ध स्वाधीनता अथवा शुद्ध जनतंत्र जैसी कोई चीज नहीं होती। महादेवी के यहाँ स्वाधीनता का संदर्भ बदलता रहता है। यह सार्वभौम स्वाधीनता नहीं है। यह उपलब्ध में से चुनी जाने वाली स्वाधीनता है "[2] महादेवी लेखन और कला के लिए आस्था के प्रश्न को महत्वपूर्ण मानती हैं। आस्था यानि भरोसा, प्रतिबद्धता। यह रचनाकार की विश्वदृष्टि भी है। महादेवी के अनुसार इस आस्था का आदान जीवन है, यह कोई स्थिर तत्व नहीं है।[3] वह स्पष्ट कहती हैं कि "आस्था जीवनक्रम में निर्मित होती है, अतः उसे कोई जड़ीभूत तत्व मान लेना उचित न होगा।"[4]

महादेवी के स्त्री संबंधी चिंतन में न तो स्त्री का पूर्वापर पक्ष छूटा है, न उसका राजनीतिक अर्थशास्त्रीय विवेचन छूटा है, न ठोस विचारधारा का आधार छूटा है। हिंदी की स्त्रीवादी आलोचना का विकास उससे आगे होना चाहिए था लेकिन अफ़सोस कि स्त्री रचनाकार प्राणपण से अपने को अ–राजनीतिक साबित करने में लगीं। उनका लेखन सामंजस्यपूर्ण विवेचना से ओत–प्रोत और परंपरा के पोषण के नाम पर स्त्री के लिए किसी स्पष्ट सामाजिक–राजनीतिक दृष्टि के अभाव से बुरी तरह लकवाग्रस्त है। इस तरह के दृष्टिकोण से फायदा किसको होगा, यह विचारणीय है। जाहिर है जिसके लिए लिख रही हैं, वैचारिक स्पष्टता के अभाव में उस स्त्री कौम को इससे कोई फ़ायदा

नहीं होनेवाला। इसका फायदा प्रतिगामी पुंसवादी विचारधारा और राजनीति को ही मिलेगा और मिल रहा है। इस तरह के लेखन को किसी भी विचारधारा के साथ समाहित कर लिया जा सकता है लेकिन स्पष्ट वैचारिक प्रतिबद्धता और दृष्टिकोण वाले लेखन को, जैसा कि महादेवी का था, प्रतिगामी विचारधारा के लिए अपने में समाहित करना मुश्किल है।

इस परिप्रेक्ष्य में अनामिका के लेखन के स्त्री भाषा वाले पक्ष पर बात करने की जरूरत है। हिंदी में स्त्री लेखन और आलोचना के विविध वैचारिक उलझनों को इससे समझने में मदद मिल सकती है। अनामिका की पुस्तिका 'स्त्री का भाषा घर'[5] इस आलेख में स्त्री से संबंधित विभिन्न प्रश्नों की विवेचना के केंद्र में है। अनामिका हिंदी की प्रमुख रचनाकार हैं। एक अरसे से वे हिंदी साहित्य की विविध विधाओं में अपना रचनात्मक अवदान कर रही हैं। हाल ही में उनका एक उपन्यास 'आईनासाज' नाम से प्रकाशित हुआ है। उनके लेखन को विभिन्न मंचों से स्वीकृति मिली है। अपने पाठकों में भी वे खासी लोकप्रिय रचनाकार हैं। उन्हें उनकी कृति 'टोकरी में दिगंत' के लिए साहित्य अकादमी पुरस्कार प्रदान किया गया है।

अनामिका के लेखन का परिसर बड़ा है। अपनी तमाम कृतियों में वे अभिनव भाषा प्रयोगों के लिए जानी जाती हैं। उन्होंने अपने गद्य में भी भाषा की विशेष शैली को बनाए रखा है। लेखन और विचारों को संयोजित करने की जगह भाषा ही है।

स्त्री भाषा पर लिखी गई इस पुस्तिका में अनामिका आरंभ में ही स्पष्ट करती हैं कि 'हर जगह लड़ाई वर्चस्व की ही है'[6] स्त्री–भाषा और साहित्य का काम क्या है? "स्त्री भाषा–साहित्य, खासकर भारत में इस प्रश्न पर बहुत सजग है कि कोई किसी का बॉस न हो बाबा! सब एक चटाई पर बैठें–पिढ़िया, मूढ़े, कुर्सियाँ और सिंहासन हों भी 'म्यूजिकल चेयर' वाले खेत (खेल?) के लिए एक गोल में सजे हों–सबकी पारी आए और किसी का आसन छिन भी जाए तो अस (इस?) खेल–खेल में–'खेलत में को काकों गुसैंयाँ!' कोई किसी का गुसाँई न हो पदानुक्रम टूटें– सिर्फ 'पर्सनल', 'पॉलिटिकल', निजी समवेत', 'आत्मिनष्ठ, वस्तुनिष्ठ' आदि ध्रुवरतों का ही पदानुक्रम नहीं, गरीब–अमीर, अवर्ण–सवर्ण, काले–गोरे, प्रगत–विगत, परंपरा–प्रयोग के बीच का पदानुक्रम भी जो सब अपनी विचारधाराओं ने बहुत शान से लागू किए रखा ताकि सनद रहे– 'हू इज द बॉस!"[7]

"आज आदिविस्थापित स्त्री का भाषा–घर के सारी (?) उन बेआसरा युवतिओं, सिसकियों और फरियादों का घर है जिनके लिए इस आतंकविह्वल और युद्धकातर दुनिया में कोई दूसरी जगह बची ही नहीं! 'आजा–पाजा कान में समा जा'! लोककथा का राजकुमार उन सारे बेआसरा जीवों से कहता था जो उससे सर छुपाने की जगह माँगते! शायद इसी खातिर वह सारी दर–बदर बेआसरा जंतुओं का दर्द समझता था और कोई जगह नहीं मिलती तो कान की गुफा में ही उन्हें समाए चलता। स्त्री– भाषा भी यही करती है।"[8]

जबकि स्त्री–भाषा के संदर्भ में तमाम स्त्रीवादी चिंतकों ने साफ़ संकेत किया है कि यह सब तरह के अनुभवों का गड्ड–मड्ड पिटारा नहीं है बल्कि इसमें स्त्री के विशिष्ट अनुभव शामिल हैं। एक ख़ास तरह से देखी जा रही चीज को अलग–तरह से देखने का नजरिया शामिल है। हेलेनी सिक्साउस इस स्थिती के बारे में कहती हैं कि स्त्रियों ने हमेशा पुरुषों के विमर्श के भीतर काम किया है जिसमें हमेशा स्त्री के विपरीत स्वभाव वाले उन संकेतकों को खारिज किया गया है जो इसकी विशेष ऊर्जा का ध्वंस करती है, इसकी विशिष्ट ध्वनि को न्यून बनाती है। लेकिन अब समय आ गया है कि स्त्रियाँ अपने "अंदर" से इन चीजों को विकेंद्रित करे, इन्हें उघाड़े, तोड़–मोड़ करे, अवरुद्ध करे। अपनी जीभ को अपने दातों से ठोकर लगने दे और अपनी भाषा का आविष्कार करने के लिए अपने अंदर जाए। तब हम दखेंगे कि अपने होंठों पर लगी झाग को पोंछते हुए कितनी सहजता से स्त्री अपने भीतर जहाँ वह सुषुप्त पड़ी थी, उससे बाहर आती है।"[9]

मैं समझती हूँ कि स्त्री– भाषा का पहला और महत्वपूर्ण सकारात्मक गुण यही पारदर्शिता है। स्त्री की भाषा की कमियाँ तो भाषाविदों ने नाना रूपों में गिनाई हैं, वह लड़खड़ाती भाषा है, विशृंखल भाषा है, अनिश्चित वाक्यगठन है, प्रश्नवाचकों का प्रयोग करती हैं आदि आदि।[10] स्त्रियों की बात और उनके अनुभव को अब तक रहस्य बनाया गया है, पर्दे केवल उनके चेहरे और शरीर को ढकने के लिए ही नहीं इस्तेमाल किए गए बल्कि उनकी भावनाओं को ढकने और दमन करने के लिए भाषा में अपारदर्शिता को बढ़ावा मिला। स्त्रियों को स्पष्ट न बोलने, कम बोलने, ऊँचा न बोलने, धीरे बोलने, परिवार के दायरे के अंदर बोलने, सार्वजनिक मंचों पर न बोलने, निजी अनुभवों को रहस्यमय बनाकर बोलने आदि के लिए प्रशिक्षित किया गया। इसिलए मीरा को कहना पड़ा, "लोकलाज कुलकानि जगत की दइ बहाय जस पानी, अपने घर का पर्दा कर ले, मैं अबला बौरानी।"

इस अपारदर्शिता और रहस्य के आवरण से अंततः फ़ायदा किसको होना था, जाहिर है मालिकों को होना था। उनको जो स्त्री और भाषा दोनों के मालिक बने हुए थे। सिक्साउस कहती है कि स्त्री प्रेम के संदर्भ से अपना विस्तार करती है, यहाँ तक कि जब उसे पुरुष का प्रेम नहीं मिलता तो माँ के रूप में अनाम चेहरे वाले प्रेम में विस्तार पाती है। लेकिन यह एक हद तक ही ठीक है। मातृत्व भी इस पुंसवादी समाज में एक छद्म निर्मित है। इस प्रेम का विस्तार जब तक वस्तुजगत के अन्य रूपों में नहीं होगा, केवल 'सफेद स्याही' से लिखकर स्त्री बहुत कुछ हासिल नहीं कर पाएगी। इससे बस इतना भर सिद्ध हो सकता है कि स्त्री की भाषा और उसके लेखन ध्वंसकारी नहीं है, वह बुनियादी रूप से प्रेम पर आधारित है।

दरअसल स्त्री का संघर्ष उसके अस्तित्व, अभिव्यक्ति और अस्मिता तीनों ही स्तरों पर है। जबकि हिंदी का स्त्रीवादी विमर्श भाषा से बाहर स्त्री की लड़ाई को नहीं देखता। भाषा और भाषा में बनी अवधारणात्मक सरणियाँ सहज स्वाभविक नहीं हैं, उन्हें बनाया

गया है। और ये अवधारणात्मक सरणियाँ भाषा में तब बनीं जब वे समाज में आ चुकी थीं। भाषा जो काम करती है, उसकी विस्तृत भूमिका पर ठहरकर विचार किए बिना यह मान लेना कि स्त्री के प्रतिरोध का एकमात्र स्थल साहित्य और भाषा ही है, यहीं सारी लड़ाइयाँ लड़ी जा रही हैं। भ्रामक धारणा है। उदाहरण के लिए जब अनामिका जैसी बड़े कद की लेखिका कहती हैं कि "साहित्य और भाषा ही इन दिनों सत्ता विपर्यय का एकमात्र साधन है! इसके बिना मनुष्य सांस्कृतिक परिदृश्य में कोई हल्का भी परिवर्तन घटित नहीं कर सकता, परिवर्तन जो आत्मतोष और मुक्ति दोनों की प्राथमिक शर्त है!"[11] इसी पुस्तक में स्त्री भाषा की परा–आधुनिकता (मेटा–मॉर्डिनिटी?) पर बात करते हुए वे और आगे लिखती हैं, "एक तरह से कहें तो साहित्य और अपनी बोली ही स्त्री का अपना एकमात्र घर है, सर के ऊपर की एकमात्र छत जहाँ से धक्के मारकर निकाल पाना अब किसी और की खातिर संभव नहीं दिखता। आपबीती और जगबीती, आत्मकथा, इतिहास और मिथक उसी तरह सिर जोड़े स्त्री साहित्य में बैठे हैं जैसे इमली के बीजों से सपाटा खेलती तीन सहेलियाँ सिर जोड़े बैठ जाती थीं: पूरी गंभीरता, तन्मयता और अंतरंगता के साथ।"[12]

स्त्री भाषा के संदर्भ में सिर्फ आधुनिकता के प्रश्न नहीं मध्यकाल के प्रश्न भी उतने ही महत्वपूर्ण हैं। क्या सांप्रदायिकता पर बात किए बिना स्त्री भाषा पर बात करना संभव है? हिंदी की स्त्रीवादी लेखन की उल्लेखनीय कमजोरी है कि वह पितृसत्ता पर बात करता है लेकिन सांप्रदायिकता पर चुप्पी लगा जाता है। हिंदी के स्त्रीवादी आलोचना की कमी है कि वह आरंभ से ही इसका शिकार रहा है।

"सांप्रदायिकता के दो छोर हैं– एक अंधराष्ट्रवादी और दूसरा अंध–धार्मिक पहचान की। अंदराष्ट्रवादी छोर अनिवार्यतः राष्ट्रीय पहचान जैसे खोखले सिद्धांतों से जुड़ता है। 'धर्म' और 'राष्ट्र' की अवधारणाएँ एक बार अस्तित्व में आने के बाद स्वयं को डिफेंड' करने के लिए 'शाश्वतता' का ताना–बाना बुनती हैं– धर्म शाश्वत धर्म में बदल जाता है, जिसपर सवाल उठाना कुफ्र बन जाता है; ठीक वैसे ही राष्ट्रीयता शाश्वत देशप्रेम में बदल जाती है। मानवता के विरुद्ध इसके दमनात्मक चरित्र पर पर्दा पड़ जाता है। इस बात से हमारा ध्यान हटाया जाता है कि धर्म और राष्ट्र अंततः वर्चस्व की अवधारणाएँ हैं।"[13]

"सांप्रदायिकता और फासीवाद पर लिखते हुए स्त्री को सांप्रदायिक और फासीवादी शक्तियों के घिनौने तर्कों के खिलाफ लगातार अपने अनुभव को समृद्ध करना पड़ा है। सांप्रदायिकता एक वर्चस्वशाली विचारधारा है और भारतीय समाज में वर्चस्व का मूलाधार पितृसत्तात्मकता है। यह वस्तुतः सांप्रदायिकता का सामाजिक आधार है। पितृसत्तात्मक व्यवस्था समाज में सामाजिक और आर्थिक वैषम्य का स्रोत है। वे तमाम संस्थान, संबंध और समस्याएँ जो समानता का दावा करती हैं, तब ही सही अर्थों में समानतावादी रवैये को व्यक्त कर सकती हैं जब वे पितृसत्ता विरोधी भी हों।

परिवार, स्त्री के निजी जीवन, स्त्रीत्व, कामुकता आदि क्षेत्रों में सांप्रदायिकता पितृसत्ता के मूल्यों को दृढ़ता के साथ लागू करने की हिमायत करती है।"[14]

"सिक्का बदल गया' कहानी इस बात की आदर्श मिसाल है कि कैसे स्त्री –प्रश्न राजनीतिक प्रश्न में बदल जाते हैं। कहानी के वर्णन में अद्‌भुत ठंडापन है। बिना अतिरिक्त आवेश, आक्रोश के कहानी कही गई है। यह विस्थापन की कहानी है। निजाम बदल गया है। शाहनी को अपना घर, अपनी संपत्ति, अपना हक छोड़कर स्थापित होना है। इस कहानी की खूबी है कि विस्थापन की यह कहानी स्त्री के नजरिए से है, उसके संदर्भ से है। शाहनी के आंतरिक उथल–पुथल के साथ–साथ गाँववालों का यह भय कि पीड़िता प्रतिकार न कर बैठे, बेदखल होने से मना न कर दे, इस तनावपूर्ण स्थिति का कहानी में खूबसूरती के साथ चित्रण है। इसका चरम रूप तब देखने को मिलता है जब गाँव के लोग सोचते हैं कि कहीं जाते–जाते शाहनी गाँव वालों को शाप न देकर जाए!"[15] इस कहानी को केवल विभाजन की बड़ी राजनीतिक घटना, धार्मिक और आर्थिक वर्ग के आधार पर पढ़ेंगे तो एक रईस सामंत की स्त्री की संपत्ति पर उसके गरीब नौकर–चाकरों का जिन्हें उसने प्यार से परवरिश दिया था, कब्जा मात्र लगेगा। यह राजनीतिक, धार्मिक और आर्थिक विभाजन की अनिवार्य नियित की तरह लगेगा। अन्य अनेक विडबंनापूर्ण स्थितियों में से यह एक स्थिति मात्र लगेगी। इस दृष्टि से यह कहानी विभाजन की प्रतिनिधिमूलक कहानी न होकर विभाजन के दंगों के दौरान हवा में व्याप्त जहर जो मानवीय संबंधों और विश्वासों की सड़न से पैदा हुआ था, का वर्णन करने वाली एक औसत कहानी प्रतीत होगी। इसमें एक संपन्न स्त्री अपने केमरे आसामियों–नौकरों द्‌वारा बे–दर की गई है। चूँकि सिक्का बदल गया है, अब सामंतों का राज नहीं है, अतः यह होना स्वाभाविक था। इस कहानी में द्वंद्व और तनाव का वैसा हिंसक क्षेत्र भी नहीं बनता जैसाकि विभाजन और दंगों पर लिखी गई कहानियों में अमूमन बनता है। स्त्री पर अत्याचार और हिंसा का मंटों मुखर रूप उसका दैहिक उत्पीड़न और यौन हिंसा भी यहाँ नहीं है जैसा कि बँटो की या विभाजन और दंगों के परिप्रेक्ष्य में लिखी गई अन्य कहानियों में है। शीर्षक भी ठंडा है जो निजाम के बदलने की सूचना मात्र देता है। प्रचलित पाठ में कहानी बदले हुए निजाम में पुराने शासनतंत्र का बदलने, जलावतन होने की एक स्वाभाविक निष्पत्ति लगती है। कहानी को स्त्री–संदर्भ और दृष्टि से पढ़ने पर कहानी कई स्तरों पर खुलती है, जो प्रचलित संदर्भ से पढ़ने पर संभव नहीं। कहानी में विस्थापन का संदर्भ है जो सांप्रदायिक विभाजन से जुड़ा है। सोचने वाली बात है कि कहानी में शाहनी विधवा न होती और शाहजी जिंदा होते और शाहनी की जगह कहानी में शाहजी के संदर्भ से विस्थापन की स्थितियों का चित्रण होता, अथवा शाहजी और शाहनी– दोनों के विस्थापन का संदर्भ होता तो क्या कहानी का ट्रीटमेंट और भाषा यही होती? शायद नहीं। कहानी के 'नैरेशन' में खास तरह की 'कूलनेस' और उदासीन भाव है। यह

बिलकुल न होता यदि यह कहानी स्त्री–संदर्भ के बजाय किसी और संदर्भ से लिखी गई होती। शाहनी का कथा के केंद्र में होना कहानी को एक ख़ास मोड़ देता है जो इन्हीं स्थितियों में अन्य किसी भी तरह से नहीं आ सकता था। स्त्री के केंद्र में होते ही सामाजिक और राजनीतिक समीकरण बदल जाते हैं। कृष्णा सोबती ने इस कहानी में विभाजन की महात्रासदी के साथ–साथ स्त्री के विस्थापन का सवाल उठाया है।

वर्चस्व की जितनी भी शक्तियाँ हैं वे अनिवार्य रूप से स्त्री के खिलाफ हैं। उसकी स्वतंत्रता और मुक्ति के खलिाफ हैं। लैंगिक विभेद का बड़ा आधार धार्मिक कोटियों पर निर्भर है। यही कारण है कि स्त्री का स्वाभाविक रुझान सांप्रदायिक और फासीवादी ताकतों के खिलाफ रहा है। यह भी सच है कि सांप्रदायिक और फासीवादी ताकतों ने, बहाना कोई भी हो, स्त्री के खिलाफ ही मोर्चा खोला है। उनका हर युद्ध, दंगा, कट्टर आचरण अंततः स्त्री की देह, मन और परिवेश पर हमला बन जाता है और स्त्री की स्वाधीनता, मुक्ति और अधिकार के प्रश्नों को पीछे ठेलता है।

किस प्रकार स्त्री की पितृसत्तात्मक विचारधारा के द्वारा स्त्रीवादी आलोचना वैचारिक 'विक्टिमहुड' का शिकार बनाई जाती है उसका नमूना है कि महादेवी से लेकर अनामिका तक सभी इसके चंगुल में हैं। भाषा के सचेत प्रयोग से उदासीन विमर्शकार कब स्वयं पुरुष भाषा और व्यवस्था का शिकार हो जाता है यह देखने के लिए कुछ नमूने काफी होंगे। अनामिका की ही बात करें तो वे बहुपठित और संवेदनशील स्त्रीवादी आलोचक हैं। लेकिन तमाम सचेतनता के बावजूद वे जिस भाषा का इस्तेमाल स्त्री संबंधी मुद्दों पर लिखते हुए करती हैं वह पुरुष संदर्भ और पुंसवादी वैचारिकी तथा मध्यकालीन समाजव्यवस्था की झलक देने लगता है। मसलन ऊपर दिए गए उद्धरण का एक सामान्य वाक्य कि "करुणा और न्याय या क्षमा और न्याय सौतेले भाव नहीं हैं।" अथवा यह वाक्य, "एक तरह से कहें तो साहित्य और अपनी बोली ही स्त्री का अपना एकमात्र घर है, सर के ऊपर की एकमात्र छत जहाँ से धक्के मारकर निकाल पाना अब किसी की खातिर संभव नहीं दिखता।"

इन पर ध्यान दें तो पाएँगे कि स्त्रीवादी विमर्शकार की मनोसंरचना और विचार में पितृसत्ता के संबंध और स्त्री के साथ पितृसत्तात्मक व्यवहार कितने गहरे बैठा है! वे जाने–अनजाने सौतेले शब्द का प्रयोग करती हैं, सौतेला यानी अपनी माँ के अलावा पिता की अन्य स्त्री से पैदा संतान (यहाँ विवाहिता–अविवाहिता का प्रश्न नहीं)। सौतेला का विपरीतार्थक सहोदर होता है यानि एक ही माँ के गर्भ से पैदा संतानें। ये दोनों शब्द–अर्थ और विपरीतार्थ पितृसत्ता के संबंध से बने मध्यकालीन पारिवारिक ढाँचे और सामाजिक संबंध को व्यक्त करनेवाले शब्द हैं। इसी तरह सर के ऊपर की एकमात्र छत के साथ धक्के मारकर निकालने की जो क्रिया है, वह एक तरफ तो आश्रय और दूसरी तरफ निष्कासन के पितृसत्तात्मक बोध से जुड़ी हुई है। साथ ही पिता और पति (यहाँ केवल पति, क्योंकि 'धक्के मारकर' स्त्री को वहीं से निकाला जाता है) के आश्रय

के बिना निराश्रित, निष्कासित स्त्री की अपमानजनक स्थिति का सामान्य चलन के रूप में जिक्र है। कायदे से यदि भाषा को स्त्री घर बता रहे हैं अथवा एकमात्र सुरक्षित आश्रय बता रहे हैं तो बताना चाहिए कि स्त्री भाषा कैसे वर्चस्व के ढाँचे को तोड़ती है, उसका अपना भावबोध, शब्द प्रयोग और विन्यास है।

वर्चस्व की धारणा पर सवाल उठाए बिना भाषा को स्त्री का एकमात्र सुरक्षित आश्रय बताना, भाषा और ज्ञान की संस्थाओं के वर्चस्व और सत्ता संबंधों को अनदेखा करना है। भाषा कोई वर्चस्वरहित क्षेत्र नहीं है। भाषा का भी वर्चस्व होता है। स्त्रीभाषा की बात करनी है तो उसकी विशेषताएँ और उससे अपेक्षाएँ क्या होनी चाहिए? ऊपर मैं कुछ की चर्चा कर आई हूँ, यहाँ जिस चीज को मैं रेखांकित करना चाहती हूँ वह यह कि स्त्री की भाषा को प्रयास करके हर तरह के वर्चस्व के खिलाफ होना चाहिए। चाहे यह वर्चस्व भाषा का ही क्यों न हो। स्त्री की भाषा की चर्चा करते करते हम जाने अनजाने वर्चस्व भाषा के दायरे के भीतर ही उसे परिभाषित करने लगें, इससे सचेत रूप से हम स्त्रीवादियों को बचना चाहिए।

लच्छेदार भाषा नहीं स्त्री भाषा की ठोस पहचान का सवाल

स्त्री भाषा की ठोस पहचान निर्मित हो सके इसके लिए लच्छेदार भाषा में धुँधलका तैयार करने की ज़रूरत नहीं है। साहित्य और भाषा का इतिहास इस बात की गवाही देता रहा है कि जहाँ जितनी भाषा की सजावट की गई है, स्त्री की उतनी ही दयनीय स्थिति समाज में रही है। इसलिए उन समाजों में भी जब उक्ति वैचित्र्य और अलंकार शास्त्र का प्राधान्य था, स्त्री को जब–जब पुरुष से अलग कहने का मौका मिला उसने ठोस रूप में अपनी बात की है। लच्छेदार भाषा स्त्री के प्रश्नों को हल्का (डायल्यूट) बनाती है और पक्ष–विपक्ष दोनों तरफ से आसानी से इस्तेमाल की जा सकती है। इससे स्त्री को सांस्कृतिक मोर्चे पर अपनी लड़ाई लड़ने में मदद नहीं मिलती।

वर्तमान स्त्रीवादी आलोचना का एक बड़ा हिस्सा आलोचना के लिए इस लच्छेदार भाषा का इस्तेमाल करता है। जबकि स्त्रीवादी आलोचना की वैश्विक धारा लच्छेदार भाषा की आलोचना करता है, वह सीधे समस्या पर बात करने में रुचि रखता है। स्त्रीवादी आलोचना की लच्छेदार भाषा रपटन भरी भाषा है, वह ठहरकर किसी चीज को परिभाषित करने का जोखिम नहीं उठाती। इसे आप जहाँ से पकड़ना चाहेंगे यह रपट लेगी। आपको एक मुलायमियत का एहसास तो होगा पर कोई ठोस आकार पहचान न पाएँगे। जब तक हम ठोस रूप में बात नहीं करेंगे, स्त्रीवादी अवधारणाओं और सिद्धातों, शब्दावलियों का निर्माण नहीं हो सकेगा। हिंदी की स्त्रीवादी आलोचना की यह दरिद्रता है। ठोस रूप में लिखने और रपटन भरा न लिखने का भी संकट है। सबसे बड़ा संकट तो यही है कि आप कभी भी गलत ठहराए जा सकते हैं, अप्रिय हो सकते हैं। लेकिन इस ख़तरे को उठाना होगा। उसके बिना बात नहीं बनेगी।

इस प्रसंग में एक लंबा उद्धरण देखिए, ".....जैसे इन दिनों औरतों को (लोहे

के चने) चबाने पड़ते हैं। अपना सर्जनात्मक स्पेस निकालने की खातिर! उद्देश्य स्थान विधेय स्थान के साथ म्यूजिकल चेयर या 'घुमनी परैया' न खेले तो मजा ही क्या रहे।

अब दूसरे खेल की बात करें। आधुनिक दुनिया की एक बड़ी कठिनाई 'पासिंग द बक' भी है! कोई किसी गड़बड़ी में अपनी भूमिका स्वीकारने को तैयार नहीं है! 'मैं क्या करूँ 'सिंड्रोम से इस कदर पीड़ित है, हमारा समाज इस कदर 'नो फॉल्ट' जोन में उतर आया है कि सारे अपराध एक मीडिया फ्रेंडली स्पेक्टेकल हैं. मीडियाकर्मी महानाट्य! मनष्यु क्या है? ऐसे अगों का समुच्चय जो बेचे खरीदे या बदले जा सकते हैं, ऐसी वफादारियों का समुच्चय जो बेची–खरीदी या बदली जा सकती है। ऐसे समुच्चय क्या खाकर विरोध करेंगे और किसका विरोध करेंगे!

साहित्य और भाषा ही इन दिनों सत्ता विपर्यय का एकमात्र साधन है! इसके बिना मनुष्य सारंस्कृतिक परिदृश्य में हल्का भी परिवर्तन घटित नहीं कर सकता, जो परिवर्तन आत्मतोष और मुक्ति–दोनों की प्राथमिक शर्त है!

कोई भी जीनियस खासकर भाषा–जीनियस असेंबली लाइन दुनिया का एक सबसे प्रबल प्रतिपक्ष तो है ही लेकिन जो भाषा–जीनियस होता है, पूरा का पूरा उसको बनाता है उसका परिवेश। मूलतः वह एक अच्छा सोख्ता–कागज होता है।

और क्या! मुहावरे, कहावतें, सखियाँ, नीतिशतक, श्रृंगार–शतक, मिथकों और रूपकों का खजाना है स्त्री–भाषा क्योंकि जीवन विवेक का प्रजातांत्रिक विनियोग इनकी प्रिय तकनीक है और इसमें ये सहायक होते हैं। हमारा पूरा वजूद रिचार्ज्ड हो जाता हो जाता है इनके आश्रय।

अपना अनुभव साझा करना स्त्री–स्वभाव में शामिल है। इसलिए बतियाती–बोलती हुई ये आगे बढ़ती हैं कि आगे आनेवालियाँ, अनिगनत चोखेरबालियाँ इसका फायदा उठा लें। कोई भी काम–काज करती हुई, कोई भी खिचड़ी पकाती हुई। खिचड़ी भाषा में ये आगे बढ़ती हैं कि खिचड़ी सुपाच्य और समरस भोजन है एक बड़ा प्रजातांत्रिक स्पेस जहाँ दाल और चावल–दोनों के वजूद स्वतंत्र हैं और अस्तित्व शांतिपूर्ण जैसा स्त्री–पुरुष का होना चाहिए।

रोजमर्रे का जीवन औरत के जीनियस के सहारे ही चलता है, खासकर माँ के भाषिक जीनियस के सहारे, लोरियों के सहारे, कांता–सम्मित उपदशों के सहारे, उन स्वीट नथिंग्स के सहारे जिनसे पटी–पड़ी है। स्त्री भाषा जिसे इरेगरी एक पर्फोर्मेटिव और ट्रांस्फोर्मेटिक कैटेगरी के रूप में, एक स्ट्रैजिक माइथेसिस और राजनीति संबलन के रूप में रेखांकित करती है। जहाँ पुनरावृत्ति भी सब्वर्शन है, पैरोडी और अंतरपाठीय प्रयाण भी। दान चूँकि स्त्री की लिबिडिकल इकोनॉमी का केंद्रीय गुण है, उच्छल प्रवाह से भरी हुई सिक्सू इसे मानती हैं और ठीक ही।"[16]

स्त्री भाषा की इस विवेचना से पाठक को हाथ कुछ नहीं लगता। वह कुछ नामों और भाषिक जादूगरी से प्रभावित हो सकता है लेकिन ठहरकर समझना चाहे तो कुछ

विशेष हासिल नहीं होता। एक ही परिच्छेद में –जीनियस, कांता–सम्मित उपदेश, स्वीट–नथिंग्स, इरेगरी, पर्फोर्मेटिव और ट्रांस्फॉर्मेटिक कैटेगरी, स्ट्रैजिक माइथोसिस, राजनीतिक संबलन, सबवर्शन, पैरोडी, अंतर्पाठीयता, लिबिडिकल इकोनॉमी, सिक्सू – जैसे शब्द हैं। केवल इन शब्दों से अवधारणाओं को ठीक से विवेचित किए बिना नाम गिनाने से पाठक स्त्री भाषा के बारे में क्या समझ बना सकेगा?

स्त्री भाषा के बारे में यह समझ कि वह खिचड़ी भाषा है, या फिर तीन सहेलियाँ सिर जोड़कर जैसे चपाटा खेलती हैं, वैसी भाषा है– स्त्री भाषा के संपूर्ण परिप्रेक्ष्य को धुँधला बनाता है। स्त्री भाषा खिचड़ी भाषा नहीं। स्त्री भाषा को खिचड़ी भाषा कहने से स्त्री भाषा के बारे में कोई समझ नहीं बनती। खिचड़ी भाषा या मिली–जुली भाषा पदबंध किसी भाषा के आधुनिक राष्ट्रव्यापी स्वरूप ग्रहण करने के पहले की प्रक्रिया में जन्मी भाषा के लिए कहा गया है। यह एक खास व्यवस्था की देन है। स्त्री की भाषा का प्रश्न व्याकरण और शब्द–भंडार आदि की स्थिरता का प्रश्न नहीं है बल्कि यह भाषा की विकसित संरचनात्मक बनावट में हस्तक्षेप का प्रश्न है। स्त्री की भाषा के प्राथिमक सवाल अपने विषय के निष्णात भाषाविदों से उलझते हुए विकसित हुए हैं। इसके पश्चात वह अर्थ और संरचना के सवालों पर प्रश्नचिह्न लगाती है। स्त्री भाषा का अर्थ और उसका स्वरूप जितना भाषा के भीतर अर्थ, संरचना,िविज्ञान, व्याकरण में खुलता है उतना ही भाषा के संसार के बाहर सामाजिक, राजनीतिक और सांस्कृतिक क्षेत्रों में खुलता है। व्याकरण की दृष्टि से जो शब्दव्यवहार या प्रयोग ठीक है वह राजनीतिक तौर पर गलत हो सकता है अथवा उसकी सांस्कृतिक ध्वनि स्त्री को हेय बना सकती है– स्त्री भाषा की जद्दोजहद यहाँ से शुरू होती है।

मेरे सामने स्त्री भाषा को लेकर ये कुछ प्रश्न। और भी बहुत से प्रश्न हो सकते हैं जिनमें भाषा और जनतंत्र तथा स्त्री के नागरिक बोध तथा भाषा और वर्गबोध के सवाल महत्वपूर्ण हैं। मैं इन पर अलग–अलग लिख चुकी हूँ। वहाँ विस्तार से इन्हें पढ़ा जा सकता है। यहाँ मेरी चिंता स्त्रीवादी आलोचना की आलोचना करने की रही। बहुत से प्रश्न मेरे मन में थे जिन पर मैंने बात की और विचार के लिए छोड़ा। स्त्रीवादी आलोचना कैसे लिखें कि आलोचना की भी मदद हो, स्त्रीवाद को भी और पाठक भी समृद्ध हो इस पर सोचना जरूरी है। हिंदी में बीमारी यह है कि आलोचना लेखन भी मुँहदेखी का काम हो गया है। इससे कई स्तर पर नुकसान हो रहा है। आलोचक की आलोचना से लेखक को और पाठक को कोई मदद नहीं मिल रही और इस मुँहदेखी की प्रक्रिया में आलोचक की अपनी धार तो कुंद होनी ही है। जब अच्छा ही अच्छा लिखना है तो आलोचक अवधारणाओं के निर्माण, प्रयोग आदि की क्यों सोचे, उसका काम तो स्वस्तिवचन से चल जाता है और आलोचना कहीं बुरी नहीं बनती। लेकिन आलोचना है तो खतरे भी होंगे। गलत होने का भी खतरा होगा और बुरे बनने का भी। क्योंकि हिंदी में आलोचना को बहस के लिए न्यौता देने वाली विधा, संवाद के लिए माहौल बनाने वाली विधा के रूप में देखना कब का बंद हो चुका है, यह केवल किसी नाम विशेष को उठाने–गिराने, पुरस्कार लेने–देने, कमिटियों में होने न होने का माध्यम

बन गई है। इससे नए विमर्शों के लिए खतरा बढ़ा है। सबसे बड़ा खतरा आलोचना के अभाव में उनके अप्रसागिक हो जाने, व्यर्थ हो जाने का खतरा बढ़ा है। अगर स्त्रीवादी आलोचना और स्त्री भाषा का प्रश्न एक फैशनेबल प्रश्न नहीं है तो हमें निरपेक्ष होकर विचार करना होगा। इसमें अनामिका जैसी बड़ी रचनाकार की आलोचना के सहारे बात करना हमारी मदद कर सकता है।

संदर्भ सूचीः

1. चतुर्वेदी, जगदीश्वर, स्त्रीवादी साहित्य विमर्श, अनामिका पब्लिशर्स एण्ड डिस्ट्रीब्यूटर्स, दरियागंज, नई दिल्ली, 2000
2. सिंह, सुधा, स्त्री संदर्भ में महादेवी, अनामिका पब्लिशर्स एण्ड डिस्ट्रब्यूटर्स, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण, 2016, पृ.133
3. वही, पृ.135
4. वही, पृ.135
5. अनामिका, स्त्री का भाषा घर, संवेद, नई दिल्ली, अक्टूबर 2009, वर्ष 1, अंक 1
6. वही, प्रारंभ
7. वही, प्रारंभ
8. वही, पृ.28
9. देखिए सिक्साउस, हेलीने, कोहेन, कीथ, कोहेन, पाउला, साइन्स, 1/4
10. सिंह, सुधा, ज्ञान का स्त्रीवादी पाठ (2008), ग्रंथशिल्पी, नई दिल्ली, द्वितीय संस्करण 2015
11. अनामिका, 2009, पृ.17
12. वही, पृ.27
13. सिंह, सुधा, साझा संस्कृति : भारतीय फासीवाद का स्त्री प्रत्युत्तर, प्रथम संस्करण, 2008, अनामिका पब्लिशर्स, दरियागंज, नई दिल्ली, भूमिका, पृ. 15
14. वही, पृ.16
15. सिंह, सुधा, ज्ञान का स्त्रीवादी पाठ (2008), ग्रंथशिल्पी, लक्ष्मीनगर, दिल्ली, द्वितीय संस्करण 2015, पृ.13
16. विस्तार से पढ़ने के लिए देखें, सिंह, सुधा, 2008, भूमिका
17. अनामिका, 2009, पृ.18

❑❑❑

आंचलिक उपन्यास और असमिया उपन्यासों में लोक चेतना एवं परंपरा

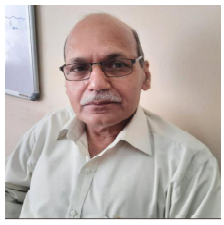

दिनेश कुमार चौबे

किसी भी राष्ट्र की संस्कृति को हम उसके साहित्य के माध्यम से समझ सकते हैं। कथा साहित्य का महत्व इस दृष्टिकोण से उल्लेखनीय है। वर्तमान युग में उपन्यास एक सशक्त साहित्यिक विधा के रूप में स्वीकृत है, जिसमें मानव जीवन के यथार्थ का चित्रण मिलता है। यह एक जीवंत रचना विधा है और हर सत्ता की तरह निरंतर विकासमान है। वस्तुतः लेखक मानव जीवन का मूल्यांकन करते हुए अपने जीवन दर्शन को प्रस्तुत करता है। उपन्यास युगीन सत्य के निकटस्थ होता है जिसमें मानवीय यथार्थता सम्मिलित होती है। इसमें यथार्थ के आग्रह ने आंचलिक प्रवृत्ति को बल दिया तथा लेखकों को लोक संस्कृति और विभिन्न भू–भागों के जीवन की ओर आकृष्ट किया। अंचल की रीति–नीति, परंपराएँ, मान्यताएँ, जाति–प्रथा, वेश–भूषा, भाषा आदि आंचलिक तत्वों के सम्मिश्रण से हिंदी उपन्यास साहित्य एक नई विधा के रूप में विकसित हुआ। इसके विकास में जहाँ एक ओर स्वातंत्र्योत्तर राजनैतिक– सामाजिक परिस्थितियाँ हैं, वहीं बाह्य प्रभाव भी स्पष्ट है। आंचलिक उपन्यास साहित्य की एक स्वतंत्र और विशिष्ट विधा के रूप में स्वीकृत और प्रतिष्ठित हो चुका है। यह स्वातंत्र्योत्तर हिंदी कथा साहित्य का एक अभिनव प्रयोग और महत्वपूर्ण उपलब्धि है।

आंचलिक उपन्यास में मुख्यतः किसी एक विशिष्ट अंचल के भौगोलिक परिवेश, सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक, राजनैतिक तथा सांस्कृतिक जीवन का यथार्थवादी ढंग से विश्लेषण किया जाता है। आंचलिक उपन्यासकार विशिष्ट अंचल तक अपने को सीमित अवश्य रखता है, किंतु जहाँ तक जीवन के भौतिक पहलुओं के चित्रण का संबंध है, वह किसी निश्चित दायरे के अंतर्गत कार्य नहीं करता। मानव मात्र की जितनी सार्वभौम एवं सार्वजनीन समस्याएँ हो सकती हैं उनका चित्रण आंचलिक उपन्यासों में विस्तार के साथ किया जाता है और उनसे किसी न किसी चिरंतन सत्य

का प्रतिपादन किया जा सकता है। इसलिए आंचलिक उपन्यासकार अंचल के जीवन के भोक्ता या निकट द्रष्टा होते हैं।

आंचलिकता की प्रवृत्ति ने प्रेमचंदोत्तर काल के हिंदी उपन्यासों में दृष्टिगोचर होने वाली दो प्रबल धाराओं के मध्य एक सेतु बनाने का कार्य किया। पहली धारा प्रेमचंद की ही परंपरा को एक नए रूपविधान एवं शिल्प देकर देशकाल के योग्य बनाने की, और दूसरी व्यक्ति की सत्ता को सर्वोपरि मानकर उसे साहित्य में प्रतिष्ठित करने की। आंचलिकता की इस नई धारा ने प्रेमचंद की परंपराओं को छोड़कर व्यक्ति की निजी स्वतंत्रता की प्रतिष्ठा से उत्पन्न विनाशकारी तत्वों के विरुद्ध नए युग की नई चेतना और नवीन मूल्य को ईमानदारी के साथ प्रस्तुत करने की प्रबल चेष्टा की है।

आंचलिक उपन्यासों में आंचलिक वैशिष्ट्य के तत्व निहित तो हैं ही, साथ ही राष्ट्रीय चेतना की भावना की भी अभिव्यक्ति है। अंचल के प्रत्येक हिस्से की विशेष महक और क्षेत्रीयता का ज्ञान इन उपन्यासों के माध्यम से संभव हुआ है। आंचलिक उपन्यासों की विषयवस्तु और शिल्प सामान्य उपन्यासों से भिन्न है, कारण आंचलिक उपन्यासों में कथा के संगठन का आधार कथानक, पात्र अथवा उद्देश्य विशेष न होकर एक विशिष्ट भू–भाग होता है।

भारतीय उपन्यास साहित्य में आंचलिकता की प्रवृत्ति मिलती है। हिंदी और असमिया उपन्यासों के संदर्भ में यह कहा जा सकता है। हिंदी के उपन्यासों में 'मैला आँचल' (रेणु), 'आधागाँव' (राही मासूम राजा), 'कब तक पुकारूँ' (रांगेय राघव), 'अलग–अलग वैतरणी' (शिवप्रसाद सिंह), 'सागर लहरें और मनुष्य' (उदय शंकर भट्ट) आदि प्रमुख हैं। असमिया भाषा में आंचलिक उपन्यास जैसी विधा सर्वस्वीकृत न होने पर भी अनेक उपन्यासों में अंचल विशेष के जीवन का चित्रण हुआ है और उपन्यासकारों ने आंचलिकता के तत्वों का समावेश कर अपनी कृतियों को आकर्षक और लोकप्रिय बनाया है। असमिया की ऐसी कृतियों में उल्लेखनीय हैं 'कपिली परिया साधु' (नवकांत बरुआ), 'नोई बोई जाई' (लीला गगोई), 'रंगमिलीर हाँही' (रंगबंग तेरांग), 'मिरी जियरी' (रजनीकांत बरदलोई), 'कईनार मूल्य' (लुम्मेर दाई) आदि।

असमिया आंचलिक उपन्यासों में लोक संस्कृति के नियामक विविध उपादानों के चित्रण मिलते हैं, जिसमें अंचलवासियों के नैसर्गिक आचार–विचार की अभिव्यक्ति देखी जा सकती है। इन उपादानों के अंतर्गत मुख्यतः ग्रामीण जनता के मनोरंजन के साधन लोकगीत, लोकनृत्य, पर्व – उत्सव समाविष्ट हैं जो संस्कृति के पोषक भी हैं।

लोकगीत, नृत्य, साधारण जनता की भावना, उनके संवेगों,अनुभूतियों एवं उनकी सौंदर्य भावना का प्रतिनिधित्व करते हैं, जिनका उद्गम स्थल लोकमानस है, उनकी अभिव्यक्ति लोकभाषा के माध्यम से होती है। ये मौखिक परंपरा की धरोहर हैं। प्रत्येक लोकगीतों में क्षेत्रीयता का पुट मिलता है। गाँव में होने वाले नृत्य, गीत वहाँ की

संस्कृति के विविध रूपों के दर्शन कराने के साथ ही सामाजिकता की भावना को भी सुदृढ़ बनाते हैं।

लीला गगोई कृत 'नोई बोई जाई' में असमिया जाति के बिहू का विस्तृत चित्रण मिलता है। बोहाग बिहू असम में बड़े धूमधाम से मनाया जाता है। चैत माह के आखिरी दिन "गोरु बिहू" में लोग पशुओं की सेवा करते हैं तथा घर में तरह तरह के पकवान बनाए जाते हैं। सामूहिक गीत "हूँसुरी" गाने का प्रारंभ गाँव के नामघर से होता है। एक उदहारण–

देवतार पदुलित गोंधाईसे माधुरी
केतेकी मेलेमलाई ओ' गोविन्दाई राम।

"हूँसुरी" के पश्चात बिहू नाम गाया जाता है इसका प्रारंभ जोजना से होता है, जैसे–

एटा बाटित नहरू एटा बाटित पनरु
एटा बाटित खुतुरा शाक
मुरर चुलि सिंगी आशीर्वाद करिसो।
गृहस्थ कुशले थाक।

मौसम को ध्यान में रखकर कई गीत गाए जाते हैं जिसे बतरर गीत (ऋतु गीत) कहतें हैं –

आजि बिहू बिहू, कालि बिहू बिहू
नाहर फूल फुलिबर बतर।
नाहर फुलर गोंध पाई, लाहरीर तत नाई
उजतित भाँगि जाई जतर।।

असमिया के इस उपन्यास में लोरी गाने की परंपरा भी परिलक्षित होती है –

जुनबाई ऐ, एटी तरा दिया
एटी तरा नालागे दूटी तरा दिया
पात नाई चोत नाई किहत कोई दिम.....

'रंगमिलीर हाँही' में रंगबंग तेरांग ने कार्बी संस्कृति का विस्तृत विवरण दिया है। ग्रामीण कृषक समाज में खेती के महत्व को दर्शाया गया है। धान बोने के समय कार्बी किसान केतेकी चिड़िया के सुर में सुर मिलाते हुए गाते हैं ——

ओ थंग कवि। रित नंग मेलो
बतर देरपो

'मिरि जियरी' में नरछिगा बिहू का उल्लेख हुआ है .

चते जाई जाई बहागे पालेहि
फुलिले बेबेलि लता।

कईनो ताके माने उरकाई नजले
सरूति लेदेगंर कता।

'नोई बोई जाई' में लोक नृत्य का विशेष स्थान है। लेखक ने बहाग बिहू के सात दिन का वर्णन किया है – गोसाई बिहू, गोरु बिहू, मानुह बिहू, तातर बिहू, नान्गलर बिहू, घरासिया जीव–जन्तुर बिहू, सेनेही बिहू, चेरा बिहू, तथा बहागी बिहू के अवसर पर भागीरथ फुकन मन में यह निश्चय करता है कि बिहू के अंतिम दिन वह सुआगी को भगाकर ले जाएगा। इस नृत्य में यह गाया जाता है जिसमें वाद्यंत्र हैं ––– ढोल, पेपा, गगना, बाँही। जैसे –––

राति माजे निशा, बिहुतलि एरि जाम
एरि जाम पेतरे भात।
तुमि साबा आमालोई, आमि साम तोमालोई
देहाटी परिल साँत।

"रंगमिलीर हाँही" में कार्बी समाज में हाच्छा नृत्य और कारबी नृत्य का विशेष स्थान है। उपन्यास में गाँव के मुखिया सारइक तेरांग के आँगन में युवक–युवतियाँ मिलकर चाँदनी रात में हाच्छा केंकान नृत्य करते हैं .

ए – एहा – हा – हा
हुरस – हुर कुलिया – कू – ऊक
ए – एहा – हा – हा
एहा – श – श
हा हे नांगपूना लुनछे।

इसी प्रकार 'कपिली परिया साधु' में यह उल्लेख है कि बैसाख महीने के पहले दिन लालुंग (एकजाति विशेष) के लोगों का बिहू प्रारंभ होता है। इस अवसर पर युवतियाँ नृत्य करती हैं और कपिली नदी के दूसरे किनारे से युवक उन्हें छेड़ते हैं। इस प्रकार हास–परिहास का माहौल बना रहता है।

ग्रामीण संस्कृति अपने विशिष्ट रीति–रिवाजों और आचार – विचार के कारण नगरीय संस्कृति से भिन्न प्रतीत होती है। यह ग्राम्य संस्कृति की नींव भी है। 'मिरि जियरी' में यह वर्णित है कि विवाह में इस समाज में लड़की बेचने– खरीदने की परंपरा है। वर पक्ष की ओर से वधु पक्ष को नगद रुपए शगुन के तौर पर देना होता है। साथ ही भावी जमाई को एक साल तक ससुराल में कार्य करके अपनी शारीरिक क्षमता को प्रदर्शित करना पड़ता है। कमुद के पिता ने पानेई को बहू बनाने के लिए नगद रुपए दिए। कमुद अपने ससुर तामेद के घर काम करने के लिए आया।

'कइनार मूल्य' में आदी समाज में सांस्कृतिक परंपरा के अनुसार पिता के नाम के आखिरी अक्षरों के आधार पर ही बेटी–बेटे का नामकरण किया जाता है। उदहारण

के लिए गुमना का नाम उसके पिता कारगु के अंतिम अक्षरों को ध्यान में रखकर किया गया है। बेटा–बेटी को प्रेम से संबोधित करने के लिए बेटी के नाम के आगे "या" और बेटे के नाम के आखिरी अक्षर के आगे "ता" लगाए जाने का रिवाज है। इसलिए गुमना को प्यार से "याबा" कहा जाता है। इस उपन्यास में आदी समाज की प्रथानुसार वधु पक्ष को नगद रुपए, मिथुन (पशु विशेष) बर्तन आदि वर पक्ष की ओर से दिए जाने की प्रथा है। इसीलिए कारगुम को गुमना के लिये पाँच मिथुन, सात गाय, फूल के बर्तन तथा तीन हजार रुपए मिले।

'रंगमिलीर हाँही' में अतिथि सत्कार मद (शराब) द्वारा किए जाने का चित्रण है। अतिथि को हागफरला (अतिथिगृह) में बैठने दिया जाता है। शराब पीने के पहले यहाँ अपनी दाहिने हाथ की ऊँगली की छोर को शराब में डुबोते हैं और उसे बाएँ हाथ के अंगूठे को ऊपर रखते हुए प्रार्थना करते हैं तथा ऊँगली में लगी हुई बूंदों को चारो तरफ छींट देते हैं। इस रिवाज के बाद शराब का सेवन करते हैं। कार्बी समाज में नए धान आने की खुशी में हाच्छा केकांग नृत्य होता है। इसमें यह व्यवस्था है कि नृत्य सुबह होने के पहले संपन्न हो जाना चाहिए अन्यथा दंडस्वरूप तीन पान के पत्ते देकर दोष निवारण करना अनिवार्य है।

असमिया समाज में पान–सुपारी का विशेष महत्व है। जाने–अनजाने किसी से भूल–चूक हो जाने पर दोषी व्यक्ति समाज के सामने पान–सुपारी (ताम्बुल–पान) देकर यदि याचना करे तो उसे क्षमा करने की प्रथा है। 'नोई बोई जाई में' यह चित्रित है कि प्रेम से वशीभूत होकर भागीरथ सुआगी को बिहू दल से भगा ले जाता है। किंतु उसे तब तक समाज में पति–पत्नी का दर्जा नहीं दिया जाता जब तक वह ताम्बुल–पान देकर माफी नहीं माँगता। इसी तरह विवाह के अवसर पर केले के पेड़ लगाए जाने की प्रथा भी है। ऐसी मान्यता है कि जिस तरह केले का पेड़ तीव्र गति से बढ़ता है उसी तरह वंश–परिवार की भी वृद्धि होती रहे। इसी उपन्यास में वर्षा न होने पर गाँववासी इंद्र को प्रसन्न करने के लिए 'मेढक की शादी' का आयोजन करते हैं। यह विवाह पूरी तरह सामाजिक तरीके से किया जाता है। मेढक और मेघ देवता को केंद्र में रखकर गीत भी गाए जाते हैं –

मेघ करें एगा–गुमा
भेकुलीरे बियाह
आजि प्रभु रक्षा करा
सूरजमुखे बाका।
भेकुलीरे बियालोई आहे इंद्रदेव
बताह बरखुनत तिति।।

लीला गगोई के उपन्यास में यह चित्रित है कि मूंगा (एक प्रकार का कीट)

पालने वाले व्यक्ति को एक माह का व्रत रखना पड़ता है। इस दौरान वह बाल नहीं बनाता तथा तेल खटाई का उपयोग नहीं कर सकता। इसी तरह 'नोई बोई जाई' में यह वर्णित है कि पौष माह में लखिमी (लक्ष्मी) घर लाते समय किसी से बात नहीं करनी चाहिए। लक्ष्मी के रूप में धान के बाल (गुच्छे) लाए जाने की प्रथा है जिसमें बिहू के एक दिन पहले धान देहरी (भंडार) में रखा जाता है।

इस तरह संस्कार, कृषि, आचार–विचार से संबंधित अनेक प्रथाएँ असमिया के आंचलिक उपन्यासों में वर्णित हुई हैं जो असमिया, कार्बी, आदी, बड़ो इत्यादि अनेक समाजों की स्थिति समझने में सहायक हैं। असमिया के आंचलिक उपन्यासों के माध्यम से वहाँ की विविधता और लोक चेतना को समझने में मदद मिलती है। साथ ही यह भाव भी परिपुष्ट होता है कि पूरे देश में लोक– चेतना की अभिव्यक्ति एक जैसी साहित्य में मिलती है। यही भाव हमारी राष्ट्रीय एकता एवं अखंडता को अक्षुण्ण रखने के आधार हैं।

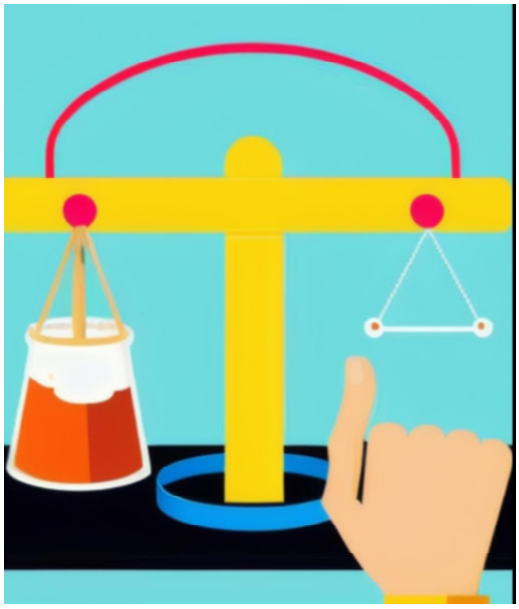

❑❑❑

विज्ञान संवाद की भाषा हिंदी : अनंत संभावनाएँ

ओम विकास

हिंदी जनसंवाद की भाषा के रूप में विकसित हुई। हिंदी के कारण आजादी के लिए एकजुट संघर्ष करने की शक्ति पैदा हुई। महात्मा गांधी ने हिंदी को समावेशी भाषा के रूप में इस्तेमाल किया और भारत की जनता से संवाद करते हुए मिलकर संघर्ष करने के लिए प्रेरित किया। पूर्व से पश्चिम, उत्तर से दक्षिण सभी क्षेत्र के लोगों के बीच हिंदी संवाद का सरल माध्यम बनी। स्वतंत्रता के बाद हिंदी को राजभाषा हिंदी के रूप में संविधान के अनुच्छेद 343 के अनुसार संघ की राजभाषा घोषित किया गया। अनुच्छेद 351 के अनुसार हिंदी भाषा का प्रचार प्रसार, बढ़ाने और विकास संघ का कर्तव्य है।

अंग्रेजी से अभिशप्त हिंदी

अंग्रेजी माध्यम से विज्ञान शिक्षा देने से अपार हानि होती है। अंग्रेजी भाषा पर पकड़ मजबूत करने में ही हमारी अधिकांश मानसिक शक्ति खर्च हो जाए, यह उचित नहीं है। आज भारत में हम रट–पिटकर औसत–बुद्धि वाले इंजीनियर और डॉक्टर तो पैदा कर रहे हैं, लेकिन खोजकर्ता वैज्ञानिक, मौलिक चिंतक और दार्शनिक नहीं पैदा कर पा रहे हैं। भारत की ज्यादातर आबादी नवीनतम ज्ञान–विज्ञान तक पहुँच से वंचित है। जिसमें मौलिक रचनात्मकता बची हुई है, उसे आत्मविश्वास के साथ सामाजिक संस्कृति के सब तत्वों की वैज्ञानिक अभिव्यक्ति करने का प्रयास करना होगा।

भारतीय भाषाएँ

भारत की 22 भाषाओं को संविधान की आठवीं अनुसूची में मान्यता दी गई है। ये हैं: हिंदी, पंजाबी, उर्दू, कश्मीरी, संस्कृत, असमिया, ओडिआ, बांग्ला, गुजराती, सिंधी, मराठी, तमिल, तेलुगु , मलयालम, कन्नड़, मणिपुरी, कोंकणी, नेपाली, संथाली, मैथिली, बोडो, डोगरी।

8वीं अनुसूची में हिंदी को रखना औचित्यपूर्ण नहीं है। यह हिंदी सरकारी खड़ी बोली बनकर रह गई है। यह राष्ट्रभाषा हिंदी के समावेशी स्वरूप की परिकल्पना के सर्वथा विपरीत है। हिंदी का सरकारी मानकीकरण शब्द विस्तार को संकीर्ण बनाता है।

भारत सरकार के गृह मंत्रालय को इस मामले पर आवश्यक कार्रवाई करनी चाहिए। यह भी जरूरी है कि हिंदी के सरकारी पुरस्कार भी समावेशी हिंदी के लिए हों।

सभी भारतीय भाषाओं की वर्णमाला कमोबेश संस्कृत की वर्णमाला के अनुसार ही हैं। वर्णक्रम समानता के साथ लिपिभेद भी है। परिवर्धित देवनागरी में कुछ क्षेत्रीय भाषाई उच्चारणों का भी समावेश मिलता है। प्रतीत होता है कि भारतीय भाषाओं के धागे संस्कृत के धागों में पिरोए हुए हैं; और इनका समग्र स्वरूप ही समावेशी हिंदी है। इन क्षेत्रीय भारतीय भाषाओं में परंपरागत ज्ञान और संस्कृति का समुच्चय है। संस्कृति का तात्पर्य है व्यक्ति, समाज, पर्यावरण को ध्यान में रखते हुए संगीत, साहित्य, नृत्य, कला के रूप में रचनात्मकता की अभिव्यक्ति।

विज्ञान साहित्य की हिंदी

आधुनिक विज्ञान को अपनी भाषा में अभिव्यक्त करने के लिए पारिभाषिक शब्दावली की आवश्यकता है। इसके लिए जरूरी है कि विज्ञान लेखन में रासायनिक सूत्र, समीकरण, परिमाण इकाईयों को बिना बदले अपनाया जाए और नए शब्द निर्माण का आधार मूलतः संस्कृत भाषा हो। हिंदी में विज्ञान भाषा के प्रयोग एवं संवर्धन को बढ़ावा देने के लिए समयबद्ध प्रयास करने की आवश्यकता है।

यह जरूरी है कि हिंदी के साहित्य पक्ष के साथ साहित्येतर विज्ञान पक्ष भी स्थानिक पारंपरिक भाषिकता से जुड़कर विकसित हो। इसके साथ ही नवीनता, नवाचार, प्रौद्योगिक प्रयोग पर भी बल दिया जाए।

सरकार बड़े गौरव के साथ कहती है कि भारत में शोधपत्रों का प्रकाशन विश्व में तीसरे स्थान पर है। लेकिन कितने शोधपत्र हैं जो साधारण लोगों को उद्यमिता की तरफ बढ़ाने में सहायक हैं। शायद एक या दो प्रतिशत ही। यह विचारणीय विषय है।

क्या करें ?

निज भाषा उन्नति को मूल

जापान में मुझे विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी सलाहकार के रूप में काम करने का अवसर मिला और उस दौरान समझ में आया कि जापान की विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी में नवाचारमय उन्नति का कारण जापानी मातृभाषा में शिक्षा के द्वारा जनजागृति रहा। उनके हर काम में नयापन दिखाई देता है। जापानियों को अपनी भाषा और संस्कृति पर गर्व है। जापानी मातृभाषा में शिक्षा के कारण जापान के जनजीवन में उत्कर्ष की हिलोरें उठ रही हैं और दुनिया जापानियों का काम अचरज भरी दृष्टि से देख रही है।

भारत की अधिकांश आबादी नवीनतम विज्ञान प्रौद्योगिकी को समझकर नए उद्यम, एवं नए उद्योग शुरू करने में हिचकिचाहट महसूस करती है। विदेशी भाषा के कारण अन्यायपूर्ण सत्ता–संरचना हर जगह छाई हुई है। इसके कारण मौलिकता

नष्ट हो चुकी है। हमारी पूरी की पूरी पीढ़ी नकलची बन रही है। ऐसे में आमूलचूल परिवर्तन करने की आवश्यकता है।

भारत में वैज्ञानिकता – अतीत में, स्वतंत्रता के पहले और बाद में

भारत में वैज्ञानिक चेतना अतीत में, स्वतंत्रता के पहले और बाद में भी रही है। पाणिनी, अगस्त्य, भास्कराचार्य, आर्यभट्ट, कणाद, गौतम, जैमिनी, आदि अनेक वैज्ञानिकों के उल्लेखनीय योगदान से सभी परिचित हैं। आक्रांताओं ने ही हमारी नवाचार प्रवृत्ति एवं प्रगति को मंद और प्रतिबंधित किया। ब्रिटिश काल में आधुनिक विज्ञान एवं शोध के क्षेत्र में सी. वी. रमन और विश्वेश्वरैया के योगदान उल्लेखनीय हैं। तालिका बहुत लंबी है। कुछ प्रमुख वैज्ञानिक इस प्रकार हैं – आत्माराम, जगदीश चंद्र बोस, हरगोबिंद खुराना, आचार्य प्रफुलचंद्र राय, शांतिस्वरूप भटनागर, अब्दुल कलाम, होमी जहांगीर भाभा, सतीश धवन, हरीश चंद्र, दौलत सिंह कोठारी, विक्रम साराभाई, मोक्षगुंडम विश्वेश्वरैया, सी. वी. रमन, इत्यादि। रामानुजन जैसे गुदड़ी के लाल भी हुए। बहुतेरे पहचाने ही नहीं गए। जयंत नार्लीकर, एच सी वर्मा, गोरख प्रसाद, सत्यप्रकाश आदि मूर्धन्य वैज्ञानिकों ने हिंदी में भी लिखा।

जनभाषा हिंदी में विज्ञान प्रसार

विज्ञान प्रसार, उद्यमिता और आविष्कार के क्षेत्र में कई संस्थाएँ काम कर रही हैं। कुछ प्रमुख विज्ञान प्रसार संस्थाएँ हैं –

विज्ञान परिषद प्रयाग, प्रयागराज, लोक विज्ञान परिषद दिल्ली, एकलव्य भोपाल, आईसेक्ट भोपाल, हिंदी प्रकाशन कक्ष, BHU, वाराणसी, CSIR-NIScPAR निस्पर, नई दिल्ली, विज्ञान प्रसार (DST), नोएडा, होमी भाभा विज्ञान शिक्षा केंद्र (TIFR), मुंबई, हिंदी विज्ञान साहित्य परिषद, (BARC), मुंबई, मराठी विज्ञान परिषद (मराठी में), मुंबई, इत्यादि।

मेरा मानना है कि वैज्ञानिक स्वयं अनुसंधान के माध्यम से जनसामान्य के हित में अविष्कार करें और उनका प्रसार करें। भारत सरकार शोधपरक बौद्धिक संपदा संरक्षण की दिशा में पेटेंट आदि देकर प्रोत्साहन दे रही है। इसके लिए आवश्यक है उनके शोधपत्रों का प्रकाशन गुणवत्ता की दृष्टि से मान्यताप्राप्त विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी के रिसर्च जनरल में होता रहे। इससे उन्हें हमेशा प्रोत्साहन मिलेगा और इसके लिए उचित सम्मान भी। अभी अधिकांश शोधपत्र अंग्रेजी में प्रकाशित होते हैं, हिंदी में बहुत कम।

एक कड़वा सत्य यह भी है कि देश की हिंदी संस्थाएँ ललित साहित्य तक ही सीमित हैं। साहित्येतर विज्ञान साहित्य का शोधपरक जर्नल पहचानते भी नहीं। अभी तक ऐसे किसी उदाहरण का पता नहीं है जिसमें हिंदी में विज्ञान शोधपरक रिसर्च जर्नल को सम्मान मिलता हो। जरूरी है कि इस संबंध में UGC कोई नीति बनाए।

अनुसृजन में तकनीकी सहायता

आज टेक्नोलॉजी ने हिंदी में लेखन को कुछ आसान बनाया है। मशीनी अनुवाद से लगभग 70ः से 80ः आसानी हो जाती है। इस ड्रॉफ्ट को सुधारकर सुबोध एवं संप्रेषणीय बनाना संभव है। यह कार्य भी श्रमसाध्य है। इसे अनुसृजनिका (Transcreation workbench) के माध्यम से बहुत आसान बनाया जा सकता है। अनुसृजनिका में मशीनी अनुवाद सुविधा, ग्रामर चेक, स्पैल चेक, समांतर कोश, तकनीकी शब्द कोश, उत्कृष्ट लेखों के नमूने, आदि सुविधाएँ होनी चाहिए।

अनुवाद लेखकोन्मुखी है, इसमें लेखक की रचनाधर्मिता, परिवेश, और उदाहरण को बनाए रखकर भाषांतर करते हैं। जबकि अनुसृजन पाठकोन्मुखी है। इसमें पाठक के अनुकूल सुबोध, संप्रेषणीय भाषांतर किया जाता हैं। इसमें अनुसृजनकर्ता की रचनात्मकता शैलीप्रधान होती है।

गोस्वामी तुलसीदास ने श्री रामचरितमानस की रचना में मूल कथानक वाल्मीकि रामायण से लिया उसे अवधी भाषा प्रधान समावेशी हिंदी भाषा में लिखा और उपनिषद आदि से भी ज्ञान माणिक्य जोड़े। ज्योतिष के अनुसार कालबोध भी कराया। इसे अनुसृजन की दृष्टि से उत्कृष्ट रचना कहा जा सकता हैं।

हिंदी में रिसर्च जर्नल 'विज्ञान प्रकाश' की विशेषताएँ

हिंदी में रिसर्च जर्नल 'विज्ञान प्रकाश' (www.vigyanprakash.in) के बारे में संक्षेप में बताना चाहूँगा कि यह इकलौता (हिंदी में) गुणवत्तापूर्ण विज्ञान रिसर्च जर्नल है। यह UGC &CARE की मान्य लिस्ट में भी शामिल है। इसमें प्रकाशित होने वाले सभी रिसर्च पेपर कम से कम तीन विशेषज्ञों के द्वारा समीक्षित होते हैं। इसके बाद इसका भाषाई दृष्टि से भी मूल्यांकन किया जाता है। पारदर्शिता की दृष्टि से सभी रिव्यू विशेषज्ञों (समीक्षकों) के नाम, पता और ईमेल भी उसी अंक में प्रकाशित किए जाते हैं। पेपर का शीर्षक (Title)और सारांश (Abstract) हिंदी और अंग्रेजी में दिए जाते हैं। लेखकों का नाम पता और ईमेल भी दिया जाता हैं इच्छुक पाठक ई मेल से उन्हें कभी भी संपर्क कर सकते हैं। इसके अतिरिक्त DOI (Digital Object Identifier) नंबर देने की भी व्यवस्था है।

गर्व का विषय है कि भारत ने कई विषम परिस्थितियों में समस्याओं का समाधान किया और अन्य आकांक्षी देशों की भी मदद की। हमेशा से भारत का मूल मंत्र रहा है 'वसुधैव कुटुम्बकम्'। 'एक पृथ्वी, एक परिवार एक भविष्य' प्रेरणा लेकर एवं आत्मनिर्भर विकसित भारत का संकल्प लेकर जन विज्ञान, जन अनुसंधान को जन जागरूकता एवं सामूहिक प्रयास से अल्पअवधि में साकार बनाया जा सकता है।

❑❑❑

हिंदी एवं अनुवादः दक्षिण भारतीय भाषा कन्नड के संदर्भ में

कोयल विश्वास

भूमिका

भाषा संपर्क की वह कड़ी है जिससे हम अपने मन में अंतर्निहित भाव को शब्दों के माध्यम से व्यक्त कर पाते हैं। वाक है, इसलिए तो व्यक्ति को अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता मिली है।

भाषा की मूल इकाई ध्वनि है जिनके योग से शब्द बनते हैं। ये शब्द आकाश में टिमटिमाते हुए असंख्य सितारों के समान है जिनका स्थान निर्दिष्ट है। शब्द निर्बाध है लेकिन शब्द–प्रवाह किसी एक प्रांत से दूसरे की ओर बढ़ता है तो उसका अर्थ और भाव बदल जाता हैं भौगोलिक भिन्नता मुख्य रूप से सांस्कृतिक भिन्नता का कारण है और शब्द भी इन सांस्कृतिक भिन्नताओं के वशीभूत अपना रूप बदलता रहता है। भारत जैसे विशाल भूखंड में जितनी भाषाई विविधता है, विश्व में शायद ही किसी अन्य देश में इतनी होगी। 22 भारतीय भाषाओं के अतिरिक्त असंख्य बोलियों एवं उपबोलियों से सांस्कृतिक संपदा की वृद्धि हुई है। साहित्य की जब हम बात करते हैं तो अधिकतर भाषा से जुड़ा साहित्य लक्ष्य है, बोलियाँ एवं उपबोलियाँ किसी मुख्य धारा से जुड़कर अपनी अस्मिता का प्रमाण देती हैं। परंतु यह समस्या बनी रही कि भाषा के साथ साहित्य भी अपने अपने भौगोलिक क्षेत्र में सीमाबद्ध बनकर रह गए। आगे चलकर जब साहित्यानुरागियों ने भिन्न–भिन्न प्रदेशों के साहित्य को जाना, अनुवाद के माध्यम से वह सारी दूरियाँ मिट गई। साहित्य का विस्तार एवं उससे प्रकांड संभावनाएँ अनुवाद के कारण ही संभव हो पाया।

शाब्दिक समानता एवं सांस्कृतिक विचारधारा में बहुत गहरा अंतर न होने के कारण बांग्ला, मराठी, गुजराती आदि भाषाओं से हिंदी में अनुवाद सरल है। परंतु दक्षिण भारतीय भाषाओं का हिंदी में अनुवाद की प्रक्रिया बहुत ही जटिल होती है। ऐसे

अनुवाद में कठिनाई केवल सांस्कृतिक पक्ष में ही नहीं बल्कि वैचारिक पक्ष में भी होता है। इसलिए इन भाषाओं में अनुवाद जितना रोचक है उतना ही चुनौतीपूर्ण।

'अनुवाद विज्ञान' में भोलानाथ तिवारी जी का कहना है– "एक भाषा की किसी सामग्री का दूसरी लक्ष्य भाषा में रूपांतरण (भाषांतरण) ही अनुवाद है, जो स्रोत भाषा में व्यक्त विषय को दूसरी लक्ष्य भाषा में पुनर्व्यक्त करता है। प्रत्येक भाषा विशिष्ट परिवेश में पनपती है, अतः उसकी अपनी अनेक ध्वन्यात्मक, शब्दिक, रूपात्मक, वाक्यात्मक, अर्थपरक, मुहावरा– लोकोक्ति विषयक, लाक्षणिक, संस्कारगत और आंचलिक विशेषताएँ होती हैं जो अन्य भाषाओं से भिन्न होती है। इसीलिए स्रोतभाषा और लक्ष्य भाषा में उपरोक्त विशेषताओं को लेकर शब्द, वाक्य, भाव शैली तथा अभिव्यक्ति में भ्रामक समानताएँ तथा स्पष्ट भिन्नताएँ पाई जाती हैं, अनुवादक के लिए वे दोनों बातें प्रायः बाधक होती हैं। दोनों भाषाओं की अर्थविधाओं को (अभिधा, लक्षणा, व्यंजना) समान–सटीक अभिव्यक्ति देना पूर्णतः संभव नहीं हो पाता। इसी प्रकार दोनों भाषाओं की अभिव्यक्ति–इकाइयाँ (शब्द, शब्दबंध, पद, पदबंध, वाक्यांश, उपवाक्य, वाक्य, मुहावरे, लोकोक्तियाँ, आंचलिक, अर्थ–प्रयोग, शैलियाँ) के प्रसंगत साम्य भी कम ही पाए जाते हैं। इसीलिए यह मानना पड़ता है कि 'एक भाषा में व्यक्त विचारों को यथासंभव समान और सहज अभिव्यक्ति द्वारा दूसरी भाषा में व्यक्त करने का प्रयास अनुवाद है' या तो, 'अनुवाद कथनतः और कथ्यतः निकटतम सहज प्रतिप्रजीकन–प्रक्रिया है।'[1]

दक्षिण भारत की मुख्य चार भाषाएँ यथा– तमिल, कन्नड, तेलुगु और मलयालम। यदि इन भाषाओं का शब्दकोश देखा जाए तो हिंदी की तरह इनमें भी तत्सम, तद्भव एवं विदेशी शब्द हैं जो मूलतः एक हैं और कभी–कभी एक जैसे प्रतीत होते हैं। परंतु इन शब्दों में ऐसे भी शब्द हैं जो अपनी ध्वनि संरचना तथा रूप में एक या एक–से हैं तथा उमें अर्थ का अंतर है।

तमिल भाषा से कुछ शब्द, उनके अर्थ एवं हिंदी शब्द में उसका अर्थः

तमिल शब्द	तमिल अर्थ	हिंदी शब्द एवं अर्थ
अवसरम	जल्दी	अवसर (मौका)
अनुतापम	सहानुभूति	अनुताप (पश्चाताप)
चमत्कारम	कुशलता, होशियारी	चमत्कार (आश्चर्यजनक कार्य)

कन्नड भाषा से कुछ शब्द, उनके अर्थ एवं हिंदी शब्द में उसका अर्थः

कन्नड शब्द	कन्नड अर्थ	हिंदी शब्द एवं अर्थ
यजमान	पति, मालिक	पूजा पाठ कराने वाला
नाई	कुत्ता	बाल काटने वाला
कोई	कच्चा फल या सब्जी	जमी हुई मैल, सीलनयुक्त पत्थर पर जमने वाली बारीक रेशे जैसी घास

उसी प्रकार मुहावरे एवं लोकोक्तियों से भी जो अर्थ निकलता है अनुवाद के बाद उसका अर्थ भिन्न होने की आशंका रह जाती है। यह एक बहुत बड़ी समस्या है कि विभिन्न भारतीय भाषाओं से हिंदी के शब्दकोश तो बने हैं, किंतु मुहावरा, कोश या लोकोक्ति कोश बनाना अत्यंत कठिन कार्य है।

दक्षिण भारत में स्थित कर्नाटक प्रदेश की प्रमुख भाषा कन्नड है। कर्नाटक शब्द की उत्पत्ति के बारे में कई अत्यंत रोचक मत है। पहला मत है यह शब्द 'करू नाड' अर्थात ऊँचा प्रदेश से बना है क्योंकि यह समुद्र के स्तर से काफी ऊँचाई पर स्थित है। दूसरा मत यह है कि 'करू नाड' अर्थात काली भूमि का प्रदेश जिसका उल्लेख महाभारत में भी मिलता है।

आरंभ में इस प्रदेश का संस्कृत में 'कर्नाट' शब्द था जिसे मुसलमानों ने बाद में कर्नाटक कहा। इसी प्रदेश की भाषा कन्नड को लेकर भी कई मत हैं। इस भाषा में संस्कृत शब्दों की अधिकता के कारण कुछ विद्वानों का ऐसा मानना है कि यह संस्कृत–प्रसूत भाषा है। परंतु व्याकरण एवं मूलभूत शब्दों की दृष्टि से दूसरा मत यह है कि इसका उद्गम तमिल, तेलुगु, मलयालम की जननी मूल द्रविड भाषा से ही हुआ है। कन्नड, भाषा की दृष्टि से तमिल के अधिक समीप है पर लिपि तेलुगु से बहुत मिलती है।

यदि कन्नड साहित्य के इतिहास के बारे में बात करें तो प्रसिद्ध लाक्षणिक ग्रंथ 'कविराजमार्ग' के आधार पर नवीं शताब्दी तक कन्नड एक समृद्ध भाषा बन चुकी थी। जो शिलालेख उपलब्ध हुए उसके अनुसार अनुमान लगाया जा सकता है कि वे चौथी और पाँचवीं शताब्दी के हैं। इन पुराने दस्तावेजों से इस भाषा के इतिहास का अनुमान लगाया गया है।

कन्नड साहित्य अत्यंत समृद्ध है लेकिन स्वतंत्रता के आंदोलन के साथ–साथ जब दक्षिण की भाषाओं का अनुवाद होने लगा तब कन्नड साहित्य में छिपी हुई निधि के बारे में हिंदी जगत एवं संपूर्ण भारत को ज्ञात हुआ। उसके बाद हिंदी असंख्य पुस्तकों का अनुवाद कन्नड से हिंदी में हुआ है और निरंतर हो रहा है। अनुवाद के माध्यम से कन्नड भाषा अपनी सीमाओं को लाँघते हुए विदेशों में भी अपना वर्चस्व स्थापित करने में सफल हो पाई है।

वैसे अनुवाद कार्य अत्यंत चुनौतीपूर्ण होता है और अनुवादक को कई कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है। अनुवादक या तो स्वयं रचनाकार हो जिन्हें दोनों भाषाओं का संपूर्ण ज्ञान हो अन्यथा अनुवाद प्रक्रिया में साहित्यिक भाव लुप्त हो जाने का संकट बना रहता है।

कन्नड से हिंदी अनुवाद के समय कुछ विशेष बातों का ध्यान रखना आवश्यक है:

1. वर्ण और ध्वनियों के उच्चारण में भेद

अ. कन्नड में अकारांत शब्दों का पूरा उच्चारण किया जाता है, जैसे हिंदी में फल, घर, नगर शब्दों का उच्चारण फल, घर, नगर ही है मगर कन्नड में फल का उच्चारण, फला के रूप में होता है। उसी प्रकार हिंदी में जो 'नमस्कार' शब्द है वह कन्नड में 'नमस्कारा' कहा जाता है।

आ. कन्नड में उतने ही व्यंजन हैं जितने देवनागरी में हैं। कन्नड वर्णमाला में एक अक्षर अधिक है जिसे 'ळ'(ल) कहा जाता है। इसके उच्चारण में सामान्य ल् से थोड़ा अंतर है।

इ. कन्नड में स्थानीय प्रभाव के कारण अकारांत शब्द 'ए' कारांत में लिखे जाते हैं। जैसे सीता को सीते, चरित्र को चारित्रे आदि। इसलिए अनुवाद करते समय हिंदी की वर्तनी में भी इन बातों का ध्यान रखना जरूरी है।

2. संबंधो के लिए आदरसूचक शब्दों का उचित प्रयोग

कन्नड भाषा की बहुत बड़ी विशेषता है उनके द्वारा रिश्तों का संबोधन। अनुवाद करते समय इस विषय पर अत्यंत सावधानी बरतनी पड़ती है क्योंकि कर्नाटक में कुछ ऐसे रिश्ते हैं जो हिंदी प्रदेश में प्रचलित नहीं हैं। यह उत्तर भारत की परंपराओं से बहुत अलग हैं जहाँ बहिन, बुआ, मामा की लड़की से विवाह होता है। मामा भाँजी का विवाह श्रेष्ठ माना जाता है। इसलिए कभी–कभी भाँजा भी दामाद बन जाता है, भाँजी भी बहू बन जाती है। नानी कभी सास बन जाती है और अपनी माँ ननद बन जाती है। इसी प्रकार बुआ–फूफा भी सास ससुर बन जाते हैं। सास को अत्ते और ससुर को मावा कहा जाता है। इसलिए सामान्य तौर पर बुआ को अत्ते ही कहा जाता है क्योंकि भविष्य में बुआ सास भी बन सकती है।

कन्नड में चाचा और मौसा को 'चिक्कप्पा' ताऊ और बड़े मौसा को 'दोड्डप्पा' कहा जाता है उसी प्रकार चाची और मौसी को 'चिक्कम्मा' तथा ताई, माँ, मौसी के लिए 'दोड्डम्मा' कहा जाता है। अनुवाद करते समय इन बातों का विशेष ध्यान रखना चाहिए। उसी प्रकार दादाजी और नानाजी के लिए 'अज्जा' या 'ताता' का संबोधन प्रयुक्त होता है तथा दादाजी और नानी के लिए 'अज्जी' शब्द का प्रयोग होता है। अनुवादक को इन सूक्ष्म बातों का ध्यान रखना अत्यावश्यक है।

3. व्याकरण में साम्य एवं वैषम्य

कन्नड और हिंदी के व्याकरण में कई साम्यताएँ एवं कई वैषम्यताएँ भी हैं। कुछ

महत्वपूर्ण अंतर इस प्रकार हैः

अ. मूलतः हिंदी में केवल स्त्रीलिंग और पुल्लिंग का प्रयोग होता है मगर कन्नड में इन दो लिंगों के अतिरिक्त नपुंसक लिंग भी है। कन्नड से हिंदी में अनुवाद करते समय यह ध्यान रखना पड़ता है कि कन्नड के नपुंसक लिंग के शब्द हिंदी में कहाँ पुल्लिंग होते है और कहाँ स्त्रीलिंग।

आ. हिंदी में विशेषण, संज्ञा के अनुसार बदल जाता है परंतु कन्नड में यह रूप–परिवर्तन नहीं होता।

उदाहरण स्वरूप– काले रंग को कन्नड में 'कप्पु' कहा जाता है। यदि हम इसका प्रयोग लड़का, लड़की और लड़के जैसे शब्दों के लिए करें तो 'काला' शब्द में कोई परिवर्तन नहीं होता।

काला लड़का – कप्पु हुडुगा
काली लड़की – कप्पु हुडुगी
काले लड़के – कप्पु हुडुगरु

इ. इसी प्रकार सर्वनाम की दृष्टि से भी कुछ भिन्नता दिखाई देती है। हिंदी में सर्वनाम में पुल्लिंग और स्त्रीलिंग एक समान हैं परंतु कन्नड में स्त्रीलिंग–पुल्लिंग का रूप सर्वनाम में अलग होते हैं।

जैसे हिंदी में यह– वह पुल्लिंग और स्त्रीलिंग दोनों के लिए प्रयुक्त होते हैं, लेकिन कन्नड में यह (पुल्लिंग) के लिए इवनु और वह (पुल्लिंग) के लिए अवनु का प्रयोग होता है। उसी प्रकार यह (स्त्रीलिंग) के लिए इवळु और वह (स्त्रीलिंग) के लिए अवळु का प्रयोग किया जाता है।

4. आंचलिक खान–पान एवं बोलियाँ जनित समस्याएँः

कन्नड से हिंदी में अनुवाद करते समय खाद्य सामग्री या पकवानों के नाम अनुवाद कर पाना कठिन कार्य है।

जैसे इस प्रदेश में रागी के आटे से पकवान बनते है। उससे रोटी भी बनाई जाती है और उसे पानी में उबालकर लड्डू जैसा रूप भी दिया जाता है जिसे लोग 'मुद्दे' कहते है। हिंदी में उसका अनूदित शब्द नहीं मिलता। ठीक उसी प्रकार कन्नड का एक शब्द है 'गंजी' जिसका हिंदी में पर्याय माँड है। मजदूर माँड पीते हैं पर बीमार व्यक्ति को अक्सर डॉक्टर सूजी या रागी के आटे की 'गंजी' पिलाने के लिए कहते हैं। सूजी के पतले घोल को हिंदी में माँड नहीं कहा जा सकता है।

कर्नाटक के उत्तर भाग की भाषा दक्षिण से बहुत अलग है। जैसे हूव्ली, बेलगाँवी आदि क्षेत्रों की बोली मैसूर से काफी भिन्न है। अनुवाद करते समय इन आंचलिक बोलियों का भी अनुवादक को ध्यान रखना पड़ता है।

कन्नड के कुछ प्रसिद्ध रचनाकार एवं अनुवादक

1. कन्नड के लोकप्रिय कवियों में कुवेंपु का नाम सर्वोपरि हैं जिन्हें राष्ट्रकवि के

नाम से जाना जाता है। उनकी कई महत्वपूर्ण रचनाएँ हिंदी में अनूदित हुई हैं। 'राष्ट्रकवि कुवेंपु की कविताएँ' नामक संग्रह का अनुवाद प्रो. तिप्पेस्वामी जी ने किया। उनके साथ डॉ. शनिधर एल. जी, प्रो. प्रधान गुरुदत्त एवं इस संग्रह के अनुवादों के परिशील डॉ. राजेंद्र मोहन भटनागर ने बहुत बड़ा कार्य सम्पन्न किया है।

2. उनके बाद डॉ. जी. एस. शिवरुद्रप्पा जी भी इसी शृंखला के सुप्रसिद्ध कवि हैं। उनकी कई बहुचर्चित कविताओं का हिंदी में अनुवाद भी हुआ है जिनमें 'मेरा दीया' प्रमुख है। इस संग्रह का अनुवादक डी. एन. श्रीनाथ है।

3. 1936 मे कर्नाटक के बल्लारी में जन्में डॉ. सरगु कृष्णमूर्ति, बेंगलुरु विश्वविद्यालय के हिंदी विभाग के अध्यक्ष रहे। इनकी मातृभाषा मूलतः तेलुगु होने पर भी हिंदी, अंग्रेजी, कन्नड, संस्कृत तथा अपभ्रंश भाषाओं में अधिकार रखते थे। हिंदी के प्रकांड पंडित एवं सरगु कृष्णमूर्ति हिंदी में ही अधिक लिखते थे।

4. डॉ. पी. आदेश्वर राव का जन्म 1936 को आंध्र प्रदेश के गुन्टूर शहर में हुआ। उन्होंने कवि, आलोचक, भाषा–वैज्ञानिक तथा अनुवादक के रूप में विशेष स्थान प्राप्त किया। इनकी मौलिक एवं अनूदित रचनाएँ हिंदी के अनके पत्र–पत्रिकाओं में प्रकाशित हुई हैं।

5. नाटकों के शृंखला में कन्नड नाटककारों ने हिंदी को कई मौलिक नाटक दिए। पंडित तारानाथ जी के नाटक 'दीनबंधु कबीर' का गांधी जी के समक्ष बेंगलुरू में मंचन हुआ। इसमें स्वयं तारानाथ ने कबीर की भूमिका निभाई।

6. डॉ. र. रा. दिवाकर ने एम. आर. श्रीनिवास मूर्ति के 'नागरिक' नामक नाटक का हिंदी में अनुवाद किया।

7. डॉ. हिरण्यम ने कुवेंपु के नाटक 'रकताक्षी' का अनुवाद किया है।

8. डॉ. राजेश्वरय्या तथा गुरुदत्त ने डॉ. प्रभुशंकर के नाटक 'अंगुलीमाल' का अनुवाद किया है।

9. श्री बी. वी. कांरत ने श्रीरंग के नाटक 'केलुजनमेजय' तथा गिरीश कर्नाड के 'तुग्लक' का अनुवाद किया।

10. श्रीमती चंद्राबाई ने डॉ. प्रभुशंकर के नाटक 'अंबपाली' का अनुवाद किया है।

11. प्रसिद्ध उपन्यासकार श्री बी. एल. बैरप्पा के कई उपन्यास कन्नड से हिंदी में अनूदित हुए। उपन्यास 'वंशवृक्ष' का सफल अनुवाद डॉ. वासु बी. पुत्रन ने किया।

12. कन्नड साहित्य के उपन्यास 'हंसगीत' का अनुवाद श्री प्रताप सुधाकार ने किया।

14. कर्नाटक से कोश एवं व्याकरण ग्रंथकारों ने भी हिंदी को समृद्ध किया। कन्नड भाषा–भाषियों का हिंदी के प्रति रुझान कई सराहनीय कोशों के निर्माण में देखा जा सकता हैं। ऐसे कोशकारों में श्री जंबुनाथन, गुरुनाथ जोशी उल्लेखनीय हैं।

यह सूची अत्यंत विस्तृत है परंतु जो सबसे अधिक उल्लेखनीय बात है वह इस विचार से है कि हिंदीतर क्षेत्र में इतनी तेज रफ्तार से हिंदी में काम हो रहा है। ध्यान देने की बात यह भी है कि अधिकतर अनुवाद भी हिंदी के अध्ययन, अध्यापन एवं लेखन कार्य में निरंतर अपनी भूमिका निभा रहे हैं। भविष्य में कन्नड एवं अन्य दक्षिण भारतीय भाषाओं के साहित्य से अनुवाद की संभावनाएँ बढ़ रही हैं। आज के बुद्धिजीवी बहुभाषा–भाषी विद्वान हैं एवं आंचलिकता तथा क्षेत्रीयता की सभी सीमाओं को तोड़कर साहित्य ने अखंड भारत के निर्माण में अपनी तत्परता एवं सिद्धहस्तता दिखाई है। राष्ट्रीय गरिमा को बनाए रखते हुए अनुवाद ने आज विश्व को भी अपने दायरे में समेट लिया है।

कन्नड से हिंदी में अनुवाद के बाद, अनूदित हिंदी ग्रंथों की सहायता से वे रचनाएँ अन्य देशों एवं विदेशी भाषाओं में भी अनूदित हो रही हैं। अतः दक्षिण भारतीय भाषाओं में कन्नड भाषा अनुवाद के माध्यम से आज केवल एक प्रांतीय भाषा बनकर नहीं रह गई अपितु वह संपूर्ण वैश्विक पटल पर निर्द्वंद्व रूप से हिंदी को पूर्णता दे रही है। साहित्य का लक्ष्य पूरा होता हुआ दिखाई दे रहा है।

संदर्भ सूचीः

1. भोलानाथ तिवारी, किरण बाला; भारतीय भाषाओं से हिंदी अनुवाद की समस्याएँ, प्रकाशकः शब्दाकार, दिल्ली, पृ. सं 55

संदर्भ ग्रंथः

1. डॉ. त्रिभुवन राय, अनुवाद, स्वरूप और आयाम, अनिल प्रकाशन, इलाहाबाद
2. जितेंद्र गुप्त, प्रियदर्शन, अरुण प्रकाश; पत्रकारिता में अनुवाद, राधाकृष्ण प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड, दिल्ली
3. डॉ. पी. आदेश्वर राव, दक्षिण भारतीय हिंदी साहित्य का इतिहास, अमन प्रकाशन, कानपुर
4. भोलानाथ तिवारी, किरण बाला; भारतीय भाषाओं से हिंदी अनुवाद की समस्याएँ, प्रकाशकः शब्दकार, दिल्ली
5. डॉ. वासु बी. पुत्रन, कन्नड और हिंदी के रामकाव्यों का तुलनात्मक अध्ययन (16वीं और 17वीं शती), प्रकाशक–मदर इंडिया धर्मार्थ प्रौढ़ पुराने विद्यार्थी संघ, मुंबई

❑❑❑

राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 और आत्मनिर्भर भारत

ब्रजलता शर्मा

राष्ट्रीय शिक्षा नीति (एनईपी) 2020 भारतीय शिक्षा प्रणाली के लिए एक व्यापक नीति दस्तावेज है, जिसे 29 जुलाई 2020 में भारत सरकार द्वारा अनुमोदित किया गया था। गुणवत्तापूर्ण शिक्षा, छात्रों के सीखने के परिणामों में सुधार, समानता और समावेशिता को बढ़ावा देना। राष्ट्रीय शिक्षा नीति (NEP) 2020 के कुछ प्रमुख तत्वों में "5 + 3 + 3 + 4" स्कूल शिक्षा प्रणाली का आरंभ, शिक्षा के माध्यम के रूप में मातृभाषा या क्षेत्रीय भाषा का उपयोग, शिक्षक भर्ती के लिए एक राष्ट्रीय भर्ती संस्थान की स्थापना और व्यावसायिक शिक्षा और कौशल विकास को बढ़ावा देना है।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 के कई उद्देश्य सरकार के आत्मनिर्भर भारत बनाने के लक्ष्य का समर्थन करना है। इनमें से कुछ उद्देश्यों में शामिल हैं:

• सभी नागरिकों के लिए उनकी सामाजिक–आर्थिक पृष्ठभूमि की परवाह किए बिना गुणवत्तापूर्ण शिक्षा के लिए समावेशी और समान पहुँच प्रदान करना।

• भारत की भाषाई और सांस्कृतिक विविधता को संरक्षित और बढ़ावा देने की दृष्टि से शिक्षा में भारतीय भाषाओं के उपयोग को बढ़ावा देना।

• नियमित शिक्षा के साथ व्यावसायिक शिक्षा के एकीकरण के माध्यम से एक कुशल कार्यबल विकसित करना जो नौकरी बाजार की मांगों को पूरा कर सके।

• उच्च शिक्षा में सकल नामांकन अनुपात को 2035 तक 50% तक बढ़ाने के लिए, ताकि उच्च शिक्षा तक पहुँच बढ़ाई जा सके और समग्र आर्थिक और सामाजिक विकास का समर्थन किया जा सके।

• नई तकनीकों, विचारों और उत्पादों का उत्पादन करने के लिए अनुसंधान और नवाचार को प्रोत्साहित करना, जो भारत को आत्मनिर्भर बनाने में मदद करेगा।

• 21वीं सदी के कौशल जैसे महत्वपूर्ण सोच, रचनात्मकता, समस्या को सुलझाने और जीवन कौशल के साथ छात्रों को सशक्त बनाना।

• शिक्षा की समग्र गुणवत्ता में सुधार करना और इसे 21वीं सदी की जरूरतों के लिए अधिक प्रासंगिक बनाना।

• सभी के लिए वित्तीय रूप से सुलभ शिक्षा की व्यवस्था बनाकर शिक्षा को अधिक किफायती और सुलभ बनाना।

शिक्षा की एक ऐसी प्रणाली का निर्माण करना जो शिक्षार्थी की जरूरतों पर केंद्रित हो, न कि केवल संस्था या समाज की जरूरतों पर। राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 का मुख्य उद्देश्य भारतीय भाषाओं के उपयोग को बढ़ावा देना, व्यावसायिक शिक्षा को शामिल करना, उच्च शिक्षा तक पहुँच बढ़ाना, अनुसंधान और नवाचार को प्रोत्साहित करना और 21वीं सदी के कौशल के साथ छात्रों को सशक्त बनाना है, जो सभी आत्मनिर्भर भारत की दृष्टि में योगदान करते हैं। राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 में, भारत में शिक्षा के भविष्य और समग्र आर्थिक और सामाजिक विकास पर महत्वपूर्ण प्रभाव पड़ने की क्षमता है। भविष्य के कुछ संभावित प्रभावों में शामिल हैंः नीति का उद्देश्य सभी नागरिकों के लिए उनकी सामाजिक–आर्थिक पृष्ठभूमि की परवाह किए बिना गुणवत्तापूर्ण शिक्षा तक समावेशी और समान पहुँच प्रदान करता है। इससे शैक्षिक असमानताओं में कमी और साक्षरता दर में वृद्धि हो सकती है, जिसका देश के समग्र विकास पर सकारात्मक प्रभाव पड़ेगा। व्यावसायिक शिक्षा और कौशल विकास पर नीति के जोर से एक कुशल कार्यबल का विकास हो सकता है जो नौकरी तथा बाजार की मांगों को पूरा करने के लिए बेहतर ढंग से सुसज्जित हो। इससे देश के आर्थिक विकास पर सकारात्मक प्रभाव पड़ सकता है और इससे रोजगार के अधिक अवसर पैदा हो सकते हैं। अनुसंधान और नवाचार पर नीति के जोर से नई प्रौद्योगिकियों, विचारों और उत्पादों का उत्पादन हो सकता है, जो देश के आर्थिक विकास पर सकारात्मक प्रभाव डाल सकता है। शिक्षा में भारतीय भाषाओं के उपयोग पर नीति के जोर से भारत की भाषाई और सांस्कृतिक विविधता का संरक्षण और संवर्धन हो सकता है, जिसका देश की सांस्कृतिक पहचान पर सकारात्मक प्रभाव पड़ेगा।

नीति का उद्देश्य छात्रों को 21वीं सदी के महत्वपूर्ण कौशल जैसे सोच, रचनात्मकता, समस्या को सुलझाने और जीवन कौशल के साथ सशक्त बनाना है, जो उन्हें भविष्य की चुनौतियों का सामना करने के लिए बेहतर ढंग से तैयार करने में मदद करेगा। अतः राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 में, भारत में शिक्षा के भविष्य और देश के समग्र आर्थिक और सामाजिक विकास पर महत्वपूर्ण प्रभाव डालने में क्षमतावान है। इससे शिक्षा पहुँच में सुधार, एक कुशल कार्यबल का विकास, अनुसंधान और नवाचार में वृद्धि, भारत की क्षेत्रीय भाषाओं का अधिक उपयोग और छात्रों का सशक्तिकरण हो सकता है। ये सभी आत्मनिर्भर भारत के विकास में योगदान करते हैं। राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 और आत्मनिर्भर भारत को देश वैश्विक शक्ति बनाने में सहायक बनाने के लिए कई कदम उठाए जा सकते हैं, जैसे– पहला कदम यह सुनिश्चित करना है कि पर्याप्त संसाधनों और समर्थन के साथ नीति को प्रभावी ढंग से लागू किया जाए। इसमें

पर्याप्त धन, शिक्षकों और प्रशासकों के लिए प्रशिक्षण, प्रभावी निगरानी और मूल्यांकन तंत्र शामिल हैं। नीति में विज्ञान, प्रौद्योगिकी, इंजीनियरिंग और गणित (एसटीईएम) शिक्षा पर जोर दिया जाना चाहिए, क्योंकि ये क्षेत्र देश के आर्थिक विकास और वैश्विक बाजार में प्रतिस्पर्धा के लिए आवश्यक हैं। नीति को अंतरराष्ट्रीय सहयोग को प्रोत्साहित करना चाहिए, जैसे कि छात्र और संकाय विनिमय कार्यक्रम, संयुक्त अनुसंधान परियोजनाएँ और विदेशी विश्वविद्यालयों के साथ साझेदारी। यह भारतीय छात्रों और शोधकर्ताओं को व्यावसायिक विकास के लिए विश्व स्तरीय संसाधनों और अवसरों तक पहुँच प्रदान करेगा। नीति को छात्रों में उद्यमशीलता कौशल विकसित करने और अपना खुद व्यवसाय शुरू करने के लिए अवसर और प्रोत्साहन प्रदान करना चाहिए। इससे रोजगार सृजित करने और आर्थिक विकास को गति देने के साथ–साथ भारत को आत्मनिर्भर बनाने में मदद मिलेगी। नीति की निजी और सार्वजनिक दोनों क्षेत्रों में नई तकनीकों, विचारों और कंपनियों की प्रतिस्पर्धात्मकता तथा देश के समग्र आर्थिक विकास में सुधार करने में मदद मिलेगी। नीति को गुणवत्तापूर्ण शिक्षा प्रदान करने पर ध्यान देना चाहिए, और यह सुनिश्चित करना चाहिए कि शिक्षा प्रणाली समाज और अर्थव्यवस्था की बदलती जरूरतों के अनुरूप हो। इससे छात्रों को भविष्य के जॉब मार्केट के लिए तैयार करने में मदद मिलेगी। नीति को आजीवन सीखने के नए–नए अवसर प्रदान करने चाहिए, क्योंकि दुनिया लगातार बदल रही है और व्यक्तियों को प्रासंगिक बने रहने के लिए नए कौशल और ज्ञान को अपनाने की आवश्यकता है। राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 और आत्मनिर्भर भारत देश को वैश्विक शक्ति बनाने में सहायक बनाने के लिए, एस. टी. ई. एम शिक्षा, अंतरराष्ट्रीय सहयोग, उद्यमिता, नवाचार और अनुसंधान, गुणवत्तापूर्ण शिक्षा और आजीवन पर जोर देने के साथ–साथ इन सभी नीतियों को प्रभावी ढंग से लागू किया जाना चाहिए। राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 एक ऐसी व्यापक नीति है जिसका उद्देश्य भारत में पूर्व शिक्षा प्रणाली को बदलना है, जिसकी मुख्य गुणवत्ता मानकों में विभिन्न प्रकार की आकांक्षाएँ पूरी करने की क्षमताएँ विद्यमान है। जैसे–

- अधिक समावेशी,
- न्यायसंगत,
- सुलभ,
- नीति भारत की क्षेत्रीय भाषाओं के उपयोग को बढ़ावा,
- व्यावसायिक शिक्षा के स्तरों में वृद्धि,
- उच्च शिक्षा तक पहुँच बढ़ाने में सहायक,
- अनुसंधान और नवाचार को प्रोत्साहित आदि

राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 द्वारा उपरोक्त सभी गुणवत्ता और प्रतिबद्धताओं से

ओत–प्रोत होने के कारण एक आत्मनिर्भर भारत के विकास पथ पर अग्रसर होना सुनिश्चित है। इस नीति से भारत में शिक्षा के भविष्य और देश के समग्र आर्थिक और सामाजिक विकास पर सकारात्मक प्रभाव पड़ने की उम्मीद है हालाँकि, नीति की सफलता पर्याप्त संसाधनों और समर्थन के साथ इसके प्रभावी कार्यान्वयन पर भी निर्भर करेगी। भारत को वैश्विक शक्ति बनाने में नीति को और अधिक सहायकपूर्ण बनाने के लिए एस. टी. ई. एम शिक्षा, अंतरराष्ट्रीय सहयोग, उद्यमिता, नवाचार और अनुसंधान पर जोर देना अतिआवश्यक है।

संदर्भ सूचीः

- राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020, मनोज कुमार राय एंड गोपाल कृष्णा ठाकुर;
- India's New National Education Policy 2020, Dr. Joseph K Thomas;
- New education policy 2020; concepts approaches and challenges. lalima Singh. Harish Kumar Sir, Anuradha Singh;
- National education policy 2020; The key to development in India, Dr. Keshav Chandr mandal;
- शिक्षण विधियाँ, प्रतियोगिता साहित्य
- नई शिक्षा नीति 2020 और मेरे विचारः जितेंद्र यादव;
- फ्यूचर ऑफ द इंडियन एजुकेशन सिस्टम नरेंद्र जाधव;
- शिक्षा और समाजः डॉ. अशोक कुमार, डॉ. संदीप कुमार।

❑❑❑

भारतीय संगीत शिक्षा की परंपरा एवं राष्ट्रीय शिक्षा नीति– 2020

प्रियंका

प्राचीन समय से ही भारतीय शिक्षा परंपरा में संगीत शिक्षा की दृष्टि से महत्वपूर्ण विषय रहा है। इसके महत्व का अनुमान इसी से लगाया जा सकता है कि हमारे चार वेदों में से सामवेद संगीत आधारित वेद है। वैदिक, पौराणिक, महाकाव्य, बौद्ध, जैन, गुप्त आदि कालों में संगीत शिक्षा शुद्ध भारतीय संगीत परंपरा के रूप में ही विद्यमान रही किंतु, मुगलों के आने के पश्चात भारतीय संगीत में कुछ बदलाव हुए जैसे कि ध्रुपद जो एक प्राचीन संगीत शैली थी उसके स्थान पर ख्याल गायकी ने अपना स्थान बना लिया, वहीं, अमीर खुसरो ने मृदंग के स्थान पर तबले का आविष्कार किया। वहीं, अंग्रेजों के आगमन के पश्चात संगीत में पाश्चात्य शैली का प्रभाव दिखाई दिया। किंतु, प्राचीन समय से चली आ रही गुरु–शिष्य परंपरा, घरानेदार गायकी (हालाँकि इस समय भी कुछ संस्थानों द्वारा संगीत शिक्षा दी जाती है।) की जगह स्वतंत्रता से कुछ समय पूर्व ही संगीत शिक्षा के कई संस्थान सामने आए। जिसके परिणामस्वरूप संगीत शिक्षा प्राप्त करना विद्यार्थी के लिए उतना जटिल नहीं रहा जितना की पहले था। राष्ट्रीय शिक्षा नीति, 2020 में संगीत शिक्षा/कलाओं के संदर्भ में कई महत्वपूर्ण बिंदुओं पर विचार किए गए हैं।

भारत भूमि में संगीत का महत्व मात्र मनोरंजन तक सीमित नहीं वरन् अध्यात्म, दर्शन, भक्ति, चिंतन, योग विषयक है। भारतीय परंपरा के अनुसार सृष्टि के आरंभ का मूल नाद संगीतमय है। राष्ट्रीय शिक्षा नीति, 2020 में कलाओं पर चर्चा करते हुए कहा गया–''यही सांस्कृतिक एवं प्राकृतिक संपदा है जो भारत के पर्यटन स्लोगन के अनुसार भारत को वास्तव में ''अतुल्य भारत'' बनाती है। भारत की इस सांस्कृतिक संपदा का संरक्षण, संवर्धन एवं प्रसार, देश की उच्चतर प्राथमिकता होनी चाहिए क्योंकि यह देश की पहचान के साथ–साथ इसकी अर्थव्यवस्था के लिए भी बहुत महत्वपूर्ण है।''[1] शिक्षा ही देश में ज्ञान निर्माण और नवाचार का आधार एवं राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था के विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। राष्ट्रीय शिक्षा नीति, 2020 का लक्ष्य भारत

को एक वैश्विक ज्ञान महाशक्ति बनाना है, जिसमें संगीत भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाएगा।

भारतीय संगीत शिक्षा की परंपरा के अंतर्गत : वैदिककालीन चार वेदों में 'सामवेद' संगीत आधारित वेद है। इस काल में अभिजात कुल की महिलाए संगीत के गायन एवं वादन की शिक्षा प्राप्त करती थीं। इस समय के शिक्षा ग्रंथों का विवेचन निम्न प्रकार हैः मांडूकी शिक्षा यह मंडूक ऋषि द्वारा प्रतिपादित हुई। इसका संबंध अथर्ववेद से होने के साथ ही इसमें सामवेद के स्वरों के शुद्ध उच्चारण के बारे में बताया गया है। पाणिनीय शिक्षा इस शाखा को याज्ञवल्कय ऋषि ने रचित किया। इस ग्रंथ में उदात्तादि स्वरों एवं इन्हीं से संबंधित वर्ण देवता जाति आदि का भी उल्लेख है। गौतमी शिक्षा, लोमशी शिक्षा, नारदीय शिक्षा भी वैदिककालीन संगीत शिक्षा संबंधित ग्रंथ हैं। वैदिक काल में शिक्षण का एक सत्र श्रवण मास की पूर्णिमा से लेकर पौष मास की पूर्णिमा तक होता था। जिसके अंतर्गत विद्यार्थियों को विभिन्न उपाधियों से सम्मानित किया जाता था जैसे 12 वर्ष तक शिक्षा प्राप्त करने वाले को 'स्नातक', 24 वर्ष तक शिक्षा ग्रहण करने वाले को 'बसु' एवं 36 वर्ष तक शिक्षा ग्रहण करने वाले को आदित्य कहा जाता था। इस काल में प्रातःकालीन समय शिक्षा संस्थानों में स्वाध्याय हेतु उपयुक्त माना जाता था। पौराणिक काल में नाटक का प्रचलन हुआ, जिसमें संगीत महत्वपूर्ण था। इस काल के विद्यार्थियों को संगीत का ज्ञान प्राप्त करना वैदिक काल के समान आवश्यक था। महाकाव्य काल रायायण एवं महाभारत दोनों महाकाव्य भारतीय संस्कृति के आधार स्तंभ हैं। इन दोनों का रचनाकाल 500 ई.पू.से 500 ई. माना जाता है। लव–कुश ने स्वर, ताल, पद तथा मूर्च्छना आदि से युक्त शास्त्रीय गान का अभ्यास कर श्रोताओं को मंत्र–मुग्ध किया। अर्जुन ने स्वयं राजकुमारी उत्तरा को नृत्य एवं संगीत की शिक्षा दी थी। बौद्ध काल में अनेक सांगीतिक ग्रंथों की रचना हुई। शास्त्र पक्ष के विकास के साथ–साथ संगीत शिक्षा का विस्तार हुआ। जिसके परिणामस्वरूप विभिन्न शिक्षण संस्थान, विश्वविद्यालय, विद्यामंदिर एवं अग्रहारों का निर्माण हुआ। 'ललित विस्तर' के अनुसार बुद्ध की माता मायादेवी भी संगीत कला में निपुण थीं। इस काल में नाट्य एवं संगीत दोनों को राज्याश्रय प्राप्त था। एवं बौद्ध विहारों को आर्थिक अनुदान दिया जाता था। ''बौद्धकाल में तक्षशिला विद्यादान का प्रमुख केंद्र था, जिसमें वैदिक विद्यालय, अष्टादश विद्यालय, शिल्पविज्ञान विद्यालय आदि विभिन्न अध्ययन विभागों में 500–500 विद्यार्थी शिक्षा पाते थे। वाराणसी, इस समय का दूसरा विद्या केंद्र था, जिसमें संगीताध्ययन का स्वतंत्र विभाग था। नालंदा, विक्रमशिला एवं तदंतपुरी जैसे अन्य विश्वविद्यालयों में भी गांधर्व का स्वतंत्र निकाय या फैकल्टी थी तथा इसके अधिष्ठाता के रूप में भारत के विख्यात संगीतज्ञ की नियुक्ति हुआ करती थी।''[2] इस समय के संस्थानों के बारे में डॉ. मधुबाला सक्सेना

लिखती हैं–''छठी व सातवीं शताब्दी में नालंदा विश्वविद्यालय में संगीत शिक्षा की व्यवस्था, 10वीं शताब्दी में बीजापुर जिले के सलोरगी के मंदिर के एक कक्ष में संगीत विद्यालय की स्थापना हुई। इन विद्यामंदिरों को राजा या सभी नारियों की ओर से आर्थिक सहायता दी जाती थी जिसे 'अग्रहार' कहा जाता था। इनमें धार्मिक कृत्यों में लीन रहते हुए ही विद्यार्थी शिक्षा ग्रहण करते थे। अग्रहारों की भांति 'टोल' नामक शिक्षा संस्थान उत्तर प्रदेश, बिहार व बंगाल प्रांतों में बने। अतः वैदिक काल संगीत शिक्षा की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि का उद्गम स्त्रोत कहा जा सकता है।''[3] जैन काल में जैन मनीषियों ने तीन प्रकार के काव्य ग्रंथों की रचना की। जिनके वर्ण्य विषय प्रायः रागों से संबंधित थे–रासग्रंथ, बारहमासा, रागमाला। इस युग में गाथा आख्यान तथा कलाओं की शिक्षा पारंपरिक रूप से दी जाती थी। इन विधाओं को लौकिक विद्याओं एवं कलाओं के अंतर्गत रखा जा सकता है। 'चलित' नामक गीत की शिक्षा भी इसी अंग के रूप में दी जाती थी। इस काल के आचार्यों में भरत तथा विशाखिल का नाम प्रकाश में आता है। गुप्त काल नालंदा एवं तक्षशिला आदि विश्वविद्यालयों में निःशुल्क शिक्षा दी जाती थी। चंद्रगुप्त ने संगीत को प्रोत्साहित किया। संगीत की शिक्षा हेतु संगीतशालाएँ थीं; जिसमें आचार्यों को उनकी योग्यता के आधार पर वेतन दिया जाता था। अर्थात प्राचीनकालीन संगीत शिक्षा समाज का अभिन्न अंग थी, जिसके फलस्वरूप कई महत्वपूर्ण ग्रंथों की रचना हुई, जैसे–नाट्यशास्त्र (भरत), दत्तिलम (दत्तिल), वृहद्देशी (मतंग), नारदीय शिक्षा (नारद) आदि।

भारतीय संगीत में प्राचीनकाल से ही घरानेदार पद्धति मूलतः गुरु–शिष्य परंपरा के रूप में विद्यमान रही। मध्यकाल में इसे घराने का नाम प्राप्त हुआ, जिसके अंतर्गत अविच्छिन्न परंपरा पीढ़ी दर पीढ़ी संगीतज्ञों में हस्तांतरित होती रहती है। विशिष्ट संगीतज्ञों के नाम पर आगे चलकर घराने का निर्माण हुआ–फैयाज खाँ (आगरा घराना), अब्दुल करीम खाँ (किराना घराना), रजब अली खाँ (जयपुर घराना), अलाउद्दीन खाँ, गुलाम अली खाँ (पटियाला घराना), मियाँ तानसेन (सेनिया घराना), नत्थन पीरबख्श (ग्वालियर घराना) आदि। घरानेदार शिक्षण प्रणाली में शिष्यों के तीन वर्ग थे–सामान्य वर्ग (ये शिष्य केवल उस्तादों को सुनकर ही शिक्षा ग्रहण किया करते थे।) खास विशिष्ट वर्ग (ये शिष्य जिनके ऊपर गुरु को पूर्ण रूप से यह विश्वास हो जाता था कि वे उनकी गायन शैली को पूर्ण रूप से आत्मसात् कर चुके हैं।) खास उल खास /अतिविशिष्ट वर्ग (ये शिष्य गुरु के ही वंशज होते थे।) मध्यकाल में कई महत्वपूर्ण सांगीतिक ग्रंथों की रचना हुई–गीतगोविंद (जयदेव), संगीत रत्नाकर (शारंगदेव), राग तरंगिणी (लोचन), संगीत राज (महाराणा कुम्भा), स्वरमेल कलानिधि (रामामात्य), सद्राग चंद्रोदय, रागमाला, रागमंजरी, नर्त्तन निर्णय (पंडित पुंडरीक विट्ठल), राग

विबोध (पंडित सोमनाथ), संगीत दर्पण (दामोदर), संगीत पारिजात (अहोगल), हृदय कौतुभ, हृदय प्रकाश (हृदयनारायण देव) आदि।

भारत में अंग्रेजी शासन के पश्चात शिक्षा की दृष्टि से संगीत विषय को उचित प्रोत्साहन न मिला, किंतु उन्होंने 'सामुदायिक शिक्षा' अर्थात 'सभी को शिक्षा का अधिकार' उद्देश्य को अग्रसर किया। हालाँकि सन 1929 में सरकार ने शिक्षा में संगीत के महत्व को भी स्वीकार किया। जिसका सुझाव प्राथमिक एवं माध्यमिक शिक्षा–समिति ने दिया था। परिणामस्वरूप, प्राथमिक विद्यालयों के प्रथम तीन वर्षों में संगीत को ऐच्छिक विषय के रूप में शामिल कर लिया गया। इस विषय पर होने वाले आर्थिक व्यय का दायित्व विद्यालय का ही होता था। अंग्रेजों में कुछ प्रसिद्ध विद्वान–सर विलियम जोन्स, कैप्टन एन. ए. विलियर्ड, मिस्टर विलियम सी. स्टेफोर्ट, मिस्टर क्लीमेंट, मिस्टर एलेन डेनेल्यू, मिस्टर एफ. फॉक्स, कर्नल पेटर इलियस, हिपकींस, क्लीमेंट्स, डेवल फॉक्स स्ट्रैंगवेज, विलियम जोन्स आदि ने भारतीय शास्त्रीय संगीत का गहन अध्ययन किया, जिस कारण संगीत विषय की श्रेष्ठतम पुस्तकों की रचना अंग्रेजी भाषा में हुई। सन 1834 में, पाश्चात्य विद्वान कैप्टन विलर्ड ने भारतीय संगीत पर 'ए ट्री टाइज ऑन दि म्यूज़िक ऑफ हिंदुस्तान' नामक ग्रंथ की रचना की। सन 1947 तक संगीत विषय को अनेक व्यवसायी विषयों के साथ एस.एस.सी. की परीक्षा में भी सम्मिलित किया गया। किंतु फिर भी संगीत विषय को एक सुनियोजित शिक्षण के रूप में शामिल नहीं किया गया। संगीत विषय का कोई निश्चित पाठ्यक्रम भी शिक्षा विभाग की ओर से प्रस्तावित नहीं किया गया था। इस काल में बहुत से भारतीय विद्वान जैसे मुहम्मद रज़ा, प्रताप सिंह, सुरेंद्र मोहन टैगोर आदि ने संगीत शिक्षा को अपने रचनात्मक कार्यों से प्रभावित किया। ''डॉ. ऐनी बेसेंट, एक यूरोपीय महिला, ने सर्वप्रथम भारतीय स्कूलों के पाठ्यक्रम में संगीत का समावेश कराया। सन 1911 में रविंद्रनाथ टैगोर ने 'शांति निकेतन' में और महात्मा गांधी ने 1915 में 'सत्याग्रह आश्रम' में संगीत का शिक्षण प्रारम्भ कराया।''[4]

19वीं शताब्दी का अंत एवं 20वीं शताब्दी का पूर्वाद्ध का समय ऐसा समय था जब विभिन्न क्षेत्रों में सुधारकों एवं उच्चकोटि के महापुरुषों का जन्म हुआ, वहीं संगीत की दुनिया में महान कलाकारों/विद्वानों ने संगीत को पुनः प्रतिस्थापित करने का कार्य किया, जिनमें महत्वपूर्ण नाम हैं–मौलाबख्श, पंडित विष्णु दिगंबर पलुस्कर, पंडित विष्णु दिगंबर भातखंडे, पंडित ओंकारनाथ ठाकुर आदि। इस काल में संगीत के पुनरूत्थान का श्रेय पंडित विष्णु दिगंबर भातखंडे को जाता है। उन्होंने रागों के वर्गीकरण के संबंध में एक नए सिद्धांत का प्रतिपादन किया, वह है थाट राग वर्गीकरण। एवं संगीत के क्रमिक विकास का स्पष्टीकरण देने हेतु 'कम्परेटिव स्टडी ऑफ द म्यूजिक' एवं 'हिंदुस्तानी संगीत पद्धति' की रचना करके ऐतिहासिक

समालोचना प्रस्तुत की। पंडित विष्णु दिगंबर भातखंडे को संगीत समारोहों का पितामह कहा जाता था। इन्होंने सर्वप्रथम 1916 में बड़ौदा के महाराज सयाजीराव गायकवाड़ की अध्यक्षता में संगीत सम्मेलन करवाया। उनके द्वारा आयोजित संगीत सम्मेलन–

- प्रथम अखिल भारतीय सम्मेलन, बड़ौदा, 1916
- द्वितीय अखिल भारतीय संगीत परिषद, दिल्ली, 1918
- तृतीय संगीत परिषद, बनारस, 1919
- चतुर्थ अधिवेशन, लखनऊ, 1924
- पाँचवा अधिवेशन, लखनऊ, 1926

संस्थाओं के अंतर्गत संगीत शिक्षण की शुरुआत सन 1880 के लगभग जामनगर में पंडित आदित्यराम, बड़ौदा में श्री मौलाबख्श एवं कलकत्ता में श्री सुरेंद्र मोहन टैगोर द्वारा हो चुकी थी, किंतु वास्तविक सूत्रपात पंडित विष्णु दिगंबर भातखण्डे जी द्वारा हुआ, उनके द्वारा स्थापित कुछ सांगीतिक संस्थाओं के नाम–

- शारदा संगीत मंडल, 1914
- माधव संगीत विद्यालय, 1918
- मेरिस म्यूजिक कॉलेज, 1925–26

पंडित विष्णु दिगंबर भातखंडे जी के अनुयायियों द्वारा भी विद्यालयों की स्थापना की गई–

- पंडित बाबूराम गोखले द्वारा संगीत विद्यालय
- पंडित नारायण राव व्यास द्वारा व्यास संगीत विद्यालय
- श्री चिदानंद नगरकर द्वारा भारतीय संगीत शिक्षापीठ
- पंडित मनोहर बरवे द्वारा 'मनोहर संगीत विद्यालय'
- पंडित बालकृष्ण बुआ द्वारा सरस्वती संगीत विद्यालय

साथ ही पंडित विष्णु दिगंबर भातखण्डे जी एवं उनके शिष्यों द्वारा उच्चकोटि की संगीत पुस्तकों की रचना हुई जिनमें प्रमुख हैं–स्वर मालिका संग्रह, श्री मल्लक्ष्य संगीतम्, हिंदुस्तानी संगीत पद्धति भाग–1,2,3, अभिनव राग मंजरी आदि।

पंडित विष्णु दिगंबर पलुस्कर की शिष्य परंपरा में पंडित नारायण राव व्यास, पंडित विनायक राव पटवर्धन, प्रो. वी. आर. देवधर, स्व. डी. वी. पलुस्कर आदि महत्वपूर्ण नाम हैं। पंडित विष्णु दिगंबर पलुस्कर एवं उनके शिष्यों द्वारा संगीत संस्थाओं की स्थापना की गई जिनमें–सरस्वती संगीत विद्यालय, गोपाल गायन समाज, गांधर्व महाविद्यालय, प्रयाग संगीत समिति, विष्णु संगीत विद्यालय, शंकर गांधर्व महाविद्यालय, गांधी संगीत विद्यालय आदि हैं।

स्वतंत्रता के पश्चात् एक ओर विज्ञान एवं तकनीकी क्षेत्रों में शिक्षाविदों द्वारा क्रांतिकारी परिवर्तन हो रहे थे, तो दूसरी ओर संगीत के क्षेत्र में परिवर्तन की गति

सुप्तावस्था में थी। परंतु कुछ वर्षों से संगीत शिक्षाविदों और विद्वानों के द्वारा संगीत के क्षेत्र में सराहनीय कार्य हो रहे हैं। भारतीय कला एवं संस्कृति के विकास हेतु सरकार भी अपने दायित्व की ओर अगसर हुई। महाराष्ट्र के मुख्यमंत्री बी.जी.खेर ने सन 1948–49 में संगीत शिक्षा–समिति की स्थापना की जो उनकी सांस्कृतिक जागरूकता को प्रदर्शित करती है। इस समिति के अध्यक्ष श्री बी.जी.जत्थार थे। अतएव, इसे जत्थार समिति के नाम से संबोधित किया गया। इसके अतिरिक्त भारत सरकार ने स्वाधीनता उपरांत शिक्षण में ललित कलाओं को सम्मिलित करने पर विचार किया। वर्तमान में देश की विभिन्न शिक्षण संस्थाएँ संगीत की विभिन्न धाराओं शास्त्रीय संगीत, लोक संगीत, एकल गायन, वादन आदि के प्रशिक्षण हेतु उपलब्ध हैं। अन्य विषयों के समान संगीत विषय में भी परीक्षाएँ उत्तीर्ण करने के पश्चात उपाधियाँ प्रदान की जाती हैं। समस्याओं के समाधान हेतु सैद्धांतिक एवं क्रियात्मक पक्ष से संबंधित सेमिनार एवं गोष्ठियों का आयोजन किया जा रहा है। इसके अतिरिक्त शोधकार्य हेतु भी विश्वविद्यालयों की ओर से पूर्ण व्यवस्था उपलब्ध की गई है। संस्थागत शिक्षण में शिक्षा प्राप्त कर लेने के पश्चात एक विद्यार्थी को लगभग 50–60 रागों का ज्ञान हो जाता है क्योंकि संस्थाओं में शिक्षकगण पाठ्यक्रम को पूर्ण करने हेतु बाध्य रहते हैं। डॉ. सुभद्रा चौधरी इस संदर्भ में लिखती हैं–''गुरुकुल पद्धति के स्थान पर संगीत शिक्षा को संस्था के माध्यम से देने के मुख्य चार प्रयोजन हैं–

1. अन्य विषयों के समक्ष लाना
2. अनियमितता और मनमौजीपन दूर करना
3. यथा संभव अधिक सुलभ बनाना
4. समाज में संगीतज्ञ को पुनः सम्मान दिलाना।''5

वर्तमान समय में कई संस्थानों द्वारा संगीत शिक्षा के क्षेत्र में कार्य हो रहे हैं, जिनमें संगीत के स्वतंत्र विश्वविद्यालय (इंदिरा कला विश्वविद्यालय (खैरागढ़), राजा मानसिंह तोमर विश्वविद्यालय (ग्वालियर) आदि), इंदिरा कला विश्वविद्यालय से संबद्ध संगीत संस्थाएँ, गुरु–शिष्य परंपरा पर आधारित शिक्षण संस्थान (श्रीराम भारतीय कला केंद्र (नई दिल्ली), संगीत रिसर्च अकादमी (कलकत्ता) आदि), संगीत संबंधी सरकारी संस्थाएँ (संगीत नाटक अकादमी (नई दिल्ली), उ.प्र. सांस्कृतिक केंद्र (पटियाला) आदि), भारतवर्ष के विभिन्न राज्यों में स्थापित संगीत अकादमी एवं संगीत संबंधी निजी संस्थाएँ भी अहम् भूमिका निभा रही हैं।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 के अंतर्गत कलाओं के संदर्भ में उठाए गए महत्वपूर्ण कदम :

राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 में भारतीय भाषाओं, तुलनात्मक साहित्य, सृजनात्मक लेखन, दर्शनशास्त्र आदि विभागों के साथ ही कला, संस्कृति एवं संगीत पर बात की

गई है, यहाँ हम संगीत कला को ही केंद्र में रखते हुए अपनी चर्चा को आगे बढ़ाएँगे। सर्वप्रथम, राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 में कलाओं के संदर्भ में महत्वपूर्ण बिंदु–

● सभी स्कूली स्तरों पर संगीत, कला और हस्तकौशल को बढ़ावा देना। उत्कृष्ट कलाकारों को विशिष्ट प्रशिक्षक के रूप में स्कूलों से जोड़ना।

● हर राज्य/जिले को प्रोत्साहित किया जाए कि वह 'बाल भवन' स्थापित करे जहाँ हर उम्र के बच्चे सप्ताह में एक या अधिक बार (उदाहरण के लिए सप्ताहांत में) जा सकें और कला, खेल और करियर संबंधी गतिविधियों में भागीदारी कर सकें। ऐसे बाल भवन जहाँ संभव हाईस्कूल कॉम्पलेक्स/क्लस्टर के हिस्से भी हो सकते हैं।

● कम संख्या वाले स्कूलों में शिक्षकों को अक्सर एक साथ कई कक्षाएँ पढ़ानी पड़ती हैं जिनमें ऐसे विषय भी शामिल हो जाते हैं जिनमें पहले से उनकी पृष्ठभूमि नहीं है जैसे कला, संगीत, खेल जैसे विषय कई बार सिखाए ही नहीं जाते हैं। इस चुनौती को राज्य/केंद्र शासित प्रदेशों की सरकारों द्वारा 2025 तक स्कूलों के समूह बनाने या उनकी संख्या को समुचित रूप देने के लिए नवीन प्रक्रिया अपनाकर समाधान किया जाए। इस तरह की प्रक्रिया के पीछे का उद्देश्य कला के संदर्भ में यह सुनिश्चित करना होगा कि हर स्कूल में कला, संगीत विज्ञान, खेल आदि सहित सभी विषयों को पढ़ाने के लिए पर्याप्त संख्या में परामर्शदाता मौजूद हों। कला, संगीत शिक्षा के शिक्षक के साझे उपयोग से कक्षा में वर्चुअल कक्षाएँ आयोजित करने के लिए ICT टूल्स के उपयोग सहित इन गतिविधियों का ज्यादा समावेश।

● राष्ट्रीय परीक्षा एजेंसी कला विषय में हर साल कम से कम दो बार विशिष्ट सामान्य विषय की परीक्षा लेने का काम करें।

● देश के विभिन्न उच्चतर शिक्षा संस्थानों में भाषा, साहित्य, संगीत, दर्शन, भारत विद्या, कला, नृत्य.....अन्य ऐसे विभागों को बहु–विषयक, भारतीय शिक्षा और वातावरण को प्रात्साहित करने के लिए विभिन्न विभागों को स्थापित और मजबूत किया जाए। इन विषयों में सभी स्नातक तथा उपाधि कार्यक्रमों में क्रेडिट दिया जाए।

● भारतीय भाषाओं, तुलनात्मक साहित्य, सृजनात्मक लेखन, संगीत कला, दर्शनशास्त्र आदि के सशक्त विभागों एवं कार्यक्रमों को देशभर में शुरू किया जाए और उन्हें विकसित किया जाए, साथ ही इन विषयों में (दोहरी डिग्री, चार वर्षीय बी.एड. सहित) डिग्री कोर्स विकसित किए जाएँ। ये विभाग एवं कार्यक्रम, विशेष रूप से उच्चतर योग्यता के भाषा शिक्षकों के एक बड़े कैडर को विकसित करने में मदद करेंगे, साथ ही साथ कला, संगीत, दर्शनशास्त्र एवं लेखन के शिक्षकों को भी तैयार करेंगे जिनकी देशभर में इस नीति को क्रियांवित करने हेतु तुरंत आवश्यकता होगी। NRF इन क्षेत्रों में गुणवत्तापूर्ण अनुसंधान हेतु वित्त मुहैया करवाऐं।

• स्थानीय संगीत, कला, भाषाओं एवं हस्तशिल्प को प्रोत्साहित करने के लिए तथा यह सुनिश्चित करने के लिए कि छात्र जहाँ अध्ययन कर रहे हैं वे वहाँ की संस्कृति एवं स्थानीय ज्ञान को जान सकें, उत्कृष्ट स्थानीय कलाकारों एवं कुशल व्यक्तियों को अतिथि शिक्षक के रूप में नियुक्त किया जाए। प्रत्येक उच्चतर शिक्षण संस्थान, प्रत्येक स्कूल और स्कूल कॉम्प्लेक्स को यह प्रयास करना होगा कि कलाकार वहीं निवास करें जिससे कि छात्र कला, सृजनात्मकता तथा क्षेत्र/देश की समद्धि को बेहतर रूप से जान सकें।

• स्थानीय मास्टर्स तथा/या उच्चतर शिक्षा व्यवस्था के अंर्तगत भारतीय भाषाओं, कला एवं संस्कृति के अध्ययन के लिए सभी आयु के लोगों के लिए छात्रवृत्ति की व्यवस्था की जाए।

• सभी भारतीय भाषाओं और उनसे संबंधित समृद्ध स्थानीय कला एवं संस्कृति का, वेब आधारित प्लेटफॉर्म/पोर्टल, विकीपीडिया के माध्यम से दस्तावेजीकरण किया जाए। देशभर से लोगों को इनमें योगदान देने के लिए आमंत्रित किया किया जाए।

• छात्रों द्वारा देश के विभिन्न हिस्सों में भ्रमण करने जैसी सरल गतिविधियों को शामिल किया जाए जिससे न केवल पर्यटन को बढ़ावा मिलेगा, बल्कि भारत के विभिन्न हिस्सों की विविधता, संस्कृति, परंपराओं और ज्ञान की समझ एवं सराहना होगी। 'एक भारत श्रेष्ठ भारत' के तहत इस दिशा में देश के 100 पर्यटन स्थलों की पहचान की जा सकती है।

• अपनी कला एवं संस्कृति को संरक्षित करने और बढ़ावा देने के लिए विभिन्न भारतीय भाषाओं में उच्चतर गुणवत्ता वाली सामग्री विकसित करना, कलाकृतियों का संरक्षण करना, संग्रहालयों और विरासत या पर्यटन स्थलों को चलाने के लिए उच्चतर योग्यता प्राप्त व्यक्तियों का विकास करना जिससे पर्यटन उद्योग को भी मजबूती मिल सके।

• कला और विज्ञान के बीच, पाठ्यक्रम और पाठ्येत्तर गतिविधियों के बीच, व्यावसायिक और शैक्षणिक धाराओं, आदि के बीच कोई स्पष्ट अलगाव न हो, जिससे ज्ञान क्षेत्रों के बीच हानिकारक ऊँच–नीच और परस्पर दूरी एवं असंबद्धता को दूर किया जा सके।

• **सभी ज्ञान की एकता और अखंडता को सुनिश्चित करने के लिए एक बहु–विशयक दुनिया के लिए ज्ञान–विज्ञान,** सामाजिक विज्ञान, कला, मानविकी और खेल के बीच एक बहु–विषयक और समग्र शिक्षा का विकास करना है।

उपर्युक्त बिंदु राष्ट्रीय शिक्षा नीति, 2020 के अंतर्गत संगीत एवं अन्य कलाओं के संदर्भ में महत्वपूर्ण हैं। इस नीति के अंतर्गत स्थानीय कला एवं कलाकारों का शैक्षणिक स्तर पर कलाओं में हस्तक्षेप वाकई शिक्षा जगत में एक नई एवं सार्थक पहल है। इसमें

यह भी कहा गया कि विषय केंद्रित और प्रोजेक्ट–आधारित क्लब और सर्कल के अंतर्गत म्यूजिक परफॉमेंस सर्कल, पारंपरिक स्थानीय कला जैसे विषयों जहाँ स्थानीय विशेषज्ञता मौजूद है, में स्थानीय प्रतिष्ठित व्यक्तियों या विशेषज्ञों को 'विशेष प्रशिक्षक' के रूप में रखने के लिए प्रोत्साहित किया जाएगा। यदि स्थानीय कलाकारों का प्रशिक्षण संस्थाओं से सीधा जुड़ाव संभव हो सके तो हम अपनी धरोहर को बचाने में सफल हो सकेंगे क्योंकि कुछ कलाकारों के अभाव के कारण कई संगीत वाद्य एवं शैलियाँ हाशिए के कगार पर हैं जैसे 'नागस्वरम' वाद्य जो प्राचीन समय से मंदिरों से जुड़े हुए थे, वर्तमान में कलाकारों के अभाव के कारण लुप्त होने की कगार पर हैं। अर्थात स्थानीय कलाकारों का शैक्षणिक जगत से सीधे संपर्क के दौरान प्राचीन संगीत धरोहर को संरक्षित करने में भी सहयोग प्राप्त हो सकेगा एवं वर्तमान पीढ़ी भी प्राचीन एवं लोक संगीत परंपरा को जानेगी वहीं, गुमनाम स्थानीय कलाकारों को एक पहचान मिलेगी। दूसरी ओर, तकनीकी एवं आधुनिक भारतीय समाज में जहाँ विज्ञान, तकनीकी जैसी शिक्षाओं के वर्चस्व के कारण विद्यार्थी भारतीय कलाओं से अछूता सा रह जाता है, इस नीति में 'समग्र शिक्षा के विकास' पहल के माध्यम से विद्यार्थी भारतीय कलाओं को भी आत्मसात् कर सकेगा। इससे लाभ यह होगा कि विद्यार्थी भले ही कलाओं के क्षेत्र में आगे न बढ़े किंतु वह यह अवश्य सीख जाएगा कि उसे कौन सा संगीत सुनना है एवं कौन सी कला उसके मानसिक एवं व्यवहारिक जीवन के लिए महत्वपूर्ण है।

संगीतमय सुर के माध्यम से यदि संदेश प्रेषित किया जाए तो समाज अनचाहे ही अच्छे गुणों की ओर अग्रसर हो जाता है। अर्थात भाषा शिक्षण में संगीत सामंजस्य अवश्य ही नैतिक समाज के निर्माण में सहायक होगा। नई शिक्षा नीति के अंतर्गत भाषाओं के शिक्षण के दौरान काव्य एवं संगीत के सामंजस्य की बात इन्हीं अर्थों में कही गई है–''सभी भाषाओं के शिक्षण को नवीन और अनुभवात्मक विधियों के माध्यम से समृद्ध किया जाएगा, जिससे सरलीकरण और ऐप के माध्यम से, भाषाओं के सांस्कृतिक पहलुओं–जैसे कि फिल्म, थियेटर, कथावाचन, काव्य और संगीत को जोड़ते हुए, और विभिन्न प्रासंगिक विषयों के साथ और वास्तविक जीवन के अनुभवों के साथ संबंधों को दिखाते हुए इन्हें सिखाया जाएगा। इस प्रकार, भाषाओं का शिक्षण भी अनुभवात्मक–अधिगम शिक्षणशास्त्र पर आधारित होगा।''[6] इस प्रयास से भारतीय भाषाओं का संवर्द्धन एवं संरक्षण किया जा सकेगा क्योंकि वर्तमान में ऐसी कई जनजातीय भाषाएँ एवं बोलियाँ हैं जो लुप्त हो चुकी हैं और कई लुप्त होने की कगार पर हैं।

आरंभ से ही भारतीय समाज में संगीत 'ब्रह्मानंद' को अनुभूत कराने का साधन माना गया एवं भारतीय समाज में संगीत की एक सुदृढ़ शिक्षा प्रणाली विद्यमान रही है। किंतु, बाहरी शक्तियों के भारत में प्रवेश करने के उपरांत संगीत शिक्षा में कहीं न कहीं अवरोध उत्पन्न हुआ। राष्ट्रीय शिक्षा नीति में परिचय वाले भाग में भारतीय

संस्कृति को बढ़ावा देने के संदर्भ में लिखा है–''भारतीय संस्कृति और दर्शन का विश्व में बड़ा प्रभाव रहा है। वैश्विक महत्व की इस समृद्ध विरासत को आने वाली पीढ़ियों के लिए न सिर्फ सहेजकर संरक्षित रखने की जरूरत है बल्कि हमारी शिक्षा व्यवस्था द्वारा उस पर शोध कार्य होने चाहिए, उसे और समृद्ध किया जाना चाहिए और नए–नए उपयोग भी सोचे जाने चाहिए।''[7] राष्ट्रीय शिक्षा नीति शिक्षा प्रणाली को समग्र, लचीला, बहु–विषयक और 21वीं सदी की आवश्यकताओं के अनुरूप बनाने पर लक्षित है। नीति की मंशा कई मायनों में आदर्श प्रतीत होती है, लेकिन निश्चय ही इसकी सफलता इसके कुशल कार्यान्वयन पर निर्भर होगी। इससे अपेक्षा है कि यह संगीतकला एवं अन्य कलाओं के संदर्भ में संस्थानों को 'समस्या की तलाश' की बजाय 'समस्याओं के समाधान' पर कार्य करने के लिए प्रेरित कर शिक्षा के अन्य सभी क्षेत्रों के साथ–साथ संगीत एवं अन्य कलाओं के परिदृश्य को रूपांतरित करने में योगदान दे। वर्तमान समय में देश में एक हजार से अधिक उच्च शिक्षण संस्थान मौजूद हैं जिनमें राष्ट्रीय महत्व के 150 से अधिक संस्थान शामिल हैं। किंतु, विशेषकर सार्वजनिक संस्थानों में कमजोर बुनियादी ढाँचा नीति के लिए एक चुनौती है। राष्ट्रीय शिक्षा नीति, 2020 में कलाओं के उदार नजरिए के संदर्भ में वर्णित–''आधुनिक युग में जिसे 'लिबरल आर्ट्स' (कलाओं का एक उदार नजरिया) कहा जाता है, को पुनः भारतीय शिक्षा में शामिल करना ही होगा, चूँकि यह वही शिक्षा है जिसकी 21वीं शताब्दी में आवश्यकता होगी।''[8] कलाओं के प्रति नीति में उल्लिखित यह बिंदु अवश्य ही पारंपरिक संस्कृति–कलाओं एवं वर्तमान समाज को सुदृढ़ता प्रदान करेगा।

संदर्भ :

1. राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020, मानव संसाधन विकास मंत्रालय, भारत सरकार, पृ.–86
2. भारतीय संगीत का इतिहास, डॉ. शरच्चंद्र श्रीधर परांजपे, चौखंबा प्रकाशन, वाराणसी, संस्करण–2010, पृ.–35
3. भारतीय संगीत (शिक्षा और उद्देश्य), डॉ. पूनम दत्ता, राज पब्लिकेशन, दिल्ली प्रथम संस्करण 2005, पृ.–46–47
4. संगीत निबंध संग्रह (सं. प्रो. हरिश्चंद्र श्रीवास्तव), निबंधः पाठ्यक्रम में संगीत की आवश्यकता–श्री हरिश्चंद्र श्रीवास्तव, संगीत सदन प्रकाशन, इलाहाबाद, पृ.–85
5. संगीत शिक्षण के विविध आयाम–डॉ. कुमार ऋषितोष, कनिष्क पबिल्शर्स, दिल्ली, प्रथम संस्करण 2010, पृ.–113
6. राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020, मानव संसाधन विकास मंत्रालय, भारत सरकार, पृ.–22
7. वही, परिचय, पृ.–5
   वही, पृ.–58

❑❑❑

भाषा, शिक्षण और बच्चों के अनुभव

गुंजन शर्मा

अजय कुमार सिंह

स्कूलों में बच्चों को हम जिन विधियों का इस्तेमाल कर भाषा पढ़ाते हैं इसमें मुख्य तौर पर हमारा ध्यान यांत्रिक ढंग से लिपि सिखा देने मात्र पर होता है जिससे हमारा प्रयास यह होता है कि बच्चे अक्षरों को पहचान लें और उनसे मिलकर बने हुए शब्दों को पढ़ लें। पर समस्या यह है कि बच्चों में समझने का हुनर विकसित नहीं हो पाता है। हाल के दिनों में इस सवाल पर काफी चर्चा रही कि बच्चों के भाषाई कौशल का विकास कैसे किया जाए। यशपाल समिति (1993) की रिपोर्ट 'शिक्षा बिना बोझ' ने कक्षा में अर्थहीन और आनंदहीन शिक्षण को उजागर किया और 'बगैर समझे पढ़ने' के सवाल को पुरजोर तरीके से उठाया। इस रिपोर्ट की समझ को आगे बढ़ाने का काम राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा 2005 (राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद, 2005) ने किया और इस पर जोर दिया कि कक्षा की प्रक्रिया समझ पर आधारित हो। हालाँकि कई रिपोर्ट बताती हैं कि (प्रथम, 2023; राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद, 2014) बच्चों के पढ़ने के स्तर और कौशल की कई समस्याएँ बरकरार रहीं। 2014 में सर्वशिक्षा अभियान के तहत पढ़े भारत और बढ़े भारत की शुरुआत की गई। इन अनुभवों को समेटते हुए 2020 में नई शिक्षा नीति ने बच्चों के भाषाई कौशल के विकास पर खासा बल दिया। इस नीति (2020) का मूलभूत सिद्धांत कहता है कि "बुनियादी साक्षरता और संख्याज्ञान को सर्वाधिक प्राथमिकता देना – जिससे सभी बच्चे कक्षा 3 तक साक्षरता और संख्याज्ञान जैसे सीखने के मूलभूत कौशलों को हासिल कर सकें"। (पृ 3)। यह नीति बच्चों के आरंभिक अनुभवों को उनके भाषा सीखने की प्रक्रिया का अभिन्न हिस्सा मानती है। यह नीति इस मूलभूत समस्या को दर्ज़ करती है कि "वर्तमान समय में, विशेष रूप से सामाजिक–आर्थिक रूप से वंचित पृष्ठभूमि के करोड़ों बच्चों के लिए गुणवत्तापूर्ण प्रारंभिक बाल्यावस्था देखभाल और शिक्षा उपलब्ध नहीं है" (पृ 9)। इसके लिए यह नीति ईसीसीई (अर्ली चाइल्ड केयर एंड एजुकेशन या पूर्व बाल्यावस्था देखभाल एवं शिक्षा) की संरचना मजबूत करने की बात करती है – हालाँकि हमें इस स्तर पर शिक्षकों की तैयारी और

पढ़ाने की विधियों पर ध्यान देना होगा। गौरतलब है कि इन शिक्षकों की तैयारी, उच्च प्राथमिक या माध्यमिक स्तर के शिक्षकों से अलग होगी। भाषा सीखने और सिखाने के क्रम में इन शिक्षकों को बच्चों के अनुभवों के महत्व और उसके शिक्षण शास्त्रीय प्रयोग को समझना होगा। राष्ट्रीय शिक्षा नीति (2020) के बाद निपुण भारत मिशन (2021) और फाउंडेशनल स्टेज (पूर्व स्कूल से कक्षा 2) के लिए राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा (राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद, 2022) ने प्रारंभिक बचपन की शिक्षा का एक नया शैक्षणिक ढाँचा पेश किया है। इसके तहत स्कूली शिक्षा के पहले दो साल (कक्षा 1– 2) और प्री–प्राइमरी चरण को ''आधारभूत चरण" (3–8 वर्ष आयु समूह) बनाने के लिए एकीकृत किया गया है।

नई शिक्षा नीति (2020) यह मानती है कि भाषा ज्ञान की शुरुआत बच्चों के स्कूल आने से काफी पहले हो शुरू हो जाती है। इस नीति का यह मानना है कि बच्चों के मस्तिष्क का 85 प्रतिशत विकास 6 वर्ष की अवस्था से पूर्व ही हो जाता है। बच्चों के भाषाई विकास को सुनिश्चित करने के लिए उनके आरंभिक 6 वर्षों को महत्वपूर्ण माना जाता है। हालाँकि उम्र के उस संवेदनशील दौर में भारत की एक बड़ी आबादी के लिए प्री–स्कूल या ऐसी ही कोई और सुविधा उपलब्ध नहीं होती। इस नीति का मानना है कि सामाजिक, आर्थिक रूप से वंचित पृष्ठभूमि के करोड़ों बच्चों के लिए गुणवत्ता पूर्ण प्रारंभिक बाल्यावस्था देखभाल और शिक्षा उपलब्ध नहीं है इसलिए ई.सी.सी.ई में निवेश करने की जरूरत है और इसकी संरचना को मजबूत करने की जरूरत है। इसके लिए यह नीति ई.सी.सी.ई शिक्षकों के शुरुआती कैडर को तैयार करने के लिए आँगनबाड़ी कार्यकर्ताओं और शिक्षकों को राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद द्वारा विकसित पाठ्यक्रम या शिक्षण–शास्त्रीय रूपरेखा के अनुसार एक व्यवस्थित तरीके से प्रशिक्षण देने की बात करती है (पृ 10)।

इसकी शुरुआत हमें इन सवालों की खोज से करनी होगी जैसेः बच्चे क्या पढ़ना चाहते हैं? या उनके पढ़ने की रुचि क्या है? इसे जानने के लिए यह जानना जरूरी है कि बच्चों की भाषाई दुनिया कैसी होती है। 2005 के बाद (राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद 2005) इस बात पर सहमति बनी कि शिक्षक को बच्चों के परिवेश और स्कूल में होने वाले अनुभव को अपनी कार्य योजना का हिस्सा बनाना चाहिए। इसके लिए यह जानना जरूरी है कि बच्चे 'अनुभव' कैसे करते हैं और उनको व्यक्त कैसे करते हैं? बच्चों की दुनिया का भाषाई ताना बाना कैसा होता है? वे बचपन की स्थितियों में किस तरह के अनुभव होते हैं और उन अनुभवों का बच्चों की भाषा पर क्या असर होता है? उपरोक्त समस्या के मद्देनजर यह जरूरी है कि जब हम ई.सी.सी.ई (पूर्व बाल्यावस्था देखभाल एवं शिक्षा) शिक्षकों के शुरुआती कैडर को तैयार करने के लिए पाठ्यक्रम बना रहे हों तो बच्चों के अनुभव को उस पाठ्यक्रम में विशेष रूप से शामिल किया जाए।

बच्चों की दुनिया और उनके अनुभवों को समझने के लिए दो तरह के ब्यौरे मिलते हैं, जो हमें बचपन और भाषा के संबंध को समझने में मदद करते हैं। पहला ब्यौरा साहित्य द्वारा रचे गए बचपन है– जैसे चार्ल्स डिकेंस का ओलिवर ट्विस्ट (1838), या मुंशी प्रेमचंद का ईदगाह (2009), गोर्की का मेरा बचपन (1914), या फिर दलित लेखकों की लिखी गई आत्मकथाएँ (वाल्मीकि, 2007; मोरे, 2001; पवार, 1990)। दूसरा – शिक्षाशास्त्रियों द्वारा शिक्षा प्रयास के दौरान हुए अनुभव का ब्यौरा – जैसे समरहिल (नील, 1960) और दिवास्वप्न (गीजुभाई , 1988) इत्यादि। गोर्की (2012) अपनी पुस्तक, जीवन की राहों में, यह जिक्र करते हैं कि जब वे पहली बार हूण शब्द से रूबरू हुए तब उन्हें इसे समझने में कितनी कठिनाई करनी पड़ी और अंततः उन्होंने इसे कैसे सीखा। इस तरह के ब्यौरों से हम ना सिर्फ बचपन के अलग–अलग भाव को समझ पाते हैं बल्कि बच्चों की दुनिया में होने वाले परिवर्तनों को भी रेखांकित कर पाते हैं। कई बार यह कहानी लेखकों की कल्पना होती हैं और कई बार उनके अपने बचपन की पुनर्रचना।

जैसा कि हम जानते हैं कि सार्थक तौर पर पढ़ने और लिखने की शुरुआत उम्र के आरंभिक दौर में ही हो जाती है। साहित्यकारों और शिक्षाशास्त्रियों के लेख हमें यह बताते हैं कि बचपन के अनुभव को पढ़ने–पढ़ाने की प्रक्रिया में कैसे शामिल किया जाए जिन अनुभवों को हम शिक्षा के प्रचलन में स्वाभाविक तौर पर नजरअंदाज कर देते हैं। ये अनुभव शिक्षाशास्त्रियों की नजर में काफी महत्वपूर्ण होते हैं।

बचपन का दूसरा ब्यौरा मनोवैज्ञानिकों द्वारा प्रस्तुत किया गया है – जैसे पियाजे (1926, 1928) के संज्ञानात्मक विकास का सिद्धांत। मनोवैज्ञानिकों ने बचपन की जिस समझ को प्रस्तुत किया उसे शिक्षा में ज्यादा महत्व मिला। पर इन सिद्धांतों की भी अपनी सीमाएँ हैं। यह सिद्धांत बचपन की एक सार्वभौमिक समझ को प्रस्तुत करते हैं बावजूद इसके कि दुनिया में बच्चों के अलग अलग अनुभव होते हैं। दरअसल पियाजे (1928) के सिद्धांत विज्ञान–सापेक्ष तथ्यों को सच मानते हैं और बच्चा विज्ञान सापेक्ष तथ्यों में कोई गड़बड़ी करे या न करे तो, इस आधार पर उसके संज्ञानात्मक विकास को स्तरबद्ध किया जाता है। अगर बच्चा 'विज्ञान सापेक्ष तार्किक' नहीं है तो उसके उत्तर को गलत मान लिया जाता है। पियाजे की यह व्याख्या विज्ञान व गणित में मददगार हो सकती है लेकिन आरंभिक साक्षरता, भाषा और इसकी पाठ्य सामग्री की रचना को लेकर इस सिद्धांत की अपनी सीमाएँ हैं।

वायगोत्स्की (1978) ने इस विचार को काफी मजबूती के साथ सामने रखा कि साक्षरता एक सामाजिक प्रक्रिया है, बच्चे स्कूल जाने से पहले अपने समाज के माध्यम से वह कई प्रकार के शब्दों वाक्य विन्यास और भाषा योजना से परिचित हो जाते हैं। बच्चे भाषा की रचना कैसे करेंगे और शब्दों के किस मायने को अपनी भाषा में शामिल करेंगे इस पर निर्भर करता है कि उनकी पृष्ठभूमि क्या है। इसलिए यह जरूरी है कि

हम बच्चों के सामाजिक अनुभव व रोजमर्रा के अनुभव को अपनी शैक्षिक योजना में शामिल करें। इन स्थितियों में यह सुनिश्चित करने की आवश्यकता है कि विभिन्न प्रकार के अनुभव जो बच्चों के पढ़ने और लिखने के प्राकृतिक तरीकों का समर्थन करते हैं, वे कक्षाओं के अंदर उपलब्ध हों या शिक्षक उन अनुभवों के महत्व को समझते हुए बच्चों से संवाद करे। हाल के अध्ययनों (जयराम, 2012, मेनन 2015) से पता चला है कि घर और समुदाय आधारित साक्षरता और भाषा प्रथाओं और स्कूल आधारित प्रथाओं के बीच मेल जितना करीब होगा; इस बात की अधिक संभावना है कि बच्चे अर्थपूर्ण पढ़ने और लिखने के लिए मजबूत नींव तैयार करेंगे। दो से चार वर्ष के बच्चों में भी भाषा व संप्रेषण की अद्‌भुत समझ होती है तथा वे संप्रेषण की जटिल और समृद्ध व्यवस्था का प्रयोग करते हैं (चामस्की, 2000) । वे जिस तरह के संप्रेषण का इस्तेमाल करते हैं वह तकनीकी दृष्टिकोण से काफी उन्नत है। वयस्कों की तरह बच्चों के लिए भी भाषा केवल संप्रेषण का साधन नहीं है बल्कि एक माध्यम भी है जिसके जरिए वह दुनिया के विभिन्न सूचनाओं तक पहुँचते हैं। भाषा एक ऐसा औजार है जो बच्चों को उनके आसपास के वातावरण और परिवेश की समझ की व्यवस्था उनके मस्तिष्क के भीतर करता है।

आरंभिक वर्षों में पढ़ने वाले शिक्षकों के लिए यह जरूरी है कि वे इस तथ्य की तह में जाएँ कि 'भाषा बच्चों के लिए केवल दूसरों से बात करने का साधन नहीं होती बल्कि इसके जरिए वे अपने आप से भी बात करते हैं या यूँ कहें कि बच्चे अपनी कल्पनाओं को संजोने के लिए भी भाषा का इस्तेमाल करते हैं। इसे इस उदाहरण में देखते हैं –

उद्‌धरण 1: लगभग चार वर्षीय अमित अपने पिता के साथ बस में सफर कर रहा है। वह अपने पिता की गोद में बैठा है। वह कभी खिड़की से बाहर देखता है, कभी अपने पिता से कुछ बात करता है। पिता को खास दिलचस्पी न लेते देख वह कहीं और ध्यान लगाने का प्रयास करता है। कभी वह अपने पैर से सीट को छूता है, कभी अपना जूता छेड़ता है और कभी सीट पर लगे पेचों को खेलने का प्रयास करता है। अचानक उसका ध्यान साथ बैठे युवक के हाथ में रखे चाबी के गुच्छे पर आ जाता है। युवक उस गुच्छे को धीरे–धीरे हिला रहा था। आगे झुककर उस गुच्छे को छूने का प्रयास करता हैं, युवक उसके हाथ में वह गुच्छा दे देता है। अमित बिना कुछ बोले, गुच्छे को एक–एक देखता हुआ उसे लेकर गौर से देखने लगता है। कुछ समय बाद उसके पिता उसके हाथ से गुच्छा लेकर युवक को लौटा देते हैं और अगले स्टॉप पर उतर जाते हैं। घर पहुँचने पर अमित की माँ उससे पूछती है आज तो घूमकर आए हो! क्या–क्या किया? इसके उत्तर में अमित बताता है बस में एक बहुत पुराना दोस्त मिल गया था, तो खेल रहा था। यह सुनकर माता–पिता हँसने लगते हैं और उन्हें हँसता देख अमित भी ठहाके लगाकर हँसने लगता है।

बच्चे जिस भाषा का इस्तेमाल करते हैं और जिस तरह से शब्दों का उच्चारण करते हैं उसमें वयस्कों की दखलअंदाजी बार–बार होती है, वयस्क चाहते हैं कि बच्चे उनकी भाषा तकनीक से तालमेल बिठा लें। जैसे, इस उदाहरण को लेते हैं। चार वर्षीय नेहा अपने 22 वर्षीय ममेरे भाई, आदित्य से टेलीविजन का चैनल बदलने को लेकर एक विवाद में उलझी हुई है। वह बहुत गुस्से में है, जबकि आदित्य के लिए वह विवाद एक मनोरंजन सा है।

उद्धरण 2:

नेहाः भैया, देख ले चैनल बदल दे।

आदित्यः नहीं बदला तो?

नेहाः मैं तुझसे बात नहीं करूंगी।

आदित्यः ये तो अच्छा ही है, सारा दिन बोलती रहती है।

नेहाः तू झूठ बोलता है, तू गंदा है।

आदित्यः नहीं, मैं तो अच्छा हूँ।

नेहाः तू मुझे मारता है।

आदित्यः देखा, फिर झूठ बोली।

नेहाः मैं तुझको मारूँगी, बड़ी जोर से।

यह सुनकर नेहा की नानी विवाद को रोककर बीच में बोलती हैः

नानीः नेहा, गलत बात; बड़ों से ऐसे नहीं बोलते।

नेहाः ये मुझे तंग कर रहा है।

नानीः नहीं, वह तो तुझे बहुत प्यार करता है। बस खेल रहा है।ऐसे नहीं लड़ते।

नेहाः तो फिर वो हमारी बॉल भी नहीं देता।

आदित्यः बॉल? कौन–सी बॉल? ये बॉल कहाँ से आ गई?

विवाद फिर शुरू हो जाता है और नानी नेहा और आदित्य को डाँटकर चुप कराती है।

आदित्य बॉल न देकर भूल गया, नेहा को याद है।

सामाजिक स्थिति के संदर्भ को ध्यान में रखते हुए तकनीक का सवाल एक निहायत पेचीदा सवाल है। भाषा–तकनीक की आधारभूत समझ क्या है और इसे हम किस संचरना के मद्देनजर समझना चाहते हैं यह सबकुछ इस बात पर भी निर्भर करता है कि अन्ततः हमारा इरादा क्या है? यहाँ 'भाषा तकनीक' शब्द का प्रयोग एक व्यापक मायने में किया गया है। दलित लेखकों की आत्मकथाओं के उदाहरण को लेते हैं। शोध और मानकीकृत ज्ञान के प्रचलित दायरे से लंबे समय तक बाहर रहने के बाद अब अंततः आत्मकथा/आत्मकथ्य जैसी परंपराओं के जरिए नए ज्ञान और ज्ञान शास्त्र को रचने की बात को बल मिला है। इस मायने में बीसवीं सदी के अंतिम वर्ष महत्वपूर्ण रहे कि इन वर्षों में दलितों को केंद्र में रखकर कई महत्वपूर्ण विमर्श हुए। यहाँ इन

आत्मकथाओं के एक विशेष दृष्टि से पढ़ने की कोशिश की गई है। उस दृष्टि के केंद्र में एक मुख्य सवाल है, एक दलित बच्चा कैसे–कैसे अनुभवों से गुजरता है,एक दलित बच्चे को समाज कैसे देखता है और एक दलित बच्चे को अपने पारिवारिक तथा सांस्कृतिक परिवेश से किस प्रकार टकराना पड़ता है। उपरोक्त सवालों को केंद्र में रखकर जब दलित आत्मकथाओं का पठन किया गया हो तो किसी अन्य विश्लेषण की जरूरत महसूस नहीं हुई। इसलिए यहाँ डेराडंगार (मोरे, 2001) के एक अंश को ज्यों का त्यों दिया जा रहा है।

उद्धरण 3: दूसरे दिन सुबह मैं सलगरे के प्राथमिक स्कूल में गया। स्कूल में पहुँचते ही सभी बच्चे मेरी ओर किसी सर्कस के विदूषक के समान देखने लगे। उनका इस तरह देखना भी सही था क्योंकि कुल मिलाकर मेरा हुलिया ही देखने लायक था।एक छोटी पैंट थी और वह भी पुट्ठों पर फटी हुई। बेढंगे बाल भेड़ों के बालों के समान काफी बढ़े हुए थे। .....मुझे देखते ही मास्टर जोर से चिल्लाए – ''ऐ छोरे .., किसका है तू––––।'' वह आवाज सुनकर मैं डर गया। जैसे–तैसे डरते हुए उत्तर दिया – ''मैं जोशी का हूँ––––।'' तब मास्टर फिर से गुस्से में बोले – ''यहाँ क्यों आया हैं–––?'' मैंने रोई–सी आवाज में उत्तर दिया – ''इस्कूल में पढ़ने के लिए आया हूँ। मेरे बाप ने मुझे इस्कूल जाने को कहा इसलिए।'' मास्टर नम्रता से बोले – ''तू भिखारी का बेटा–––तेरा नाम कैसे दाखिल करें स्कूल में––––जा––––तेरे बाप को बोल––––तुझे स्कूल में प्रवेश नहीं दिया जा सकता। जा––––भाग––––।'' मुझे बहुत बुरा लगा। मैं बड़ी खुशी से स्कूल तक आया था। मैंने रोना शुरू किया। मास्टरजी को मुझपर तरस आया। वे बोले– ''यह देख––––आज आया है तो रहने दे––––उस आँगन में बैठ––––तुझे जो सुनना है सुन–––और स्कूल छूटने के बाद जा––––।'' मैं स्कूल के बाहर आँगन में बैठ गया। गुरुजी वहाँ से काफी दूर थे। वे जो कुछ सिखा रहे थे वह मुझे ढंग से सुनाई भी नहीं देता था।

दूसरे दिन मैं स्कूल गया। वहाँ पर आँगन में ही बैठा रहा। गुरुजी पढ़ाते थे। मैं कान खोलकर सुनता था। सात–आठ दिन ऐसे ही निकल गए। मैं हर दिन स्कूल आता और आँगन में बैठता था। अब मुझे ग, म, भ, न आता था किंतु बदनसीब को अच्छा साथ कब और कैसे मिले? अगले हफ्ते में हमारा डेराडंगर दूसरे गाँव निकल पड़ा। (मोरे, 2001; पृ. 16,17,18)

डेराडंगर के ये अंश वर्तमान व्यवस्था में छुपे हुए उन तत्वों को तो रेखांकित करते ही हैं जो कि दलित बच्चों को स्कूली शिक्षा से बहिष्कृत करती है इसके साथ ही ये दलित बच्चों की दुनिया और बहिष्करण के एक इतिहास का भी बयान करते है।

उद्धरण 4: पूर्वी उत्तर प्रदेश और पश्चिमी बिहार में बच्चे गली–मुहल्लों में 'बाघ–बकरी' का खेल खेलते हैं। इस पूरी प्रक्रिया में जहाँ बाघ बकरियों को मारता

है, वहीं बकरियाँ बाघ को घेरने का प्रयास करती हैं। यह खेल एक विशेष प्रकार के मनोरंजन से जुड़ता है। इसके समक्ष अगर हम बहुचर्चित वीडियो–गेम की तरफ देखें तो पता चलता हैं कि वहाँ भी बच्चे इसी किस्म के मनोरंजन कर रहे होते हैं। फर्क महज इतना है कि वीडियो गेम के जरिए वे जहाँ एक वैश्वीकृत समुदाय से जुड़ रहे होते हैं। वही बाघ–बकरी अपेक्षाकृत छोटी जीवन–शैली के संदर्भ में संप्रेषित होती है। यहाँ पर दोनों ही खेल/तकनीकों और उसमें प्रयोग की जाने वाली भाषा का महत्व वह दुनिया तय कर देती हैं, जिनके परिप्रेक्ष्य में ये खेल रचे–बुने गए हैं।

संदर्भ बिंदुओं के चुनाव का मामला सिर्फ पाठ की सामाजिक पृष्ठभूमि से ही नहीं जुड़ता बल्कि, वह उससे कहीं ज्यादा, कहीं इस बात से भी लगाव रखता है कि उस पाठ का इस्तेमाल कौन से उम्र के लोग कर रहे हैं।

उद्धरण 5: चार वर्षीय उदित अपनी तीस वर्षीय मौसी के साथ दिल्ली मेट्रो में सफर कर रहा है। बैठने की जगह मिलने पर भी वह बैठने के बजाए यहाँ–वहाँ घूमना और मेट्रो में लगे पोल को पकड़कर गोल–गोल घूमना/झूलना चाहता है। एक स्टेशन पर अचानक मैट्रो के भर जाने से वह थोड़ा–सा घबरा जाता है और मौसी के समीप चला जाता है। जब वह लोगों से घिर जाता है तो वह उन्हें धकेलकर अपने लिए जगह बनाने का प्रयास करता है। लोग ऐसा करने पर उसे मुस्कुराकर देखते हैं। उसकी मौसी, उसे ऐसा करते हुए देख, उसका हाथ थामकर उसे मेट्रो में बार–बार दोहराई जा रही स्वचालित उद्घोषणा सुनने को कहती है। कई सूचनाओं में से एक यह भी है – मेट्रो में चढ़ते व उतरते समय सहयात्रियों को धक्का न दें। उदित का ध्यान अपने आप ही इस सूचना पर टिक जाता है और यह सुनकर उसके चेहरे पर ऐसा भाव आता है मानो उसे कोई नई बात पता चली हो। सुनिश्चित करने के लिए वह अपनी मौसी से पूछता है। यहाँ धक्का नहीं देना?

मौसीः नहीं! तुमने अभी सुना है ना?

उदितः पर मैंने तो धक्का दे दिया!

मौसीः कोई बात नहीं, अब नहीं देना।

उदितः बाहर जाकर धक्का दे सकते हैं?

मौसीः नहीं।

उदितः अपने घर जाकर ?

आस–पास खड़े लोग यह सुनकर हँसने लगते हैं और उदित का यह प्रश्न बिना उत्तर के ही रह जाता है। यह सवाल उदित को परेशान कर रहा होगा कि क्यों, केवल मेट्रो में धक्का नहीं देना चाहिए।

उद्धरण 6: रोहित पाँच वर्ष का है। वह दोपहर में घर से बाहर खेलने जाने की जिद पकड़े हुए है। उसकी माँ कहानी सुनाने और बातें करने का 'प्रलोभन' देकर उसे रोकती है और कुछ बातें समझाने का प्रयास करती है

माँः रोहित, तुम अच्छे बच्चे हो ना?

रोहितः हाँ मैं अच्छा बच्चा हूँ।

माँः लेकिन अच्छे बच्चे तो जिद नहीं करते, बात मानते हैं।

रोहितः मैं मानता हूँ सारी बात।

माँः वैसे अच्छे बच्चे शरारत भी नहीं करते अकेले छत पर नहीं जाते, दीवार पर नहीं लिखते, बड़ी बहन को मारते नहीं, न ही बिजली के स्विच में अँगुली देते।

रोहितः मैं तो नहीं करता।

माँः अच्छा? चलो बताओ और क्या–क्या नहीं करते?

रोहितः सीढ़ी के नीचे बैठ के माचिस नहीं जलाते, चुपके–चुपके गैस नहीं जलाते, बाल्टी पे चढ़ के गीजर नहीं छेड़ते।

माँ यह सुनकर हैरान व चिंतित हो जाती है।

उद्धरण 7ः तनु और मनु चचेरी बहनें हैं जिनकी स्कूल जाने की आयु निकट है। घर के वयस्क यह प्रयास कर रहे हैं कि उन दोनों का सोना–खाना–पीना एक समय तालिका में 'बँध' जाए जिससे उन्हें 'स्कूल के अनुसार ढलने' में दिक्कत न हो। तनु–मनु का ज्यादातर समय एक दूसरे के साथ खेलने में व्यतीत होता है। सुबह उठते ही वह एक–दूसरे को खोजती हैं और 'खेल' में मग्न हो जाती हैं। इस प्रक्रिया में ऐसा प्रतीत होता है मानों बाकी सबकुछ उनके लिए गैर–जरूरी हो। 'खेलते' समय उनके भाव व बातें सहज प्रतीत नहीं होते वह इस तरह से किसी 'खेल' में जुटी होती हैं जैसे किसी बड़े प्रोजेक्ट के एक हिस्से पर काम कर रही हों। चर्चा करना चीजें जुटाना,एक–दूसरे को कुछ समझाना, 'प्लान' बनाना, कुछ इच्छानुसार न होने पर उसे दोबारा करना, बहस करना, बड़ों की मदद लेना, टी.वी. व कहानियों से नकल करना और भूख–प्यास व थकान का आभास न होना या महत्वपूर्ण न मानना उनके इस 'खेल' का हिस्सा हैं। एक खास समय पर जब घर का कोई वयस्क उन्हें रोककर उन्हें खाने–पीने या सोने को कहता है तो वह और खेलने की जिद करती हैं। कभी–कभी तो वह इसे भी लुका–छिपी का 'खेल' बना देती हैं। 'भूख नहीं लगी है और थकान न होने की बात कहकर और समय लेना चाहती हैं। कई बार रोती हैं। घर के वयस्कों को कई बार उन्हें डाँटकर खाना–खिलाना व सुलाना पड़ता है। इस 'प्रतिरोध' को घर के वयस्क रोज़ की एक 'समस्या' मानते हैं और स्कूल शुरू होने से पहले इसका 'निवारण' करना चाहते हैं।

उपरोक्त उदाहरण बच्चों के मानकों, रुझानों और योजनाओं की एक छोटी बानगी है यह दुनिया बहुत बड़ी है– जिसे लिखित अक्षरों और शब्दों की दुनिया में शामिल किया जाना बाकी है। बच्चों की शिक्षा के संदर्भ में जब हम आरंभिक साक्षरता की बात करते हैं तब इस बात का ख़ासा महत्व हो जाता है कि हम इसके लिए किस तरह के तरीके या तकनीक का इस्तेमाल कर रहे हैं। भाषा की बात करते समय हमें

यह ध्यान रखना होगा कि यह एक ऐसी सामाजिक प्रक्रिया है जिसका काफ़ी तेजी से पुनरुत्पादन और प्रकटीकरण होता है।

उपरोक्त उदाहरण को हम कुछ और विस्तार दें तो आंरभिक साक्षरता और उसके सामाजिक मायने से ज्यादा परिचित हो पाएँगे। शिक्षण तकनीक की सफलता इस बात पर निर्भर करती है कि वह समाज के कितने बड़े वर्ग के अनुभव पर अपनी पकड़ बना पाती है।

प्रारंभिक वर्षो में भाषा कौशल के विकास के लिए हमें बच्चों के अनुभव और उनकी कल्पनाओं को दर्ज़ करना होगा और इसके आधार पर शिक्षण पद्धति की रूपरेखा और योजना का निर्माण करना होगा। बच्चों की बोली जाने वाली भाषा और बच्चों की भाषाई दुनिया में एक फर्क है। बच्चों की मौखिक भाषा बच्चे के प्रारंभिक भाषा कौशल के विकास की नींव रखता है। यह समझ बच्चों के अनुभव, उनकी कल्पना, उनके तर्क प्रणाली और कक्षा के भीतर उनकी विभिन्नता को एक केंद्रीय स्थान देती है। हमें बच्चों के अनुभव को समझने के साथ उनको कक्षा में शामिल करना होगा , जिसका वे अनुभव करते हैं। इस प्रकार की शैक्षिक योजना कक्षा में बच्चों की सक्रिय भागीदारी को सुनिश्चित करती है। यह सहज तरीके से सीखने की प्रक्रियाओं के लिए जगह बनाकर भाषा की नींव बनाने का अवसर प्रदान करता है। अनुभव शब्द पहचान के साथ–साथ अर्थ बनाने की विभिन्न प्रक्रियाओं के लिए आवश्यक संसाधन उपलब्ध करते हैं।

इसका उद्देश्य कक्षा की प्रथाओं और बच्चों के घर और बाहर की दुनिया के अनुभवों के बीच एक सेतु बनाना है। शिक्षक के लिए यह जरूरी है कि अनुभव के एक सतत और सार्थक जुड़ाव पर ध्यान केंद्रित करें और इसके जरिए भाषा कौशल के निर्माण की योजना बनाएँ। छोटे बच्चों की कक्षा में पाठ का अनुभव करने के उद्देश्य के साथ पढ़ना और अनुभव को भाषा देना एक महत्वपूर्ण काम है।

इसमें यह समझ भी काम करती है कि भाषा और संप्रेषण का जो प्रचलित स्वरूप आज हम देखते हैं दरअसल वह इसका एक मानकीकृत रूप मात्र है। भाषा की यह प्रकृति है कि बच्चा अपने परिवेश की भाषा सीखेगा लेकिन हम उसे विभिन्न संस्थाओं के जरिए एक मानकीकृत भाषा सिखाने की कोशिश करते हैं। ये संस्थाएँ न सिर्फ भाषा के मानकीकरण को सिखाती हैं बल्कि, विभिन्न उपायों द्वारा मसलन परीक्षा, प्रमाण पत्र वितरण, इत्यादि के माध्यम से इस मानकीकरण के पक्ष में माहौल भी तैयार करती हैं, यह पूरी प्रक्रिया कितनी उपयुक्त हैं इसपर अलग से बात करनी होगी लेकिन, इतना तय है कि भाषा–शिक्षण की तमाम तकनीक अनुभव की बरअक्स के मानकीकरण मध्य रची बसी जाती हैं। मानकीकृत तकनीकों के अपने दबाव की वजह से मानकीकरण के इतर संप्रेषण की तमाम संभावनाएँ समाप्त हो जाती हैं या फिर इतनी क्षीण हो जाती हैं कि उनकी उपस्थिति नहीं के बराबर होती है। इसलिए प्रारंभिक और

आधारभूत स्तर पर भाषा शिक्षा के लिए हमें, शिक्षक को इस काम के लिए तैयार करना होगा कि वे बच्चों के अनुभव को न सिर्फ दर्ज़ करें बल्कि उसे अपनी शिक्षण योजना का हिस्सा भी बनाएँ।

संदर्भः

– गीजुभाई, ब, (1988), दिवास्वप्न, लखनऊः उत्तर प्रदेश बाल कल्याण समिति,
– गोर्की, मा, (1914/2016), का मेरा बचपन, (पॉकेट पेंगुइन द्वारा पुनर्प्रकाशित), दिल्ली :पेंगुइन,
– गोर्की, माँ, (1916/2012) जीवन की राहों में, दिल्ली : शुबदा प्रकाशन,
– जयराम, के, (2012), टूवार्ड; ए कांसेप्चुअल फ्रेमवर्क फॉर अर्ली लिटरेसी; अ बैलेंस;एंड सोशली सेंसेटिव अप्रोच, लैंग्वेज एंड लैंग्वेज टीचिंग 1(1), 32–39
– जीन प्याजे (1926), द लैंग्वेज एंड थॉट ऑफ द चाइल्ड, लंदनः रूटलेज एंड केगन पॉल,
– जीन प्याजे (1928), द चाइल्ड्स कॉन्सेप्शन ऑफ द वर्ल्ड, लंदनः रूटलेज और केगन पॉल
– डिकेंस, चार्ल्स,(1838) ओलिवर ट्विस्ट, दिल्ली : पेंगुइन क्लासिक्स,
– प्रथम (2023),ऐंयूअल स्टेटस ऑफ एजुकेशन रिपोर्ट, दिल्ली : प्रथम,
– पवार, डी, (1980), अछूत, दिल्ली : राधाकृष्ण प्रकाशन,
– मेनन एस, (2015) बाल साहित्य के जरिए प्रारंभिक भाषा एवं साक्षरता को सींचना, भाषा बोली, 2015, अंक 1 (पृ 3–9)
– मुंशी प्रेमचंद (2009), ईदगाह, दिल्लीः प्रभात प्रकाशन,
– मोरे, डी, (2001), डेरा डेंजर (ट्रांस अशोक चव्हाण), दिल्लीः राधाकृष्ण प्रकाशन,
– नील,ए,एस, (1960/2011), समरहील, भोपालः एकलव्य प्रकाशन
– नोम चॉम्स्की, दी (2000) आर्किटेक्चर ऑफ लैंग्वेज (निर्मलंगशु मुखर्जी, बिबुधेंद्र नारायण पटनायक और रमा कांत अग्निहोत्री द्वारा संपादित), नई दिल्ली, ऑक्सफोर्ड और न्यूयॉर्कः ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस,
– राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद (2005), राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा, दिल्लीः राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद, 2022,
– राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद (2014), नैशनल एचीवमेंटस सर्वे क्लास 3, दिल्लीः राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण,
– राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद (2022), राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा, फाउंडेशनल स्टेज, दिल्लीः राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद,

– शिक्षा मंत्रालय (2020), राष्ट्रीय शिक्षा नीति, दिल्ली : शिक्षा मंत्रालय,
– शिक्षा मंत्रालय (2021) निपुन भारत मिशन , दिल्ली : शिक्षा मंत्रालय,
– वायगोत्स्की, एल.एस. (1978), माइंड एण्ड सोसाइटी : द डेवलपमेंट ऑफ हायर मेंटल प्रोसेस.एम.कोल, वी.जॉन–स्टेनर, एस. स्क्रिब्रर और ई, सॉबरमैन (एड्स।)। कैम्ब्रिज,एमएः हार्वर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस,
– वाल्मीकि, ओ.पी. (2007), जूठन (ए, मुखर्जी, ट्रांस।), दिल्लीः साम्य,

❑❑❑

राष्ट्रभाषा के संदर्भ में काका कालेलकर के विचार

अमन कुमार

काका साहब कालेलकर राष्ट्रभाषा हिंदी के प्रचार–प्रसार में प्रमुख कड़ी हैं। काका कालेलकर विश्वभारती, शांतिनिकेतन में गुरु रवींद्रनाथ टैगोर की छत्रछाया में कार्यरत थे। महात्मा गांधी एक बार शांतिनिकेतन जाते हैं और काका कालेलकर की कार्यक्षमता से प्रभावित हो उन्हें अपना सान्निध्य प्रदान करते हैं। मराठी भाषी काका कालेलकर गांधीजी के मार्गदर्शन में गुजरात को अपनी कर्मस्थली बना लेते हैं। गुजरात विद्यापीठ के निर्माण में अपनी भूमिका का बखूबी निर्वहन करते हैं। काका साहब गुजराती शब्दकोश के निर्माण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं और धीरे–धीरे वे गुजराती साहित्य के प्रमुख रचनाकार बनकर उभरते हैं। इसके बाद राष्ट्रभाषा हिंदी के प्रचार–प्रसार के लिए पूरे देश को अपनी कर्मस्थली बना लेते हैं। प्रमुख रूप से दक्षिण भारत में किस प्रकार हिंदी की पहुँच बढ़े, जिससे राष्ट्रीय एकता को बल मिले, इसके लिए वे निरंतर प्रयासरत रहे। किसी भी ऐसे कार्य से, जिससे राष्ट्रीय एकता में बाधा पहुँचती हो, काका साहब उसका विरोध करते हैं।

काका कालेलकर का मानना था कि कोई भी भाषा देश की राष्ट्रभाषा तभी हो सकती है जब वह सहज, सरल और समावेशी हो। संस्कृत के उदाहरण से हम इस बात को समझ सकते हैं कि जब वह सहज, सरल भाषा थी तो उसका व्यापक प्रयोग किया जाता था लेकिन जैसे–जैसे वह कठिन एवं विशेष होती गई उसके बोलने और समझने वालों की संख्या कम होती गई। संस्कृत इस देश की प्राचीन भाषा है। हिंदी के अलावा भारत की अन्य क्षेत्रीय भाषाओं पर भी उसका व्यापक असर है इसलिए उसके शब्दों को हिंदी या अन्य प्रांतीय भाषाओं से निकाला नहीं जा सकता। यदि कुछ उर्दूपरस्त लोगों के प्रभाववश उसके शब्दों को निकालने की कोशिश की गई तो उससे राष्ट्रभाषा का महत्व एवं क्षेत्र दोनों कमजोर होंगे और हम सब राष्ट्रभाषा बनाने के उद्देश्य को नहीं प्राप्त कर पाएँगे– "एक महत्व की बात हमें नहीं भूलनी चाहिए। संस्कृत जब तक आसान थी तब तक उसका असर हमारी सब प्रांतीय भाषाओं पर हुआ। पुराण, धर्मशास्त्र, ज्योतिष, वैदिक और भक्तिसाहित्य इतनी बातों में संस्कृत ने

हमारी सभी देशी भाषाओं पर असर डाला है। संस्कृत ही हमारी स्वयंभू, सनातन और असली राष्ट्रभाषा थी। अगर हम संस्कृत के अथवा संस्कृत से बने हुए तमाम शब्दों को हिंदुस्तान की भाषाओं से निकाल डालें तो हमारी सबकी सब भाषाएँ इतनी दरिद्र बन जाएँगी कि सारा राष्ट्र गूँगा और असंस्कारी हो जाएगा। संस्कृत हमारे ही देश की भाषा है। हमारे ही पुरखों ने उसे बनाया और बढ़ाया। आज भी हिंदुस्तान में संस्कृत का असर आबोहवा के जैसा है। संस्कृत के शब्द अगर किसी भी भाषा से, केवल संस्कृत से आए हैं, इसलिए निकाल डालने की कोशिश कोई भाषा करेगी तो वह भाषा स्वदेशी नहीं रहेगी।"[1]

हिंदी के राष्ट्रभाषा बनने के क्रम में उसमें शामिल शब्दों की स्थिति को लेकर विवाद का माहौल था। हिंदू समाज का एक तबका यह मानता था कि हिंदी में ज्यादातर संस्कृत के शब्दों का प्रचलन हो, उसी तरह मुस्लिम समाज का एक तबका यह मानता था कि राष्ट्रभाषा में अरबी–फारसी के ज्यादातर शब्द हो। कुछ ऐसे लोग भी थे जो दूसरी भाषा के शब्दों के बहिष्कार की बात कर रहे थे। काका कालेलकर दोनों पक्षों के अतिवादी लोगों को उदारता दिखाने की सलाह देते हैं। हिंदी–उर्दू विवाद का समाधान हो और जरूरत के अनुसार सभी भाषाओं के शब्दों को हिंदुस्तानी भाषा में शामिल करने की कोशिश करे। इसके लिए काका कालेलकर हिंदीभाषी लोगों को समझाते हैं– "हिंदी वालों को मैं अपनी पूरी शक्ति लगाकर समझाता आया हूँ कि अपनी भाषा में अरबी–फारसी शब्दों का बहिष्कार करने की नीति आप न चलाइए।"[2]

इसी तरह उर्दूभाषी ऐसे लोग जो हिंदुस्तानी भाषा में अरबी–फारसी शब्दों के हिमायती थे और हिंदुस्तानी को उर्दू मानने की बात कर रहे थे, उन्हें खरे शब्दों में जवाब देते हैं कि देवनागरी इस देश की राष्ट्रीय लिपि है, इसके अलावा अन्य किसी लिपि को इस देश की जनता स्वीकार नहीं करेगी क्योंकि संस्कृत के रूप में देवनागरी लिपि की एक समृद्ध परंपरा भारत के पास मौजूद है इसलिए जबरदस्ती कृत्रिम रूप से किसी भाषा और उसकी लिपि को अपनाने की जरूरत नहीं है – "देवनागरी हमारी स्वदेशी और राष्ट्रीय लिपि है, किंतु परस्पर परिचय के बिना एकता सिद्ध नहीं होती है, इसलिए हम उर्दू लिपि और उर्दू साहित्य के अध्ययन को राष्ट्रीय महत्व देते हैं। लेकिन अगर कोई कहे कि हिंदुस्तानी का अर्थ ही उर्दू है, इसलिए उर्दू ही हिंदुस्तान की राष्ट्रभाषा होनी चाहिए, तो हम कहेंगे कि हिंदी से झगड़ा करके, जो अलग खड़ी रहना चाहती है, ऐसी उर्दू की राष्ट्रीयता हमें कबूल नहीं है। स्वदेशी शब्दों का, चाहे वे संस्कृत के हो, प्राकृत के हों, या प्रांतीय भाषाओं के हों, बहिष्कार करने पर अगर कोई भाषा या शैली तुली हुई हो, वह अपनी उस वृत्ति से ही अराष्ट्रीय हो जाती है। हिंदी के लिए भी यही सिद्धांत लागू है।"[3]

उर्दू भाषा के ऐसे पक्षधर लोग जो हिंदुस्तानी भाषा में से हिंदी शब्दों को खोज–खोजकर उसकी जगह अरबी–फारसी शब्दों के प्रयोग पर बल देते हैं। काका

कालेलकर उनका विरोध करते हैं। उनका मानना हैं कि हिंदी के ऐसे शब्द जो जनता में रच–बस चुके हैं उन्हें किसी भी तरह राष्ट्रभाषा से निकालने की कोशिश नहीं की जानी चाहिए क्योंकि किसी भी शब्द को चलन में आने में काफी समय लगता है इसलिए मतैक्य की वजह से उनसे छेड़छाड़ नहीं की जानी चाहिए। इससे राष्ट्रभाषा को खड़ा करने में मुश्किल आएगी और राष्ट्रीय एकता कमजोर होगी– "हमारी राष्ट्रभाषा में हिंदी के लोकरूढ़ सभी शब्दों का स्थान होना ही चाहिए। जनता जिन शब्दों को जानती है उनको राष्ट्रभाषा में रहने का पूरा–पूरा हक है। फलाना शब्द उर्दू में नहीं पाया जाता इसलिए राष्ट्रभाषा में उसका प्रयोग नहीं करना चाहिए, चाहे हिंदुस्तान के करोड़ों लोग उसे क्यों न जानते हों, ऐसा कहनेवाला आदमी राष्ट्रभाषा को पहचानता ही नहीं। राष्ट्रीय एकता तो वह चाहता ही नहीं है।"[4]

उत्तर भारत के ज्यादातर हिस्सों में अंग्रेजों के आने से पहले मुसलिम शासन था और उस समय राजभाषा अरबी–फारसी युक्त थी। इसलिए जब स्वाधीनता आंदोलन में अंग्रेजों के खिलाफ राष्ट्रीय एकता के लिए राष्ट्रभाषा के निर्माण की बात चली तो बहुत से लोग उर्दू को विदेशी ठहराकर उसका विरोध करने लगे। वे इस बात को भूल जाते हैं कि आज जो गुलामी है वह देश के सभी हिस्सों को जकड़े हुए है इसलिए सभी भाषा के लोगों का साथ होना जरूरी हो जाता है। जो लोग पहले शासक थे वे भी आज गुलाम है इसलिए आपसी वैर भाव को त्यागकर राष्ट्रीय एकता को मजबूत करना हमारा लक्ष्य होना चाहिए। काका कालेलकर कभी–कभी संकीर्ण मनोवृत्ति के लोगों पर करारा प्रहार करते हैं– "हमें भूलना नहीं चाहिए कि उत्तर भारत के हिंदुओं को अपने पतन काल से विदेशी लोगों की जीहुकुमी का अनुभव था। आज जिस तरह राष्ट्रीय नेता अंग्रेजी भाषा और शिक्षण का महत्व कुछ हद तक स्वीकार करते हुए भी वह शिक्षण 'स्वराज चाहने वाली राष्ट्रीयता के बाधक है', ऐसा कहते हैं, उसी तरह उत्तर भारत के उस समय के नरम दल के लोग स्वदेशी संस्कृति का अभिमान रखकर हिंदी को आगे लाना चाहते थे। आज की अपनी राष्ट्रीयता अखिल भारतीय है। उसे केवल अंग्रेजी राज्य का विरोध करना है। उसी तरह से सौ–डेढ़ सौ साल पहले उत्तर भारत की राष्ट्रीयता उर्दू का विरोध करके संस्कृतमयी हिंदी का पुरस्कार करती थी।"[5]

भारत के राष्ट्रभाषा निर्माण से पहले इस देश के इतिहास से परिचित होना बहुत जरूरी है। भारत जैसे बहुभाषी राष्ट्र में राष्ट्रभाषा का निर्माण तभी हो सकता है जब नेतृत्वकर्ता दूरदृष्टा होंगे और अपनी भाषा के समान अन्य भाषाओं को भी समान महत्व देंगे। काका कालेलकर का मानना था कि ऐसी स्थिति में समाजशास्त्रियों की भूमिका अहम हो जाती है– "राष्ट्रभाषा का संगठन करने के पहले भाषा की दृष्टि से इस देश के इतिहास को देखना चाहिए। उस इतिहास को कोई इनकार नहीं कर सकता। भूत, भविष्य, वर्तमान तीनों का खयाल करनेवाले जो त्रिकालज्ञ समाजशास्त्री हों, वे ही

राष्ट्रभाषा का निर्णय और निर्माण कर सकेंगे।"[6]

यदि हम राष्ट्रीय एकता बढ़ाना चाहते हैं तो बिना झिझक प्रांतीय भाषाओं में बोली जाने वाले साधारण शब्दों को राष्ट्रभाषा में शामिल करना चाहिए। हमें ऐसी कोशिश करनी चाहिए कि जो शब्द ज्यादातर भारतीय भाषाओं के प्रयोग में शामिल हैं उन्हें तुरंत अपनी राष्ट्रभाषा में शामिल कर लेना चाहिए। इससे आपसी सामंजस्य बढ़ाने में आसानी होगी। हमें इस बात की खोजबीन में नहीं जाना चाहिए कि अमुक शब्द किस भाषा से आया है। साथ ही हिंदू–मुसलिम के झगड़े से ऊपर उठकर राष्ट्रीय एकता को मजबूत करना चाहिए। काका कालेलकर कहते हैं– "राष्ट्रभाषा के संगठन में हमें अब प्रयत्नपूर्वक इस बात की तलाश करनी होगी कि भारत की प्रांतीय भाषाओं में बोलचाल की शैली के कितने शब्द सर्वसाधारण के काम के हैं, और ऐसे शब्दों का ही हमें प्रचार बढ़ाना चाहिए। ये शब्द किस भाषा से आए हैं, इसकी छानबीन या नाप–तोल का धंधा हम न करें। हिंदू–मुसलिम का झगड़ा भी हम भूल जाएँ और केवल जन–हित तथा राष्ट्रीय ऐक्य का ही ध्यान रखें।"[7]

निष्कर्ष रूप में कह सकते हैं कि काका कालेलकर राष्ट्रभाषा हिंदी के रूप में सर्वसमावेशी भाषा के पक्षधर थे। विशेष रूप से प्रांतीय शब्दों के शामिल करने पर उनका जोर था। राष्ट्रभाषा पर किसी भी तरह के निर्णय से पहले वे चाहते थे कि इसके भूत, भविष्य और वर्तमान का बारीकी से निरीक्षण किया जाए। काका कालेलकर चूँकि गांधीजी से बहुत प्रभावित थे इसलिए गांधी जी के राष्ट्रभाषा संबंधी विचार काका कालेलकर के विचारों में मौजूद थे। सर्वसमावेशी हिंदी को राष्ट्रभाषा बनाने के लिए वे आजीवन प्रयासरत रहे।

संदर्भ सूची

1. राष्ट्रभारती हिंदी का मिशन, काका साहब कालेलकर, कृष्णा ब्रदर्स, कचहरी रोड, अजमेर, प्रथम संस्करण : सितंबर 1967, पृ. 22–23
2. वही, पृ. 4
3. वही, पृ. 5
4. वही, पृ. 24–25
5. काका कालेलकर ग्रंथावली, पाँचवाँ खंड, आत्म चरित्र, गांधी हिंदुस्तानी साहित्य सभा, 1, जवाहरलाल नेहरू मार्ग राजघाट, नई दिल्ली–110022, प्रथम संस्करण : जून, 1994, पृ. 467
6. राष्ट्रभारती हिंदी का मिशन, काका साहब कालेलकर, कृष्णा ब्रदर्स, कचहरी रोड, अजमेर, प्रथम संस्करण : सितंबर 1967, पृ. 22
7. वही, पृ. 32

❑❑❑

हिंदी एवं पाश्चात्य साहित्य में पर्यावरण समस्या एवं समाधान

प्रियंजन शर्मा

पर्यावरण का इतिहास मानव सभ्यता के विकास के साथ संबंधित है। प्राचीनकाल में मानव जीवन प्रकृति के साथ गहरा संबंध रखता था और पर्यावरण के आधार पर अपनी आवश्यकताओं को पूरा करता था। साहित्यिक दृष्टि से पर्यावरण शब्द संस्कृत शब्द 'परि' और 'आवरण' से मिलकर बना है, जिसका अर्थ होता है 'सभी ओर से घिरा हुआ'। पर्यावरण हमारे आसपास का प्राकृतिक और मानव द्वारा निर्मित सभी तत्वों का सम्मिलित संकल्प है। इसमें वायु, जल, भूमि, पौधे, जीव–जंतु, मानव एवं वनस्पति समेत सभी जीवन रहते हैं। पर्यावरण हमारे जीवन के लिए महत्वपूर्ण है, क्योंकि इससे हमें आवास, खान–पान, वायुमंडल और संसाधनों की आवश्यकताएँ मिलती हैं। पर्यावरण की महत्ता का अंदाजा हम इस बात से लगा सकते हैं कि हमारे विविध सांस्कृतिक एवं ऐतिहासिक परंपराओं में भी पर्यावरण को महत्वपूर्ण स्थान मिला है। भारतीय संस्कृति में प्रकृति की पूजा और आदर्शों का गहरा संबंध है। ब्रह्मांड, पहाड़, नदी, जंगल, वनस्पति, वनयात्रा, ऋतुराज, आदि कई विषयों पर बहुत सारी साहित्यिक रचनाएँ उपलब्ध हैं।

हिंदी साहित्य में मानवीय संबंधों, प्राकृतिक सौंदर्य, और पर्यावरणीय मुद्दों के साथ गहरा जुड़ाव रहा है। हिंदी साहित्य में प्रकृति, वन, नदी, पहाड़, पशु–पक्षी आदि प्राकृतिक तत्वों का सुंदर वर्णन किया गया है। साहित्य प्रकृति के सौंदर्य को एक विशेष रूप में मान्यता देता है और पर्यावरणीय मुद्दों के प्रति जागरूकता फैलाने का काम करता है। हिंदी साहित्य में प्रस्तुत विभिन्न उपन्यास, काव्य, कहानी, नाटक और गीतों में प्राकृतिक तत्वों के सुंदर वर्णन के उदाहरण पाए जाते हैं। श्रीरामचरितमानस, रघुवंश, गीतावली, रामायण, महाभारत, प्रेमचंद की कहानियाँ, सूरदास, कबीर, रहीम, दिनकर, महादेवी वर्मा, जयशंकर प्रसाद, आदि के रचनाओं में प्रकृति के साथ गहरा संबंध व्यक्त किया गया है।

हिंदी साहित्य में पर्यावरणीय मुद्दों के प्रति जागरूकता फैलाने के लिए कई लेखक और कवि ने अपनी रचनाओं में संदेश समाहित किया है। प्रदूषण, वनसंरक्षण, जल संरक्षण, जीव–जंतुओं की सुरक्षा, जलवायु परिवर्तन, और प्राकृतिक संसाधनों की महत्ता जैसे मुद्दे हिंदी साहित्य में व्यापक रूप से व्यक्त हुए हैं। हिंदी साहित्य ने पर्यावरणीय मुद्दों को उठाने के साथ–साथ प्रेरणादायक कहानियों, काव्य रचनाओं, और गीतों के माध्यम से लोगों को पर्यावरण संरक्षण की ओर प्रेरित किया है। हिंदी साहित्य का यह महत्वपूर्ण क्षेत्र हमें पर्यावरणीय मुद्दों के प्रति जागरूकता बढ़ाने और सुस्थित जीवन के लिए प्रेरणा प्रदान करता है।

साहित्य हमेशा प्राकृतिक वातावरण में गहराई से समाहित रहा है। यह मानव और प्रकृति के बीच शक्तिशाली संबंध का आह्वान करता है, और यह पूरे हिंदी साहित्यिक इतिहास में एक आवर्ती विषय रहा है। रामायण और महाभारत जैसे प्राचीन भारतीय महाकाव्यों से लेकर अरुंधति रॉय की "द गॉड ऑफ स्मॉल थिंग्स" जैसे समकालीन रचनाओं तक, हिंदी साहित्य ने लगातार प्रकृति को जीवन, सौंदर्य और आध्यात्मिक प्रेरणा के स्रोत के रूप में चित्रित किया है।

हिंदी साहित्य में प्रकृति का चित्रण विभिन्न धार्मिक विश्वासों और सांस्कृतिक प्रथाओं से भी प्रभावित रहा है। उदाहरण के लिए, हिंदू पौराणिक कथाओं में प्रकृति को पवित्र, देवत्व से ओत–प्रोत और भगवान की शक्ति और सुंदरता की अभिव्यक्ति के रूप में देखा जाता है। इसी तरह, जैन धर्म और बौद्ध धर्म प्रकृति के संरक्षण के महत्व और इसे नष्ट करने के परिणामों पर जोर देते हैं। कई भारतीय लेखकों ने जागरूकता बढ़ाने और प्राकृतिक संसाधनों के दोहन और पर्यावरणीय प्रदूषण की आलोचना करने के लिए अपने साहित्यिक मंच का उपयोग किया है। वे जलवायु परिवर्तन के खतरों से आगाह करने के लिए अपनी कहानियों का उपयोग करते हैं और प्रकृति के संतुलन को बनाए रखने के लिए सामूहिक कार्रवाई का आह्वान करते हैं। हिंदी साहित्यिक परंपरा प्राकृतिक पर्यावरण से घनिष्ठ रूप से जुड़ी हुई है और इसका उपयोग मानव और प्रकृति के बीच संतुलन बनाए रखने के महत्व को व्यक्त करने के लिए किया गया है।

हिंदी साहित्य में पर्यावरण का महत्व सोच, जीवन शैली, धार्मिकता और सामाजिक मानदंडों के साथ जुड़ा है। यह साहित्य लोगों को प्रकृति के महत्व को समझने, संप्रेषण करने और संरक्षण के लिए प्रेरित करने में मदद करता है। साहित्य हमें प्रकृति के साथ संगत और स्वस्थ रहने की आवश्यकता को समझाता है, हमें पर्यावरण संरक्षण की जिम्मेदारी समझाता है और एक समावेशी समाज की ओर प्रेरित करता है जहाँ प्रकृति और मानव संबंध सुरक्षित हो सकते हैं। हिंदी साहित्य में आदिकाल से लेकर आधुनिक काल तक प्रकृति को हमेशा विशिष्ट स्थान मिला है।

पर्यावरण चेतना की समृद्ध परंपरा हमारे साहित्य में रही है, वह आज भी उतना ही प्रासंगिक है । आदिकालीन कवि विद्यापति की रचित पदावली प्रकृति वर्णन कुछ इस प्रकार से करते हैं –

मौली रसाल मुकुल भेल ताब
समुखहिं कोकिल पंचम गाय।

भक्तिकालीन कवियों में कबीर सूर तुलसी जायसी की रचनाओं में प्रकृति का कई स्थलों पर रहस्यात्मक वर्णन हुआ है। तुलसी ने रामचरितमानस में सीता और लक्ष्मण को वृक्षारोपण करते हुए दिखाया है –

तुलसी तरुवर विविध सुहाए
कहुँ कहुँ सिया कहुँ लखन लगाएँ।

तुलसीदास ने वनों की सुंदरता व उपयोगिता के साथ वन्य जीवों के परस्पर संबंध का वर्णन इस प्रकार किया है.

फूलहिं फलहिं सदा तरु कानन, रहहिं एक संग जग पंचानन।
खग मृग सहज बयरु बिसराई, सबन्हि परस्पर प्रीति बढ़ाई।।

पर्यावरण संरक्षण को महत्व देते हुए तुलसीदास लिखते हैं,

रीझि–खीझि गुरुदेव सिष सखा सुविहित साधू।
तोरि खाहु फल होई भलु तरु काटे अपराधू।।

अर्थात तुलसीदास ने वृक्ष से फल खाना तो उचित माना, लेकिन वृक्ष को काटना अपराध माना है। वृक्षारोपण की परंपरा भी स्वाभाविक है जो प्राचीन काल से चली आ रही है। भगवान रामचंद्र जी के विवाह पश्चात राज्याभिषेक की तैयारी के अवसर पर गुरु वशिष्ठ ने आदेश दिया–

"सफल रसाल पूगफल केरा,रोपहु बीथिन्ह पुर चहुँ फेरा ।"

अयोध्या नगरी में सभी ने सुमन वाटिकाएँ, लताएँ आदि लगाई हैं। नीचे के उदाहरण में सबहिं शब्द विशेष महत्व का है अर्थात रोपण सभी को करना है उसका आकार, प्रकार जैसा भी हो।

सुमन वाटिका सबहिं लगाईं। विविध भाँति करि जतन बनाई।।
लता ललित बहु जाति सुहाईं। फूलहिं सदा बसन्त की नाईं।।

रामचरित मानस के सुंदरकांड में लंका के प्राकृतिक सौंदर्य एवं पर्यावरण के सुव्यवस्थित स्वरूप का चित्रण इस प्रकार है–

"बन बाग उपबन बाटिका सर कूप बापीं सोहहिं"।

रामचरित मानस में पर्यावरण के महत्व व संरक्षण के साथ मानव के अटूट संबंध को दर्शाया गया है। रीतिकालीन कवियों में बिहारी पद्माकर देव सेनापति ने प्रकृति में सौंदर्य को देखा परखा है बिहारी का एक दोहा देखने योग्य है–

चुवत स्वेद मकरंद कन
तरु तरु तरु विरमाय
आवत दक्षिण देश ते
थक्यों बटोही बाय।

हिंदी साहित्य और दर्शन संपूर्ण रूप से पर्यावरण पर केंद्रित रहा है। मानव का प्रथम कर्तव्य होता है कि वह प्रकृति की रक्षा करे। प्रत्येक युग में साहित्यकारों ने अपने साहित्य में प्रकृति का स्तुति किया है। मानव जीवन का आधार कहे जाने वाले पाँच महाभूतों का गुणगान हमेशा से होता आया है। कविवर रहीम ने भी पानी के माध्यम से जीवन के तत्व का ज्ञान कराया है–

"रहिमन पानी राखिए, बिन पानी सब सुन!
पानी गए न ऊबरे, मोती मानुस चुन!!"

आधुनिक काल में प्रकृति के सौंदर्य का उपादान क्रूर दृष्टि का शिकार होना प्रारंभ हो जाता है मैथिलीशरण गुप्त के साकेत में चंद्र ज्योत्सना में रात्रि कालीन बेला की प्राकृतिक छटा का वर्णन है–

चारु चंद्र की चंचल किरणें
खेल रही है जल थल में
स्वच्छ चांदनी बिछी हुई है
अवनि और अंबर तल में

छायावादी काव्य में प्रकृति का सूक्ष्म और उत्कट रूप दिखाई देता है। प्रसाद, पंत, निराला, महादेवी वर्मा में पर्यावरण चेतना यत्र–तत्र पाई जाती है। पंत को तो प्रकृति का सुकुमार कवि भी कहा गया है पंत की यह पंक्तियाँ हैं–

छोड़ द्रुमों की मृदु छाया
तोड़ प्रकृति से भी माया
बाले तेरे बाल जाल में
कैसे उलझा दूँ लोचन

प्रसाद की कामायनी का पहला ही पद पर्यावरण का उत्कृष्ट उदाहरण है–

हिमगिरि के उत्तुंग शिखर पर
बैठ शिला की शीतल छाँह
एक पुरुष भीगे नयनों से
देख रहा था प्रलय प्रवाह

प्रसाद ने प्रकृति को ही सौंदर्य और सौंदर्य को ही प्रकृति माना है।

रहीम कहते हैं–

'रहिमन वे अब बिरछ कहँ जिन की छाँह गंभीर।

बागन बिच–बिच देखियत सेहुडं–कंज–कटीर।

हिंदी साहित्य में 'छायावाद' को तो प्रकृति का उद्यान ही माना जाता है, जहाँ मनोभावों का प्रकृति से सहज ही सामंजस्य हो जाता है। हिंदी के महान सर्जक आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने अपने कई ललित निबंधों का विषय वनस्पति को बना कर उससे अभूतपूर्व मानवतावादी निष्कर्ष निकाले हैं। उदाहरणतः 'अशोक के फूल', 'शिरीष के फूल' आदि।

पर्यावरण हिंदी साहित्य में एक बहुआयामी भूमिका निभाता है। यह प्रेरणा के स्रोत, मानवीय भावनाओं के प्रतिबिंब, पारिस्थितिक चिंताओं को दूर करने के लिए एक मंच और गहरी दार्शनिक अवधारणाओं के प्रतीक के रूप में कार्य करता है। भारतीय लेखकों ने पर्यावरण की सुंदरता, महत्व और मानव अस्तित्व के साथ इसके अविभाज्य संबंध को उजागर करते हुए पर्यावरण को खूबसूरती से चित्रित किया है। अपने साहित्यिक कार्यों के माध्यम से, उन्होंने मनुष्य और प्राकृतिक दुनिया के बीच सम्मान, पारिस्थितिक चेतना और एक सामंजस्यपूर्ण संबंध की आवश्यकता की भावना पैदा की है।

पाश्चात्य साहित्य में पर्यावरण की भूमिका उतनी ही महत्वपूर्ण है क्योंकि यहाँ भी मानवीय संबंधों, मानवीय स्वार्थ, विज्ञान, तकनीक, और प्रकृति के मध्य संतुलन को समझने और समस्याओं के समाधान की ओर ध्यान केंद्रित किया गया है। यह साहित्य लोगों को प्रकृति के महत्व को समझने, पर्यावरण संरक्षण की जिम्मेदारी समझाने, और संबंधित मुद्दों के साथ जीवन की एक समावेशी और सतत भूमिका निभाने के लिए प्रेरित करता है।

कई लेखकों ने प्रकृति की सुंदरता और भव्यता से प्रेरणा ली है। उन्होंने इसकी कल्पना का उपयोग आश्चर्य और विस्मय की भावना जगाने के साथ–साथ प्राकृतिक दुनिया के पुनर्योजी और नवीकरणीय गुणों को प्रदर्शित करने के लिए किया है। हालाँकि, पर्यावरण के सभी साहित्यिक चित्रण इतने आशावादी नहीं हैं। कई लेखकों ने पर्यावरण को अपने समय के सामाजिक और राजनीतिक मुद्दों के रूपक के रूप में नियोजित किया है। उदाहरण के लिए, चार्ल्स डिकेंस का 'हार्ड टाइम्स', औद्योगीकरण के अमानवीय प्रभावों की आलोचना करता है, जिसका पर्यावरण और उस पर निर्भर श्रमिक वर्ग के लोगों पर हानिकारक प्रभाव पड़ा। इसके अलावा, पर्यावरण की समस्याओं के बारे में जागरूकता बढ़ाने और पर्यावरण संरक्षण की वकालत करने में भी साहित्य का महत्वपूर्ण योगदान रहा है।

राहेल कार्सन की पुस्तक ''साइलेंट स्प्रिंग'', 1962 में प्रकाशित, पर्यावरणीय सक्रियता का एक महत्वपूर्ण कार्य है जिसने कीटनाशकों के व्यापक उपयोग के खतरों को उजागर किया। इसी तरह, मार्गरेट एटवुड का डायस्टोपियन उपन्यास ''ओरिक्स

एंड क्रेक'' अनियंत्रित तकनीकी प्रगति के कारण होने वाली पर्यावरणीय तबाही से तबाह भविष्य की दुनिया को चित्रित करता है। विश्वयुद्ध, प्राकृतिक आपदाओं और पर्यावरणीय संकटों के चलते पाश्चात्य साहित्य ने पर्यावरण से जुड़ी चुनौतियों को उजागर किया है। इसमें जलवायु परिवर्तन और वातावरणीय संकट के प्रभाव पर ध्यान केंद्रित किया जाता है। पाश्चात्य साहित्य में विभिन्न रूपों में उपन्यास, कविता, कहानी, नाटक, और गद्य के माध्यम से पर्यावरणीय मुद्दों को उजागर किया जाता रहा है।

प्रकृति ने अमेरिकी साहित्य में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है, जो कई लेखकों के लिए एक प्रमुख विषय और प्रेरणा स्रोत के रूप में काम कर रही है। 19वीं सदी के पारलौकिक आंदोलन से लेकर समकालीन प्रकृति लेखकों तक, अमेरिकी साहित्य ने मानव और प्राकृतिक दुनिया के बीच संबंधों और व्यक्तिगत और सामूहिक अनुभवों पर प्रकृति के गहरे प्रभाव का पता लगाया है। यहाँ अमेरिकी साहित्य में प्रकृति के कुछ उल्लेखनीय उदाहरण हैं:

हेनरी डेविड थोरोः थोरो की पुस्तक ''वाल्डेन'' प्रकृति के साथ उनके गहरे संबंध को दर्शाती है। वह दो साल तक वाल्डेन पॉन्ड के पास एक छोटे से केबिन में रहे, और प्रकृति के साथ तालमेल बिठाते हुए जीवन की सादगी और सुंदरता पर विचार करते रहे।

राल्फ वाल्डो एमर्सनरू ट्रांसेंडैंटलिस्ट आंदोलन में एक मुख्य व्यक्ति इमर्सन ने अपने निबंधों में विशेष रूप से अपने प्रसिद्ध निबंध "Nature" में प्रकृति की आध्यात्मिक और परिवर्तनकारी शक्ति का जश्न मनाया। उनका मानना था कि प्रकृति परमात्मा की प्रत्यक्ष अभिव्यक्ति थी और उन्होंने लोगों को प्राकृतिक दुनिया के साथ संवाद के माध्यम से आध्यात्मिक अंतर्दृष्टि और संबंध बनाने के लिए प्रोत्साहित किया।

वॉल्ट व्हिटमैनः अपने कविता संग्रह 'लीव्स ऑफ ग्रास' में, व्हिटमैन ने सभी जीवित प्राणियों की परस्पर संबद्धता और अमेरिकी परिदृश्य की भव्यता का जश्न मनाया। उनकी कविताएँ अक्सर प्रकृति के साथ एकता की भावना जगाती हैं और प्राकृतिक दुनिया की सुंदरता और जीवन शक्ति पर ज़ोर देती हैं।

जॉन मुइरः मुइर, एक प्रकृतिवादी और संरक्षणवादी, अमेरिकी पश्चिम के जंगल पर अपने लेखन के लिए जाने जाते हैं। उनकी पुस्तकें, जैसे "My First Summer in the Sierra" and "The Yosemite,", प्राकृतिक परिदृश्यों के संरक्षण की वकालत करती हैं और प्राकृतिक दुनिया की सुंदरता और महिमा के प्रति उनकी गहरी श्रद्धा व्यक्त करती हैं।

एनी डिलार्डः डिलार्ड की पुस्तक "Pilgrim at Tinker Creek" प्रकृति पर उनकी टिप्पणियों और प्रतिबिंबों की पड़ताल करती है, विशेष रूप से वर्जीनिया में एक क्रीक

के पास रहने वाले उनके अनुभवों का वर्णन करता है ।

मानव और प्राकृतिक दुनिया के बीच संबंधों की खोज करने वाले कई कार्यों के साथ प्रकृति ने ब्रिटिश साहित्य में भी एक महत्वपूर्ण स्थान रखा है। ब्रिटिश लेखकों ने अक्सर प्रकृति को प्रेरणा, सांत्वना और मानव स्थिति पर प्रतिबिंब के स्रोत के रूप में चित्रित किया है। यहाँ ब्रिटिश साहित्य में प्रकृति के कुछ उल्लेखनीय उदाहरण दिए गए हैं:

वड्र्सवर्थ प्रसिद्ध संग्रह "लिरिकल बैलाड्स" (Lyrical Ballads) को सैमुअल टेलर कोलरिज (Samuel Taylor Coleridge) के साथ सह–लेखकी की गई थी। इस संग्रह में, वड्र्सवर्थ ने प्रकृति की शक्ति पर बल दिया और उन्होंने प्राकृतिक तत्वों के साथ अपने गहरे जुड़ाव को व्यक्त किया। वे उदात्तता, विस्मय और संबंध की भावना को प्रेरित करने के लिए प्रकृति को एक महत्वपूर्ण स्रोत मानते थे। वड्र्सवर्थ की कविताओं में प्रकृति के सुंदर वर्णन, वन, पहाड़, झील, नदी, और मौसम की छटा आपको मिलेगी। उन्होंने मनुष्य की आंतरिक भावनाओं और प्रकृति के मध्य संघर्ष को दर्शाने के लिए प्राकृतिक तत्वों का प्रयोग किया । वड्र्सवर्थ की कविता ''धारा'' "The Daffodils" एक उत्कृष्ट उदाहरण है, जहाँ उन्होंने एक फूलों की सैर का वर्णन किया और उनकी सुंदरता और प्रकृति के साथ उत्पन्न किए गए भावों को व्यक्त किया। इस कविता में उन्होंने विशेष रूप से प्रकृति के साथ अपनी व्यक्तिगत जुड़ाव दर्शाया है और इसे उनके प्रमुख काव्यात्मक संदर्भों में माना जाता है ।

थॉमस हार्डीः हार्डी के उपन्यास और कविता अक्सर प्रकृति को मानवीय अनुभवों की पृष्ठभूमि के रूप में चित्रित करते हैं, जैसे भाग्य, हानि और जीवन चक्र के विषयों को दर्शाते हैं। उनका काम, जैसे ''टेस ऑफ द डीउर्बर्विल्स'' और ''फार फ्रॉम द मैडिंग क्राउड'', इंग्लैंड के ग्रामीण परिदृश्य और पात्रों के जीवन पर उनके प्रभाव को दर्शाता है।

एमिली ब्रोंटेरू अपने उपन्यास "वुथरिंग हाइट्स" में, ब्रोंटे निर्जन यॉर्कशायर मूर्स का उपयोग एक शक्तिशाली सेटिंग के रूप में करती है जो पात्रों की अशांत भावनाओं और संघर्षों को प्रतिबिंबित करती है। मूरों की कच्ची और अदम्य प्रकृति कहानी के जंगली जुनून और अंधेरे जटिलताओं को दर्शाती है।

जॉन कीट्स एक रोमांटिक कवि, प्रकृति की सुंदरता और क्षणभंगुरता से गहराई से जुड़े थे। उनकी कविताएँ, जैसे "ओड टू ए नाइटिंगेल" और "टू ऑटम", प्राकृतिक दुनिया के संवेदी अनुभवों को स्पष्ट रूप से पकड़ती हैं और मृत्यु दर, सौंदर्य और अस्तित्व की क्षणभंगुर प्रकृति के विषयों का पता लगाती हैं।

डी. एच. लॉरेंस के उपन्यास अक्सर मनुष्यों और प्राकृतिक पर्यावरण के बीच संबंधों को चित्रित करते हैं, विशेष रूप से अंग्रेजी ग्रामीण इलाकों में सेट किए गए

उनके कार्यों में। ''वीमेन इन लव'' और ''द रेनबो'' जैसे उपन्यासों में, प्रकृति को एक ऐसी शक्ति के रूप में चित्रित किया गया है जो पात्रों को जोड़ती और चुनौती देती है, उनके भावनात्मक और मनोवैज्ञानिक संघर्षों को दर्शाती है।

रॉबर्ट मैकफर्लेनः मैकफर्लेन एक समकालीन ब्रिटिश प्रकृति लेखक हैं, जिनकी कृतियाँ, जैसे "द वाइल्ड प्लेसेस" और "लैंडमार्क्स", ब्रिटिश द्वीपों के परिदृश्य का पता लगाती हैं और भाषा, प्रकृति और मानव अनुभव के बीच संबंधों में तल्लीन करती हैं। उनका लेखन प्राकृतिक दुनिया के संरक्षण और सराहना के महत्व पर जोर देता है।

ये उदाहरण बताते हैं कि कैसे प्रकृति ब्रिटिश साहित्य में एक मुख्य विषय रही है, जो इसकी सुंदरता, शक्ति और मानव जीवन पर प्रभाव को दर्शाती है। ब्रिटिश लेखकों ने अक्सर गहरे दार्शनिक, भावनात्मक और अस्तित्व संबंधी प्रश्नों की खोज के लिए प्राकृतिक दुनिया को एक पृष्ठभूमि के रूप में इस्तेमाल किया है, जिससे प्रकृति ब्रिटेन में साहित्यिक परंपरा का एक अभिन्न अंग बन गई है।

भारतीय संस्कृति में प्रकृति की पूजा और पर्यावरण संरक्षण का महत्व शामिल है। यहाँ कई प्राचीन और स्थानीय परंपराओं में पर्यावरण संरक्षण को दर्शाया जाता है और इसे धार्मिक और आध्यात्मिक दृष्टिकोण से भी देखा जाता है। भारत में कई ऐसी धारणाएँ और कार्यक्रम हैं जो पर्यावरण संरक्षण को प्रमुखता देते हैं। यहाँ कुछ महत्वपूर्ण पहलू हैं जो भारत में पर्यावरण संरक्षण को बढ़ावा देते हैंः पर्यावरण, वन और जलवायु परिवर्तन (Ministry of Environment and Forests and Climate Change): मंत्रालय, भारत सरकार द्वारा स्थापित इस मंत्रालय का मुख्य कार्य पर्यावरण संरक्षण, वन संरक्षण, जल संरक्षण, प्राकृतिक संसाधनों का प्रबंधन और पर्यावरण संबंधी कानूनों के निर्माण और प्रवर्तन में सहायता करना है। पर्यावरण संरक्षण अधिनियम (Environmental Protection Act): 1986 में पारित किया गया था और पर्यावरण संरक्षण, प्रदूषण नियंत्रण, जीव–जंतु संरक्षण, और पर्यावरणीय प्रदूषण के खिलाफ कानूनी कार्रवाई संबंधित मुद्दों पर कार्य करता है। भारत में वन संरक्षण महत्वपूर्ण है और इसे राष्ट्रीय वन नीति और वन अधिनियम के माध्यम से प्रोत्साहित किया जाता है। वनों के रखरखाव, पुनर्गठन और संवर्धन के लिए वन संरक्षकों और स्थानीय जनसंघों को समर्थन प्रदान किया जाता है। पर्यावरण संरक्षण में सफलता के लिए जनसाधारण की जागरूकता बहुत महत्वपूर्ण है। भारत में अनेक संगठन, मीडिया, और सामाजिक समूह इसे प्रमोट करने के लिए प्रयास कर रहे हैं। पर्यावरण संरक्षण, जल संरक्षण, और प्रदूषण नियंत्रण के मुद्दों पर जनसाधारण को शिक्षा और प्रेरणा देने के लिए अभियान और कार्यक्रम आयोजित किए जाते हैं। भारत में पर्यावरण संरक्षण को लेकर अभियान और पहल तेजी से बढ़ रहे हैं। हालाँकि, अभी भी कई चुनौतियाँ हैं जैसे प्रदूषण, जल संकट, वनों की कटाई, औद्योगिकीकरण के प्रभाव आदि। इन चुनौतियों का सामना

करने के लिए, सरकार, सामुदायिक संगठन, नागरिक समूह और व्यक्तिगत स्तर पर सहयोग करके पर्यावरण संरक्षण को मजबूत करने की आवश्यकता है। साथ ही, सभी व्यक्तियों को अपने दैनिक जीवन में सतत प्रयास करना चाहिए ताकि हम स्वच्छ और स्वस्थ पर्यावरण का हिस्सा बन सकें। पर्यावरण का संरक्षण केवल एक विकल्प नहीं बल्कि सभी जीवित प्राणियों के अस्तित्व और कल्याण के लिए एक आवश्यकता है। स्थायी प्रथाओं को अपनाकर, संसाधनों के संरक्षण, जैव विविधता के संरक्षण और प्रदूषण को नियंत्रित करके, हम अपने पर्यावरण पर पड़ने वाले नकारात्मक प्रभावों को कम कर सकते हैं। इसके अतिरिक्त, पर्यावरण शिक्षा को बढ़ावा देने से हमारे ग्रह की रक्षा के लिए एक सामूहिक जिम्मेदारी को बढ़ावा मिल सकता है। पर्यावरण हमारी साझा जिम्मेदारी है, और यह हमारा कर्तव्य है कि बेहतर और हरित भविष्य के लिए इसकी स्थिरता सुनिश्चित करें।

साहित्य का पर्यावरण संरक्षण में एक महत्वपूर्ण योगदान होता है। साहित्य के माध्यम से हमें प्रकृति के महत्व को समझने, सुंदरता का आनंद लेने और पर्यावरणीय मुद्दों पर विचार करने के लिए प्रेरित करता है। साहित्य पर्यावरण संरक्षण के महत्वपूर्ण संदेशों को साझा करता है। कहानियों, कविताओं और उपन्यासों के माध्यम से, साहित्यकार लोगों को प्रकृति के महत्व, प्राकृतिक संसाधनों की संरक्षा, प्रदूषण नियंत्रण, जल संरक्षण, वनसंरक्षण, और जीव–जंतुओं की सुरक्षा जैसे मुद्दों पर विचार करने के लिए प्रेरित करते हैं। इसके माध्यम से, उन्हें लोगों को पर्यावरणीय जीवन शैली और सतत पर्यावरणीय संवेदनशीलता की आवश्यकता के बारे में जागरूक करने का भी मौका मिलता है। साहित्य प्रेरणादायक होता है और लोगों को पर्यावरण संरक्षण की ओर प्रेरित करता है। उत्कृष्ट साहित्यकारों की कविताएँ, कहानियाँ और निबंध पर्यावरण संरक्षण के लिए सामर्थ्यवान प्रेरणा स्रोत होती हैं। इसके माध्यम से, साहित्य हमें उठाने की शक्ति प्रदान करता है और हमें पर्यावरण संरक्षण के लिए सक्रिय भूमिका निभाने की प्रेरणा देता है। साहित्य प्रकृति के साथ हमारे संबंध को मजबूत करता है और हमें प्रकृति की सुंदरता का आनंद लेने के लिए प्रेरित करता है। साहित्य में प्रकृति के वर्णन, पहाड़ों, नदियों, वनों और फूलों की सुंदरता के अद्‌वितीय चित्रण मिलता है, जिससे हम अपने आसपास की प्रकृति को महसूस कर सकते हैं। इसके माध्यम से, हम अपने पर्यावरण के प्रति आदर और संवेदनशीलता का अनुभव करते हैं और इसकी संरक्षा के प्रति समर्पण करते हैं। इस प्रकार, साहित्य पर्यावरण संरक्षण के लिए एक महत्वपूर्ण योगदान करता है, क्योंकि यह हमें पर्यावरणीय मुद्दों की जागरूकता प्रदान करता है, हमें प्रेरित करता है, और हमारे प्रकृति संबंधी भाव और संवेदनशीलता को मजबूत करता है। हमें अपने पर्यावरण के संरक्षण हेतु कार्य करना चाहिए, क्योंकि इससे हमारे और आगामी पीढ़ियों के लिए स्वस्थ, सुरक्षित और समृद्‌ध वातावरण की सुनिश्चितता बढ़ेगी।

संदर्भ–

1. पर्यावरण विज्ञानः– डॉ. विजय कुमार त्रिपाठी, एस. चंद एंड कंपनी, नई दिल्ली
2. पर्यावरण और हमः– डॉ. डी. के. ठाकुर, पुस्तक संचय, जयपुर
3. पर्यावरण प्रबंधनः–प्रो. एच. पी. बेहरा, हिमालया पब्लिशिंग हाउस
4. रामचरितमानस, किष्किन्धा कांड श्लोक 11 चौपाई 2, गीता प्रेस गोरखपुर
5. कामायनी, श्रद्धा सर्ग, जयशंकर प्रसाद, प्रथम संस्करण 1995
6. डॉ. रामनाथ शर्मा एंव राजेंद्र कुमार शर्मा, भारतीय समाज, संस्थाएँ और संस्कृति, एटलांटिक पब्लिशर्स एंड डिस्ट्रीब्युटर्स, नई दिल्ली
7. विश्वनाथ त्रिपाठी, लोकवादी तुलसीदास, राधा कृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, पहला संस्करण, 1974
8. किरण कुमारी गुप्त, हिंदी काव्य में प्रकृति चित्रण, हिंदी साहित्य संमेलन प्रकाशन, प्रयाग, 1959
9. विद्यानिवास मिश्र, रामायण का काव्यमर्म, प्रभात प्रकाशन आसफ अली रोड, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण, 2001
10. नरेश अग्रवाल माध्यम सहस्त्राब्दि अंक–9 जनवरी–मार्च 2003, सम्पादक – डॉ. सत्यप्रकाश मिश्रा, पृष्ठ . 80
11. अंजलि श्रीवास्तव, पर्यावरण संरक्षण, नमन प्रकाशन, नई दिल्ली, 2001
12. द्विवेदी, हजारी प्रसाद. कुटज. राजकमल प्रकाशन, अंक–9
13. शर्मा, मुरारी. 'प्रेतछाया', पहाड़ पर धूप. अंतिका प्रकाशन, 2015
14. हारनोट. एस. आर. 'भागादेवी का चाय घर'. किलें. वाणी प्रकाशन, 2019
15. मीणा, हरिराम. 'जंगल में आतंक'. माँदर पर थाप. सं. अजय मेहताब. अनुज्ञा. 2019
16. एंजेल्स, फ्रेडरिक. 'डायलेक्टिक्स ऑफ नेचर', समयांतर. फरवरी, 2012
17. अग्रवाल, हरिश. 'ओजोन हॉल की हकीकत', जनसत्ता. 26 अगस्त, 2007
18. भार्गव, डॉ. रश्मि. 'कजरी और एक जंगल', मधुमती. मार्च–अप्रैल–2012

❑❑❑

आजादी के बाद का स्त्री और हिंदी साहित्य : राजेंद्र यादव के कथा–साहित्य का विशेष संदर्भ

विवेकानंद यादव

स्वातंत्र्योत्तर हिंदी उपन्यासकारों में राजेंद्र यादव का नाम एक चर्चित उपन्यासकार के रूप में लिया जाता है। स्वतंत्रता के बाद राजेंद्र यादव, मोहन राकेश तथा कमलेश्वर को विवादित रचनाकारों और नई कहानी आंदोलन के प्रवर्तकों के रूप में भी जाना जाता है। इन तीनों साहित्यकारों ने नवीन परिस्थितियों, विचारधाराओं और मान्यताओं के साथ अपनी रचनाओं में नए मूल्यों को स्थापित किया। राजेंद्र यादव की गणना उन साहित्यकारों में की जाती है जो उपन्यासकार, कहानीकार, आलोचक एवं संपादक के रूप में विख्यात हैं। 'नारी' शब्द के समानार्थक– स्त्री, (लड़की) महिला, औरत, जनाना, कामिनी आदि नामों को भी प्रयोग में लाया जाता है। राजेंद्र यादव के शब्दों में ही अगर कहें तो "स्त्री हमारा अंश और विस्तार है। वह हमारी ऐसी जन्मभूमि है जिसे हमने अपना उपनिवेश बना लिया है। हमारी सोच और संस्कृति के सारे सामंती और साम्राज्यवादी मूल्य उपनिवेशों के आधिपत्य और शोषण को जायज ठहराने की मानसिकता से पैदा होते हैं। बीसवीं सदी के उत्तरार्ध में दुनियाभर में जो उपनिवेश भौतिक और मानसिक रूप से स्वतंत्र हुए उनमें 'स्त्री' नाम का उपनिवेश भी है। दलित हमारे घरों और बस्तियों से बाहर होता है। स्त्री हमारे भीतर है, इसलिए उसका संघर्ष ज्यादा जटिल है।"[1]

राजेंद्र अपने उपन्यासों में जनतंत्र और समाज के हाशिए पर खड़ी स्त्री की दशा का वर्णन करते हैं। स्त्री की समस्याओं का चित्रण उन्होंने अपने साहित्य में बहुत बारीकी से किया है। स्त्री की समस्या को ही नहीं बल्कि आजादी के बाद सामाजिक एवं आर्थिक रूप से कमजोर वर्गों जैसे, दलित, आदिवासी, मजदूर और किसान आदि असहाय लोगों की समस्याओं का भी वर्णन उनके कथा साहित्य में किया गया है। वहाँ यह चित्रित है कि कैसे सामंती समाज के द्वारा उनके साथ पीढ़ी दर पीढ़ी भेदभाव, जाति–पाति, ऊँच–नीच, अंधविश्वास के नाम पर प्रताड़ित किया गया। जिस समाज में अनैतिकता का बोलबाला हो, भ्रष्टाचार, रिश्वतखोरी, बेईमानी, दुश्मनी आदि

से उत्पन्न संत्रास, ऊब, घुटन, कलह, रहन–सहन, आजीविका निर्वाह की समस्या, आचार–व्यवहार, परिवेश आदि के कारण भूमिहीन खेतिहारों, बँधुआ मजदूरों और श्रमिकों को दरिद्रता की भयावह स्थिति के रूप में जीवन गुजारना पड़े; ऐसे विषमतामूलक परिवेश का वर्णन उनके यहाँ मिलता है।

राजेंद्र ने अपने उपन्यास 'उखड़े हुए लोग' में लिखा हैं कि "आप लोग स्त्री का मूल्य केवल उसके शरीर के उपयोग से ही नापना चाहते हैं कि कितने आदमियों ने या एक आदमी ने कितने समय उसका उपयोग या उपभोग किया है? हमारा संस्कारगत और धार्मिक दृष्टिकोण जितना ही सेक्स को नगण्य, महत्वहीन और साधारण बनाने के नारे लगाता है, व्यवहार में उतना ही अपने आप को उसपर केंद्रित कर लेता है। मनुष्य की सारी अच्छाई–बुराई उसी से नापता है।... मुझे याद है सामरसैट मॉम ने कहीं लिखा है, जब हम सदाचार की, वर्चू की बात करते हैं तो हमारे दिमाग में सिर्फ एक चीज होती है, वह है सेक्स, लेकिन सेक्स सदाचार का न तो अनिवार्य हिस्सा है, न सबसे अधिक प्रधान ही।"2 वे स्त्री और पुरुष में कोई खास अंतर या फर्क नहीं मानते हैं स्त्री–पुरुष के शरीर की बनावट में ईश्वर ने कुछ खास अंतर या परिवर्तन नहीं किया है। लेकिन पुरुष स्त्री के शरीर के अंगों को यौन कामुकता की दृष्टिकोण से देखता आ रहा है। औरतों की तस्करी, औरत की हत्या, भ्रूण हत्या, वेश्यालय, बलात्कार, सामूहिक बलात्कार जैसी घटनाएँ गाँव से अधिक नगरों में कही अधिक दिखाई पड़ती हैं। इनसे पहले अन्य साहित्यकारों जैसे प्रेमचंद ने स्त्री की समस्याओं को केंद्रबिंदु या आधार बनाकर 'सेवासदन', 'निर्मला' और 'गबन' जैसे उपन्यासों की रचना की। जिसमें वेश्यावृत्ति, बालविवाह, अनमेल विवाह, दहेज प्रथा, विधवा विवाह आदि स्त्री समस्याओं का चित्रण मिलता है। बेचन शर्मा 'उग्र' के उपन्यासों जैसे 'दिल्ली का दलाल', 'बुधुआ की बेटी', 'शराबी', 'जी जी जी' में जैसे स्त्री की पीड़ा का कारुणिक चित्रण किया गया है। जयशंकर प्रसाद के 'कंकाल', 'तितली' आदि उपन्यासों में स्त्री–पुरुष सहजीवन और प्रेम की कथा है। प्रसाद की नारी अपने अधिकारों के लिए, देश के लिए, अपने मान–सम्मान और अभिमान के लिए संर्घषशील है। आचार्य चतुरसेन शास्त्री के 'हृदय की परख', 'अमर अभिलाषा' में स्त्री की पीड़ा दिखाई पड़ती है। सियारामशरण गुप्त के 'गोद', 'नारी' में नारी युगों–युगों से अंधकार में जी रही है। सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला' के 'अप्सरा', 'अलका', 'निरुपमा' उपन्यासों में स्त्री पुरुषों के विरुद्ध नहीं है इसमें दोनों की समानता पर बल दिया गया है। प्रेमचंद के बाद जैनेंद्र स्त्री को केंद्र में रखकर उनकी समस्याओ को अपने उपन्यासों में उठाने की कोशिश करते हैं। जिसमें 'परख–, 'सुनीता', 'त्यागपत्र', 'कल्याणी', मुख्य हैं। इनके अतरिक्त अन्य साहित्यकारों ने भी स्त्री की समस्या को केंद्र में रखकर उपन्यास लिखे हैं। 'दिव्या', 'कड़ियाँ', 'कुंतों', नदी के द्वीप', 'एक पति

के नोट्स', 'बेघर', 'मछली मरी हुई', 'मित्रो मरजानी', सूरजमुखी अंधेरे के', 'नदी और सीपियाँ, 'आपका बंटी', 'सफेद मेमने' आदि उपन्यासों में दाम्पत्य जीवन की कटुता, स्त्री की पराधीनता–जन्य पीड़ा और व्यक्ति की अतृप्त यौन आकांक्षाओं का भी चित्रण किया गया है।

राजेंद्र के कथा साहित्य में 'सारा आकाश', 'उखड़े हुए लोग', 'कुलटा', 'शह और मात', 'एक इंच मुस्कान', 'अनदेखे अनजान पुल', 'एक था शैनेंद्र', 'मंत्रविद्ध', 'छोटे–छोटे ताजमहल', 'संबंध', 'टूटना', 'जहाँ लक्ष्मी कैद है', 'प्रतीक्षा', 'रोशनी कहाँ है', 'भय', 'सिंहवाहिनी' आदि प्रमुख है। राजेंद्र का आरंभिक विचार संयुक्त परिवार का बदलता हुआ ढाँचा तथा स्त्री है। वह स्त्री पढ़ी–लिखी, उपार्जन–क्षम, वैयक्तिकता–संपन्न स्वतंत्र स्त्री है। आधुनिक युग में पहली बार महिलाएँ अपने घर के चौखट से बाहर आईं और कामकाज, हक तथा अधिकार के लिए लड़ी। पहले स्त्रियाँ गुलाम थीं, और आज भी उनको गुलाम बनाने की साजिश की जा रही है। तथा उन्हें समाज के द्वारा बेड़ियों में जकड़ने की कोशिश की जा रही है। आज समाज में रूढ़ियों एवं पाखंडों तथा अंधविश्वास का तेजी से विस्तार हुआ है राजेंद्र यादव के संदर्भ में धूमिल की यह पंक्तियाँ उनके लिए बिलकुल सही प्रतीत होती है कि 'मैं मरूँगा सुखी,.... क्योंकि मैंने जीवन की धज्जियाँ उड़ाई हैं।' समाज में व्याप्त भ्रष्टाचार और छुआछूत जैसी बीमारी आज भी मौजूद है।

स्त्री के साथ समाज में हो रहे अन्याय, अपराध, शोषण, बलात्कार की घटनाएँ आए दिन टीवी अखबारों में देखने को मिलती हैं। जिसे पढ़ता, सुनता, देखता हर व्यक्ति है लेकिन इसे कोई गंभीरता से नहीं लेता चाहे वह किसी वर्ग की स्त्री हो, सभी का समान रूप से शोषण किया जा रहा है। स्वतंत्रता के बाद समाज को इन्ही विषमताओं के साथ जोड़कर देखना चाहिए। स्वतंत्रता के बाद स्त्री के मन की कुंठा, विकृति, काम, प्रेम सब पर सूक्ष्म सामाजिक तथा मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण से विचार किया गया है। राजेंद्र के कथा साहित्य में आधुनिक भारतीय समाज की स्त्री के बदलते स्वरूप का परिदृश्य क्रांतिकारी है।

आजादी के इतने दिनों बाद भी भारतीय समाज में कुछ समुदाय कई समस्याओं तथा विसंगतियों से जूझ रहे हैं। बाल विवाह, अनमेल विवाह, प्रेम विवाह, दहेज प्रथा, भ्रूण हत्या,कुपोषण, शोषित, वंचित, पीड़ित, कुंठित समाज के खोखलेपन आदि का शिकार सबसे अधिक महिलाएँ हैं। राजेंद्र यादव अपने कथा साहित्य में समाज के उन तमाम अवगुणों से अवगत कराते हैं? जो विभिन्न समस्याओं के मूल में हैं।

तस्लीमा नसरीन लिखती हैं कि "औरत का कोई देश नहीं। हाँ, मैं विश्वास करती हूँ, औरत का कोई देश नहीं होता। देश का अर्थ अगर सुरक्षा है, देश का अर्थ

अगर आजादी है तो निश्चित रूप से औरत का कोई देश नहीं होता। धरती पर कहीं कोई औरत आजाद नहीं है, धरती पर कहीं कोई औरत सुरक्षित नहीं है। सुरक्षित नहीं है, यह तो नित्य प्रति की घटनाओं–दुर्घटनाओं में व्यक्त होता रहता है। इसकी तात्कालिक प्रतिक्रिया हैं– ये अधिकांश कॉलम। एक–एक मुहूर्त मिलकर युग का निर्माण करते हैं। मैं जिस युग की इनसान हूँ, उसी युग के एक नन्हें अंश के टुकड़े–टुकड़े नोचकर, मैंने इसे फ्रेम में जड़ दिया है। जो तस्वीर नज़र आती है, वह आधी–अधूरी है।"4 शिक्षित स्त्री अपने अधिकारों या समस्याओं से भलीभाँति परिचित है। क्या उचित है? क्या अनुचित है? उसके लिए? उन सभी से वह वाकिफ़ है। घर, परिवार, समाज में सबसे कमजोर स्त्री है। लेकिन अब स्त्री असहाय, कमजोर नहीं, वह अपने अधिकारों से परिचित है। पुरुष कितना भी दुराचारी, पापी, दुष्ट, चरित्रहीन, अत्याचारी और बलात्कारी क्यों न हो, समाज को उसकी चरित्रहीनता नहीं दिखाई पड़ती है? क्योंकि वह पुरुष है। इन तमाम विसंगतियों के बावजूद स्त्री खुद संघर्ष की लड़ाई लड़ती हुई नजर आती है। नारी विकट परिस्थितियों में भी आत्मनिर्भर ही होती है। वह समय के यथार्थ के साथ सामाजिक मार्यादाओं को तोड़कर नवीनता को स्थापित करती है। सिमोन द बोउवार के अनुसार "औरत? औरत के लिए कोई स्वप्नद्रष्टा एक बड़ा ही सीधा फार्मूला उच्चारित करता है। औरत? औरत एक गर्भ है, अंडाशय है और एक औरत है, ये शब्द काफी हैं, उसको परिभाषित करते के लिए। पुरुष के मुँह से औरत शब्द एक अपमानजनक ध्वनि रखता है। पुरुष फिर भी अपनी पाश्विक प्रकृति के लिए लज्जित नहीं होता, बल्कि उसको इस बात का अभिमान होता है कि वह एक पुरुष है। औरत शब्द इसलिए अपमानजनक नहीं कि औरतों का होना पुरुष के लिए एक विद्वेषपूर्ण स्थिति है। अपनी इस भावना का औचित्य पुरुष जीव–विज्ञान में खोजना चाहता है। औरत सुस्त, चंचल, बेवकूफ, कठोर व वासनात्मक, क्रूर और अवमानित कुछ भी हो सकती है। पुरुष एक ही साथ इन सारे गुणों को उस पर आरोपित करता है। वस्तुतः इन सारे विरोधाभासों के बावजूद औरत सिर्फ एक औरत रहती है।"5 स्त्री को यौन–सामग्री और संतान पैदा करने वाली मशीन के सिवा कुछ भी नहीं समझा जाता। समाज में स्त्री चाहे कितनी भी शिक्षित या पढ़ी लिखी क्यों न हो? लेकिन उसके साथ व्यवहार अशिक्षितों वाला ही किया जाता है।

हिंदी कथा साहित्य का दिन–प्रतिदिन विस्तार होता जा रहा है। दलित, स्त्री, किसान, मजदूर, आदिवासी, अल्पसंख्यक, मुस्लिम, सिख, ईसाई आदि के साहित्य को देख सकते है। इन सभी वर्गों के लोगों के द्वारा अपनी रचनाओं के माध्यम से साहित्य में योगदान किया जा रहा है। अपने साथ हो रहे अन्याय, शोषण, अत्याचार को झेलते–झेलते वे टूट चुके थे। इसलिए उन्होंने उन कुरीतियों के खिलाफ लिखना और लड़ना शुरू किया। वे विपरीत परिस्थिति में आगे बढ़ रहे हैं। पूजा–पाठ,

रीति–रिवाज, कर्मकांड, धर्म, सभ्यता आदि अवगुणों को रेखांकित कर उसका खंडन कर रहे हैं। इसके साथ ही वे अपनी बात समाज के सामने बड़ी सहजता–सरलता के साथ रख रहे हैं।

'सारा आकाश' उपन्यास की मुख्य समस्या है पति–पत्नी का आपसी संवाद न होना। अपासी संवाद न होने के कारण ही वे अपने दुख दर्द को एक दूसरे को नहीं बता पाते। प्रभा और समर का आपसी संवाद न होना ही उनके बीच विवाद का कारण बनता है। परिवार की संकीर्ण मानसिकता के बीच दाम्पत्य जीवन में दरार एवं उनके दुराचार के प्रति आक्रोश व्यक्त करके नैतिक मूल्यों को पुर्नस्थापित करने का प्रयास किया गया है। परिवार में प्रभा की स्थिति अपने ही घर में दयनीय एवं कारुणिक है। उसे सभी के ताने सुनने पड़ते हैं। छोटी–छोटी वस्तुओं के लिए उसे तरसना पड़ता है। उसे समर के घर न लौटने तक भूखा रहना पड़ता है। वह दिन–रात घर के कामों में लगी रहती है इन सबके बावजूद घर में उसकी दो कौड़ी की भी इज्जत नहीं है। समर का प्रभा से न बोलना असीम कष्टदायी व पीड़ादायी है। अपने साथ हो रहे शोषण से वह पूरी तरह परिचित है। लेकिन अपने परिवार या पति के प्रति कोई शिकायत नहीं करती। उस व्यवस्था के प्रति वह तब तक अनभिज्ञ रहती है, जब तक उसके चरित्र पर लांछन नहीं लगा दिया जाता है। आज भी कुछ स्त्रियाँ पुरुषवादी मानसिकता की गुलाम है। ऐसी स्त्रियाँ ही स्त्रियों का शोषण करके उसे कमजोर और असहाय बना देती हैं।

राजेंद्र यादव का उपन्यास 'उखड़े हुए लोग' (1956 ई) स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद प्रकाशित हुआ। जिसमें सामाजिक तथा राजनीतिक समस्याओं को ध्यान में रखते हुए यथार्थ का वर्णन किया गया है। वे मध्यवर्ग की आशा–आकांक्षा, पीड़ा–विषाद, राग–विराग, शोषण–अत्याचार को अपने उपन्यासों में अभिव्यक्त करते हैं और राजनीतिक, सामाजिक स्वार्थपरता एवं विसंगतियों को बखूबी से अभिव्यक्त करते हुए नजर आते हैं। वस्तुतः यह कथा प्रेमी और प्रेमिका के साथ–साथ एक धूर्त नेता की कथा है। नेता की खाल में वह वहशी, क्रूर, बर्बर, अत्याचारी, पूँजीवादी व्यक्ति की विसंगतियों का चित्रण किया गया है। वस्तुतः यह कथा जीवन को यथार्थ से जोड़ने का प्रयास करती है। उसमें मानव की उत्तेजना, खीझ, आक्रोश, निराशा, कुंठा, असंतोष सब कुछ देखा जा सकता है। पुराने मूल्य आज टूट रहे हैं और नए मूल्य स्थापित हो रहे हैं। समकालीन उपन्यास में इस विघटन को हर स्तर पर अनुभूति का विषय बनाने की कोशिश की गई है।

राजेंद्र यादव ने सदियों से सामाजिक परंपराओं में जकड़े हुए समाज की तस्वीर प्रस्तुत करने की कोशिश की है। समाज में महिलाओं के प्रति जो सोच है। उसी प्रकार की सोच एक स्त्री भी दूसरी स्त्री के प्रति रखती है। किसी स्त्री का दूसरे पुरुष के

साथ अनैतिक या नजायज संबंध है तो उसे स्त्री और पुरुष दोनों एक ही दृष्टि से देखते हैं। उपन्यास में ऐसे ही समाज का ताना–बाना प्रस्तुत किया गया है।

राजेंद्र यादव के उपन्यास 'शह और मात' (1959) में नायक और नायिका एक उपन्यासकार, कहानीकार, लेखक, पत्रकार, नाटककार के रूप में चित्रित हैं। इस उपन्यास में कथा के अंदर कथा चल रही है। इसका नायक, चालक, शातिर, सतर्क, धूर्त एवं बुद्धिमान है। जिसकी कई स्त्रियों के साथ मित्रता है परंतु वह इस संबंध को दूसरी स्त्री से नहीं बताता है। नायिका सुजाता को ध्यान में रखते हुए उपन्यास के पात्रों को जीवंत में गढ़ा गया है। सुजाता के जीवन में कई उतार–चढ़ाव आते हैं। उपन्यासकार ने उसी को अपना केंद्र बिंदु बनाया है। पात्र की दृष्टि से दोनों में से एक को अंधकार में रखकर दूसरे से विचार या विमर्श करता रहता है। इस उपन्यास को डायरी शैली के रूप में लिखा गया है।

'अनदेखे अनजान पुल' (1963) उपन्यास में कथा तीन रूपों में विभाजित है। कथा किसी अन्य पुरुष के माध्यम से चलती तथा संचालित होती है। यह वर्णनात्मक शैली में लिखी गई है। यह मानसिक हीनता से आक्रांत हताश और टूटी हुई स्त्री की कहानी है। नायिका निन्नी को माध्यम बनाकर कथा को प्रस्तुत करने में लेखक सफल रहा है। अंत में दर्शन के सहज प्यार एवं व्यवहार से वह अपनी देह की कुरूपता की अवचेतन को सँभाल लेती है। यह उपन्यास मनोविकारों एवं मनोविश्लेषण से संबंधित है।

'मंत्र विद्ध' उपन्यास एक ऐसी छात्रा की कहानी है जो प्रेमजाल में फँसकर अपने जीवन को निराधार बना लेती है। विवाहित शिक्षक और छात्रा के बीच उत्पन्न प्रेम दोनों को अपने घर से भागने के लिए विवश कर देता है। वे दोनों दिल्ली से भागकर कोलकाता आते हैं। इसे लेखक ने लघु उपन्यास के रूप में लिखा है। कथानक सांकेतिक शैली में यह विवाहित तारक और छात्रा सुरजीत के आपसी संबंधों की कहानी है। दो प्रेमी घर से भागकर मोहन और इंदु के घर शरण लेते हैं। इसमें महानगरीय जीवन की विषमता और व्यक्तिविहीन प्रेम की तीक्ष्णता को तारक के माध्यम से अभिव्यक्त किया है। तारक अवसरवादी एवं हीन मनोवृत्ति वाला व्यक्ति और मानसिक रोगी भी दिखाई पड़ता है। सुरजीत अपने घर से निकल जाने के बाद अपने घर वापस नहीं जाना चाहती है लेकिन तारक की चाल में ग्रसित तारक धूर्त, हीनभाव से ग्रसित एक कुंठित और शंकालु स्वभाव का व्यक्ति है। राजेंद्र यादव उसके चरित्र को बहुत ही सरलता एवं व्यापकता से प्रस्तुत करने की कोशिश करते हैं।

'एक इंच मुस्कान' (1963) मे लेखक राजेंद्र यादव ने अपनी पत्नी मन्नू भंडारी के साथ मिलकर प्रयोगात्मक और नवीन दृष्टिकोण से नया उपन्यास लिखने का प्रयास किया है। जिसमें दोनों लोग सफल हुए हैं। मूलतः इस उपन्यास को मन्नू भंडारी के द्वारा लिखा गया। कथा मुख्य रूप से अमला पर केंद्रित करके लिखा गया

है। अपने उपन्यास में नए दृष्टिकोण के साथ राजेंद्र यादव ने अमर के स्वभाव को एक नया स्वरूप देने का प्रयास किया है। इस उपन्यास में राजेंद्र यादव ने अमर का चित्रण किया है और मन्नू भंडारी ने रंजना, अमर और अमला का मुख्य पात्र के रूप में वर्णन किया है। उपन्यास में समाज की रूढ़िगत मान्यताएँ एक–एक करके टूटती हुई नजर आती हैं। मूल्यों से मूल्यों की टकराहट, नैतिकता से नैतिकता की भिड़ंत, दो पीढ़ियों की टकराहट राजेंद्र के उपन्यासों में खूब देखने को मिलते हैं। भावुकता की जगह बौद्धिकता, तटस्थता तथा पीड़ाभरी प्रतीक्षा इनके उपन्यासों में दिखाई देता है।

'एक था शैलेंद्र' उपन्यास में राजेंद्र यादव तत्कालीन स्वतंत्रता प्राप्ति हेतु चल रहे आंदोलनों एवं जुलूसों का कच्चा–चिट्ठा प्रस्तुत करते हैं। शैलेंद्र की कहानी स्वतंत्रता के पश्चात देश में व्याप्त प्राचीन मूल्यों का प्रामाणिक दस्तावेज है। पाश्चात्य मूल्यों के प्रकाश में भारतीय जीवन–मूल्यों को गतिरोधक तथा अनुपयुक्त समझा जाने लगा। साथ ही पश्चिमी संस्कृति की ओर युवा पीढ़ी का आकर्षण बढ़ने लगा। भारतीय संस्कृति के लिए शैलेंद्र पश्चिमी सभ्यता के नवीन मूल्यों को अश्लील और अमानवीय समझता है। इसलिए भारतीय समाज आज भी प्राचीन सभ्यता से मोह त्याग नहीं कर पाया है और न ही नए को स्वीकार कर पाया है। नारी स्वालंबी बनकर पुरुष की सहयोगिनी बनने की कोशिश करती है।

स्वातंत्र्योत्तरकाल में नैतिकता के बदलते स्वरूप एवं संक्रमण को झेलता हुआ भारतीय समाज बदलता हुआ दिखाई देता है। आज विवाह के पूर्व काम संबंध अब असामान्य नहीं रह गए हैं और न विवाह के बाद काम संबंध अनैतिक रह गया है राजेंद्र के उपन्यासों में सामान्य यौन प्रसंगों का चित्रण ज्यादा है। बहुत सारे धर्मों में आज भी समलैंगिकता एवं यौनक्रिया को पाप मानते हैं। इस तरह की विकृतियाँ हर समाज में विवाहेतर संबंधों में दिखाई पड़ती हैं।

संदर्भ ग्रंथः

1. डॉ. विनय पाठक, (2009), स्त्री–विमर्श, नई दिल्ली, भावन प्रकाशन, पृष्ठ सं' 118
2. सं. प्रेम भारद्वाज, पाखी पत्रिका, राजेंद्र यादव पर केंद्रित (सितंबर 2011) नोएड़ा, उत्तर प्रदेश, पृष्ठ संख्या–90
3. तस्लीमा नसरीन, (2017), औरत का कोई देश नहीं, नई दिल्ली, वाणी प्रकाशन, पृष्ठ सं– 7
4. अनु. प्रभा खेतान/सिमोन द बोउवार, (2002), स्त्रीः उपेक्षिता, नई दिल्ली, हिंदी पॉकेट प्रकाशन, पृष्ठ सं– 31

❑❑❑

जापान–भारत समन्वय सेतु : हिंदी–सेवी तोमियो मिजोकामी

अखिलेश आर्येदु

नाटक विधा हिंदी साहित्य में पिछले तीस वर्षों में अभिरुचि की कमी और सृजनात्मकता दोनों स्तरों पर उपेक्षित रही है। लेकिन वहीं दूसरी ओर ऐसे विदेशी हिंदी सेवक–संवाहक और सृजनकर्ता हुए हैं जिन्होंने विश्व मंच पर इस उपेक्षित विधा को प्रतिष्ठित ही नहीं किया अपितु जनमानस में हिंदी भाषा व साहित्य के प्रति अभिरुचि उत्पन्न करने में अपनी सम्पूर्ण शक्ति लगा दी। इनमें जापान निवासी डा.तोमियो मिजोकामि का नाम प्रमुख है। डॉ. तोमियो ने हिंदी नाटकों को जापानी शैली में विश्व के अनेक भागों में प्रस्तुत कर हिंदी नाटकों की लोकप्रियता को ही नहीं बढ़ाया अपितु, हिंदी शिक्षण के विस्तार संबंधी अपने उद्देश्य में भी सफलता प्राप्त की।

प्रोफेसर तोमियो मिजोकामि का जन्म 12 मई 1941 ई. को जापान के कोबे नामक स्थान पर हुआ। यहाँ भारतीय समुदाय के लोग बड़ी संख्या में रहते हैं। जिसका प्रभाव तोमियो पर पड़ा। 1965–67 के मध्य उन्होंने प्रयागराज आकर महिषी महादेवी वर्मा, सुमित्रानंदन पंत, इलाचंद्र जोशी जैसे अनेक साहित्यकारों का निकट सानिध्य प्राप्त किया। इसमें उनमें जहाँ साहित्य सृजन के प्रति लगाव बढ़ा, वहीं पर हिंदी भाषा व साहित्य के स्वाध्याय में भी अभिरुचि पैदा हुई। इस अभिरुचि ने उन्हें जापान से बाहर भारत में रहने और भारतीय रंगों में अपना रंग डालने के लिए खींचा। अपने छात्र जीवन में ही उन्होंने हिंदी के भक्तिकालीन कवियों संत तुलसीदास, कबीर और मीरा के काव्य का अध्ययन किया, वहीं पर प्रेमचंद के संपूर्ण साहित्य का अध्ययन किया। प्रेमचंद आधुनिक हिंदी के लेखकों में उन्हें सबसे अधिक प्रिय हैं। जन्मभूमि से कर्मभूमि का महत्व अधिक होता है। इसलिए उन्होंने जीवन का अधिकांश समय भारत में व्यतीत किया।

ओसाका विश्वविद्यालय में हिंदी के प्रोफेसर डॉ. मिजोकामि ने हिंदी नाटकों का

बहुत बड़े स्तर पर निर्देशन करके हिंदी संस्कृति की विशेषताओं से विश्व जनमानस को अवगत कराया। इस संबंध में डॉ. तोमियो का अभिमत अत्यंत प्रेरक है। उनका मानना है–कोई भी भाषा नाटकों की प्रस्तुति से रोचक बन जाती है। नाटक में भाग ले रहे छात्रों का भी उस भाषा के प्रति उत्साह और उसे कुशलता से सीखने की इच्छा बढ़ती है। हिंदी–भाषा अभिव्यक्ति का एक सरल साधन है तो नाटक और गीत हिंदी सीखने का सशक्त माध्यम। अभिनय एक सृजन है। यह दोनों देशों के सांस्कृतिक आदान–प्रदान का ठोस उत्कृष्ट कार्य है। अंतरराष्ट्रीय विनिमय तो केवल पुस्तकीय नहीं होना चाहिए, बल्कि साकार ठोस कदम उठाने की आवश्यकता है। नाटक के पात्र से तादात्म्य स्थापित करने से भारतीयकरण संभव हो सकता है, उससे भारतीय संस्कृति भी सहज सीखने को मिलती है। 'हिंदी के प्रति उनके ये विचार, उनके हिंदी के प्रति समर्पण की ही अभिव्यक्ति नहीं है, अपितु हिंदी की वैज्ञानिकता और सरल–सुबोध होने का उनका दिया प्रमाण भी कहा जाना चाहिए।

हाई स्कूल में पढ़ाने वाले अध्यापक का उनके मन में भारत और यहाँ की भाषा हिंदी के प्रति अभिरुचि पैदा होने में विशेष योगदान रहा है। पर शंका का निवारण वे इन शब्दों में करते हैं–अक्सर लोग प्रश्न करते हैं कि मैंने हिंदी भाषा में ही अध्यापन करना क्यों पसंद किया, आखिर ऐसा क्या है हिंदी में इसके पीछे एक कथा है। उस समय मैं दसवीं का विद्यार्थी था। तथा पं. नेहरू उस समय भारत के प्रधानमंत्री थे। पं. नेहरू अंतरराष्ट्रीय स्तर पर अत्यंत लोकप्रिय थे। उन्हें शांतिदूत कहा जाता था। चूँकि मैं उनका प्रशंसक था अतः भारत और यहाँ की भाषा के प्रति आकर्षण होना स्वाभाविक था।'' इतने पारदर्शी और सत्य जीवन–अनुभवों को लिखना डॉ. तोमियो का हिंदी–प्रेम ही नहीं बल्कि भारत के प्रति उनके अनुराग का भी द्योतक है। तोमियो को हिंदी ने इस प्रकार आकर्षित किया कि वे भारत को अपनी दूसरी मातृभूमि ही मानने लगे थे। भारत के प्रति उनके अतुल अनुराग का प्रमाण है कि उन्होंने ओसाका विश्वविद्यालय में जहाँ हिंदी पढ़ाया और बढ़ाया, वहीं पर अमेरिका के कैलिफोर्निया विश्वविद्यालय में ग्रीष्मकालीन पाठ्यक्रम के हिस्से में पंजाबी पढ़ाया। प्रो. तोमियो हिंदी के अतिरिक्त असमिया, तमिल, मराठी, कश्मीरी, उर्दू, अंग्रेजी, सिंधी, फ्रेंच और जर्मन भाषा में भी प्रवीणता प्राप्त की। पंजाबी में प्रवीणता प्राप्त करने के उपरांत उन्होंने 'जापजी साहेब' एक सिख प्रार्थना का जापानी में अनुवाद किया। उन्हें प्रथम पंजाबी–जापानी शोधकर्ता होने का गौरव प्राप्त है।

हिंदी नाटकों के निर्देशन का महारथ हासिल करने वाले तोमियो ने 8 दिसंबर 2001 को तत्कालीन भारत के प्रधानमंत्री अटल बिहारी वाजपेयी के सम्मान में आयोजित स्वागत समारोह में उनके द्वारा निर्देशित नाटक 'तौलिये और आईना' दोनों का मंचन इतना भावपूर्ण और विनोद–संपूरित थे कि प्रधानमंत्री भी वाह–वाह कह उठे

थे। इन दोनों नाटकों के निर्देशन से उनकी चर्चा भारतीय रंगमंच और साहित्य जगत में होने लगी थी। जापान में किए अपने निर्देशन के पश्चात उन्होंने भारत के छह विभिन्न स्थानों–दिल्ली, लखनऊ, गोरखपुर, कुशीनगर और शांतिनिकेतन में भी नाटकों का मंचन किया। इन शहरों में उनके नाटकों को दर्शकों ने मनभर सराहा। आश्चर्य की बात यह है कि उपरोक्त प्रदेशों के मुख्यमंत्रियों ने भी उनके द्वारा निर्देशित नाटकों को देखा और मुक्त कंठ से प्रशंसा की। हिंदी नाटकों के निर्देशन की उनकी यात्रा यहीं समाप्त नहीं हुई। उन्होंने अपने नाट्य दल के साथ प्रयागराज, वाराणसी, पुणे, पटना, आगरा, मुंबई, कोलकाता जैसे अनेक शहरों में हिंदी नाटकों जैसे– 'प्यार कैसे होता है', 'परदा उठने से पहले', 'कायाकल्प', 'हम सब आजाद हैं' जैसे नाटकों का निर्देशन किया।

नाटकों के अतिरिक्त उन्होंने अनुवाद के क्षेत्र में भी कई कार्य किए। अंग्रेजी व हिंदी में लिखी गईं उनकी रचनाएँ 'हिंदी, एशियन एंड अफ्रीकन ग्रामैटिकल मैनुअल' जापानी से हिंदी 'अनुवाद में अनुवाद की समस्याएँ', आन कोलोकियल स्टाइल्स आफ हिंदी आब्ज़वर्ड एमंग स्टूडेंट्स आफ देहली यूनिवर्सिटी'जैसी रचनाएँ प्रमुख हैं। उनके प्रयासों से जापान में हिंदी सिखाने के लिए एक लघु पुस्तिका तैयार की गई जिससे जापानी जन हिंदी सहजता से सीख सकें। इसके अतिरिक्त टोकियो से प्रकाशित हिंदी पत्रिका 'ज्वालामुखी' के अनेक अंकों में उनकी अनेक रचनाएँ, जिनमें 'एक रिक्शे वाले की कहानी', 'वापसी' 'चौराहे के बीच' प्रमुख हैं। प्रो. तोमियो को हिंदी को संयुक्त राष्ट्र संघ की भाषाओं में सम्मिलित न करने का अत्यंत दुख रहा है। वे भले ही जापान में पैदा हुए, लेकिन उनकी हर धड़कन हिंदी और भारतीय भाषाओं के लिए धड़कती एवं उसमें बसती है। वे कहते हैं– ''हिंदी विश्व की तीसरी सबसे बड़ी भाषा है। दुनिया के कई छोटे–छोटे देशों की भाषाओं को संयुक्त राष्ट्र संघ में मान्यता प्राप्त है तो कोई कारण नहीं है कि भारत की एक महत्वपूर्ण भाषा हिंदी को स्वीकार न किया जाए।''

भारत में रहकर उन्होंने अपनी अभिरुचि के हिंदी टीवी सीरियल 'रामायण' का अपने मित्र डा. गिरीश बख्शी के सहयोग से दो खंडों में तथा एक सौ एक जापानी गीतों का हिंदी–अनुवाद पुस्तक रूप में प्रकाशित कराया। प्रो. तोमियो ऐसे बिरले विदेशी हिंदी सेवक हैं जिन्होंने 1983, नई दिल्ली, 1993 में मॉरीशस एवं 1999 में लंदन में हुए क्रमशः तृतीय, चतुर्थ एवं छठे विश्व हिंदी सम्मेलनों में सक्रिय भागीदारी की और वहाँ अपने रचनाओं का वाचन किया।

डॉ. तोमियो मिजोकामि की हिंदी नाटकों का निर्देशन व सृजन विदेशी साहित्यकारों व हिंदी–प्रेमियों में प्रमुख मानी जाती है, विशेषकर नाटक और हिंदी रचनाओं का जापानी में अनुवाद कार्य। इसके अतिरिक्त भारतीय संस्कृति, कला व साहित्य के

प्रचार–प्रसार व विदेशों में हिंदी सिखाने के कार्य के लिए उन्हें केंद्रीय हिंदी संस्थान आगरा से दिया जाने वाला स्वामी विवेकानंद पुरस्कार विदेशी हिंदी सेवक के कारण प्रदान किया गया। वहीं पर 2018 में उन्हें उनके द्वारा दिए गए शिक्षा व साहित्य के योगदान के लिए भारत के तत्कालीन राष्ट्रपति रामनाथ कोविंद जी ने पद्मश्री से सम्मानित किया। ऐसे हिंदी सेवक को भारत और जापान के मध्य समन्वय–सेतु कहना अतिश्योक्ति तो नहीं कहा जा सकता है।

❑❑❑

हिंदी फिल्मों का भाषिक परिप्रेक्ष्य

विजय कुमार मिश्र

अक्सर फिल्म को फंतासी बताकर उसे खारिज करने की कोशिश की जाती है, दरअसल ऐसा करते समय लोग यह भूल जाते हैं कि फिल्म और जीवन में अंतर है। ऐसा करके हम सिनेमा की शक्ति को कमतर करके देखते हैं। बेशक फिल्म जीवन नहीं है, यह जीवन का आह्वान है, यह जीवन के साथ चल रहे संवाद से संबद्ध होता है। जीवन के साथ इस संवाद के लिए उसकी अपनी विशिष्ट भाषा है।

सिनेमाई भाषा क्या है? इसका गठन किन–किन तत्वों के आधार पर होता है। यह भाषा अपना स्वरूप किस प्रकार ग्रहण करती है? ये विचारणीय मुद्दे हो सकते हैं। सिनेमाई संवाद सिनेमाई भाषा का ही एक घटक है इसलिए वह सिनेमाई भाषा को प्रभावित करता है और स्वयं भी प्रभावित होता है।

जहाँ तक हिंदी सिनेमा की भाषा का प्रश्न है तो हम जानते ही हैं कि पहली बोलती फिल्म 'आलम आरा' की भाषा उर्दू मिश्रित हिंदी थी। हिंदी सिनेमा के प्रारंभिक वर्षों में पौराणिक–धार्मिक विषयों पर ही अधिकतर फ़िल्में बनीं इसीलिए इनकी भाषा में संस्कृतनिष्ठ शब्दों का प्रयोग ज्यादा रहा है। बाद में हिंदी और उर्दू के मिश्रित स्वरूप वाली भाषा स्वीकृत होती गई, जिसे हिंदुस्तानी भाषा कहा गया।

हिंदी सिनेमा की भाषा के संबंध में हिंदी उर्दू की बहस लगातार चलती रही है। कभी किसी लेख में मैंने पढ़ा था कि हिंदी फिल्मों के सुप्रसिद्ध गीतकार साहिर लुधियानवी ने 1960 के दशक में एक बार एक मुशायरे में कहा था कि हिंदी फिल्मों की भाषा 97 फीसदी उर्दू है। इसके बाद माधुरी पत्रिका में 'फिल्मेश्वर' नाम से एक व्यक्ति की चिट्ठी छपी जिसका शीर्षक था – 'हिंदी और उर्दू के नाम पर नफरत के शोले भड़काने वाले अवसरवादी साहिर के नाम एक खुला पत्र।' चिट्ठी का शानदार पहलू यह था कि इसमें यह कहा गया कि साहिर फारसी लिपि में लिखे होने के कारण जिसे उर्दू समझ रहे हैं वह दरअसल हिंदी ही है। साहिर की इस सोच को अंग्रेजी–लेखन से जुड़े अनेक लोगों ने भी आगे चलाया कि हिंदी–सिनेमा की भाषा

मुख्य रूप से उर्दू रही है। उदाहरण के तौर पर मुकुल केशवन द्वारा लिखा गया एक आलेख जिसे बार–बार उद्धृत किया जाता रहा है – उर्दू, अवध एंड तवायफ– द इस्लामिक रुटस् ऑफ हिंदी सिनेमा। यह आलेख यही साबित करने के लिए लिखा गया है कि–

"हिंदी–सिनेमा का महल बहुमंजिला तो है लेकिन इसका स्थापत्य इस्लामी रूपाकारों से प्रेरित है। इन इस्लामी रूपाकारों का सबसे प्रकट उदाहरण है उर्दू। विडंबनापूर्ण लेकिन सच बात यह है कि आजाद भारत में उर्दू का आखिरी मजबूत मकाम हिंदी–सिनेमा ही साबित हुआ, भाषाई हठधर्मिता के सागर में उर्दू का आखिरी स्वर्ग और जो ऐसा हुआ तो यह सही ही है क्योंकि हिंदी सिनेमा की काया उर्दू की जबांदानी और लोकाचारी संस्कारों से बनी है।"[1]

इसी सोच का विस्तार नसरीन मुन्नी कबीर की किताब 'टॉकिंग फिल्म्स : कॉन्वर्सेशंस ऑन हिंदी सिनेमा विद जावेद अख्तर' में मिलता है। इसमें जावेद अख्तर कहते हैं–

"चूँकि हिंदुस्तानी टॉकी ने अपना बुनियादी ढाँचा उर्दू फारसी थियेटर से ही लिया इसलिए टॉकी उर्दू से ही शुरू हुई। यहाँ तक कि कलकत्ता का न्यू थियेटर्स तक भी उर्दू के लेखकों को ही रखता था। देखिए, बात ये थी कि आजादी से पहले उर्दू शुमाली हिंदुस्तान के शहरों की संपर्क भाषा थी और ज्यादातर लोग इसको समझते थे। इसके अलावा ये पहले भी एक बेहद नफीस जबान थी जिसमें हर तरह के जज्बात और ड्रामे को दिखाया जा सकता था और आज भी ये उतनी ही नफीस जबान है।"[2]

अब सवाल यह है कि हिंदी सिनेमा और भाषा के इस महत्वपूर्ण प्रश्न को जिस सोच और कोण के साथ उछाला गया उसका इस आधार पर जोरदार खंडन या विरोध क्यों नहीं किया गया कि हिंदी–सिनेमा की मूल धारा हिंदू–धर्मकथाओं पर आधारित फिल्मों की रही है और उनकी संवाद–भाषा आजादी से पहले और बाद में भी संस्कृत की तरफ झुकी रही। और यह भी कि पारसी थिएटर और उस दौर के चंद उर्दू पसंद फिल्मकारों ने इसमें परिवर्तन का प्रयास किया जो भारतीय जनमानस की मूल वृत्ति और प्रवृत्ति के अनुरूप नहीं होने के कारण सफल नहीं हुआ। संस्कृत और भारतीय पौराणिक कथा संबंधी यह धारा इतनी प्रबल थी कि जिस दशक में सलीम जावेद के संवादों के आधार पर शोले फिल्म बनी उसी दशक में हरिदर्शन और जय संतोषी माँ जैसी फिल्मों ने अभूतपूर्व सफलता पाई।

दरअसल कालांतर में पारसी थिएटर की भाषा का हिंदी सिनेमा पर व्यापक प्रभाव पड़ा। पारसी थिएटर की भाषा हिंदुस्तान की आम बोलचाल की भाषा थी, जो व्यापक जनसमूह से संबद्ध थी। आगे भी हिंदी फिल्मों में पारसी थिएटर की भाषा की परंपरा कायम रही। यह बात अलग है कि विगत कुछ दशकों से हिंदी सिनेमा में पंजाबी और

अंग्रेजी के शब्दों का प्रयोग तेजी से बढ़ा है। इस संबंध में जवरीमल पारख ने लिखा है–

"पारसी थिएटर ने हिंदी–उर्दू विवाद से परे रहते हुए बोलचाल की एक ऐसी भाषा की परंपरा स्थापित की जो हिंदी और उर्दू की संकीर्णताओं से परे थी और जिसे हिंदुस्तानी के नाम से जाना गया। यह भारतीय उपमहाद्वीप के एक बड़े हिस्से में संपर्क भाषा के रूप में विकसित हुई थी। हिंदी सिनेमा ने आरंभ से ही भाषा के इसी रूप को अपनाया। इस भाषा ने ही हिंदी सिनेमा को गैर हिंदी भाषी दर्शकों के बीच लोकप्रिय बनाया। यह दृष्टव्य है कि भाषा का यह आदर्श उस दौर में न हिंदी वालों ने अपनाया न उर्दू वालों ने। साहित्य की दुनिया में इसे प्रेमचंद ने ही न सिर्फ स्वीकार किया बल्कि इस भाषा का रचनात्मक और कलात्मक परिष्कार भी किया। बाद में साहित्य के प्रगतिशील आंदोलन ने भाषा के इस आदर्श को अपना वैचारिक समर्थन भी दिया और उसका विकास भी किया। लेकिन यहाँ यह रेखांकित करना जरूरी है कि हिंदी–उर्दू सिनेमा का भाषाई आदर्श इसी पारसी थिएटर की परंपरा का विस्तार था और इसी वजह से जिसे आज हिंदी सिनेमा के नाम से जाना जाता है, उसे हिंदुस्तानी सिनेमा ही कहा जाना चाहिए।"[3]

हिंदी फिल्म जगत दरअसल भारत की बहुलतावादी संस्कृति के अनुरूप एक बहुभाषी दुनिया है। हिंदी, उर्दू, फारसी, अंग्रेजी, पंजाबी आदि विविध भाषाओं का सहज प्रयोग हिंदी फिल्मों में होता रहा है। मुगल शहज़ादा सलीम जब कहता है कि 'मुझपे जुल्म ढाते हुए आपको जरा सोचना चाहिए कि मैं आपके जिगर का टुकड़ा हूँ कोई गैर या गुलाम नहीं' तो उसके सामने राजस्थान की भाषिक तहजीब के अनुकूल जोधा कहती है 'नहीं सलीम नहीं, तुम हमारी बरसों की प्रार्थनाओं का फल हो'। इस फिल्म में एक ओर जहाँ 'जब रात है ऐसी मतवाली तो सुबह का आलम क्या होगा' जैसे गीत हैं तो 'मोहे पनघट पे नंदलाल छेड़ गयौ री' जैसे गीत भी हैं। दोनों ही संवादों और गीतों के भाषिक स्तरों के आधार पर हिंदी फिल्मों के भाषिक वैविध्य से काफी हद तक परिचित हुआ जा सकता है।

देशकाल, व्यावसायिकता आदि को ध्यान में रखते हुए हिंदी फिल्मों की भाषा में समय–समय पर होने वाले परिवर्तनों को सहज ही महसूस किया जा सकता है। खेती–किसानी और ग्रामीण पृष्ठभूमि पर बनने वाली फिल्मों की भाषा में जहाँ देशज शब्दों की बहुलता रही है तो शहरों पर केंद्रित फिल्मों की भाषा उससे अलग रही है। 'मदर इंडिया', दो बीघा जमीन की भाषा वैसी नहीं थी जैसी शहरी महिला के संघर्ष पर आधारित फिल्म 'औरत' थी। इन फिल्मों के संवाद की भाषा के साथ ही उसके गीत–संगीत में भी स्थानीयता का प्रभाव स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है। 90 के दशक के बाद तब जबकि अनेक प्रयोगधर्मी फ़िल्में बनने लगीं जिन पर क्षेत्रीय भाषाओं

का असर दिखता है। 'तन्नू वेड्स मन्नू' में 'हरियाणवी', 'बाजीराव मस्तानी' में 'मराठी', 'गैंग्स ऑफ़ वासेपुर' में 'भोजपुरी', 'पान सिंह तोमर' में 'ब्रजभाषा', 'उड़ता पंजाब' में 'पंजाबी' आदि क्षेत्रीय भाषाओं और बोलियों के शब्दों का जिस तरह से रचनात्मक प्रयोग हुआ है वह काबिले गौर है।

असल में हिंदी फिल्मों में क्षेत्रीय भाषाओं और बोलियों के शब्दों के प्रयोग से उनकी पहचान और पहुँच को तो विस्तार और लोकप्रियता मिली ही सिनेमा का व्याप भी बढ़ा। हिंदी फिल्मों में भारतीय भाषाओं, जनपदों की बोलियों और शब्दों के प्रयोग की तो सुदीर्घ परंपरा रही ही है किंतु पिछले कुछ दशकों से जिस तरह से अंग्रेजी का प्रभाव बढ़ा है वह भी विचारणीय है। शहरीकरण, वैश्वीकरण, मल्टीप्लेक्स कल्चर आदि ने इसको प्रोत्साहित करने का कार्य किया है। प्रवासी भारतीयों को ध्यान में रखकर भी इस तरह के प्रयोग किए गए, हालाँकि यह अलग बात है कि पंजाब और गुजरात जैसे राज्यों से विदेशों में जाने वाले भारतीयों की बढ़ती संख्या और प्रभाव के कारण हिंदी फिल्मों में गुजराती और पंजाबी जैसी भाषाओं के शब्द, संवाद और गीतों में भी काफी इज़ाफा हुआ है।

बहरहाल, सिनेमा की भाषा केवल शब्द या संवाद ही नहीं है, इसकी भाषा वह भी है जिसे निर्देशक कैमरे से, प्रकाश से, नृत्य से, शारीरिक हाव–भाव और ध्वनि से व्यक्त करता है। फिल्म निर्देशक कैमरे के एंगल, उसकी गति (मूवमेंट्स), संगीत, गीत, प्रकाश, ध्वनि, अभिनय, रंग, ड्रेस, लोकेशन आदि कई माध्यमों से अपना संदेश दर्शकों तक संप्रेषित करता है। संवाद उसका एक हिस्सा होता है लेकिन उसका स्थान बहुत बाद में आता है। सिनेमा की भाषा के रूप में संवाद का महत्व बॉलीवुड में अधिक है, जबकि हॉलीवुड की फिल्मों में संवाद कम होते हैं। हिंदी सिनेमा इतिहास की कई फिल्में ऐसी हैं जिनमें संवाद की तुलना में अन्य माध्यमों से संप्रेषण का प्रयास अधिक किया गया है। साहित्य में जो बात कई पन्ने रंग कर कही जाती है उसी बात को सिनेमा कुछ दृश्यों के माध्यम से आसानी से कह देता है।

'मुग़ल–ए–आज़म' फ़िल्म का एक दृश्य जिसमें संवादों के माध्यम से कम और ध्वनि व कैमरे के एंगल से बहुत कुछ कहा गया है। फिल्म के इस दृश्य में अनारकली और शहजादा सलीम बगीचे में बैठे हैं। उसी समय बादशाह अकबर के आने की घोषणा होती है। बादशाह अकबर के आने की खबर सुनकर अनारकली एक डरी हुई हिरणी की तरह बाहर भागती है और सामने बादशाह को देखकर वापस आती है। वह सलीम की मोतियों की माला पकड़कर झूलती हुई बेहोश हो जाती है। मोतियों के टूटकर बिखरने की ध्वनि बहुत कुछ कहती है। मोतियों की माला का टूटकर बिखरना अनारकली के सपनों का टूटकर बिखरना है। मोतियों के टूटकर बिखरने से जो संदेश मिलता है उसे शब्दों में व्यक्त नहीं किया जा सकता और यदि उसे शब्दों में व्यक्त

किया भी जाए तो भी दर्शक पर अधिक प्रभाव नहीं पड़ेगा। सलीम, अनारकली और अकबर के चेहरे के भावों का वर्णन साहित्य शब्दों के माध्यम से कर सकता है लेकिन सिनेमा उन्हें दिखाता है।

सिनेमा की भाषा का यह वैशिष्ट्य है कि वह संगीत, प्रकाश, ध्वनि, रंग, लोकेशन, कैमरे का कोण, वेशभूषा, अभिनय सब कुछ सिनेमा की भाषा से जुड़कर संदेशों को संप्रेषणीय बनाते हैं। प्रायः सफल निर्देशक संवादों से अधिक उपरोक्त उपकरणों के माध्यमों से व्यक्ति करते हैं। जब सिनेमा किसी भी साहित्यिक कृति के आधार पर बनता है तब सिनेमा की भाषा के और भी आयाम सामने आते हैं। असल में साहित्यिक कृति के सिनेमाई रूपांतरण के क्रम में उस कृति की भाषा में परिवर्तन भी स्वाभाविक ही है। साहित्यिक भाषा की उच्चता, गरिमा और काव्यमयता को उसी रूप में फिल्म में बनाए रखना अत्यंत ही कठिन हो जाता है। साहित्यिक भाषा में प्रयुक्त शब्दचित्र फिल्म में चाक्षुष बिंब में परिवर्तित हो जाता है।

साहित्यिक कृतियों के सिनेमाई रूपांतरण के क्रम में अनेक स्थलों पर लेखक के द्वारा दिए गए वर्णनों को भी बिंब के रूप में फिल्माना पड़ता है। अलंकार, छंद, प्रतीक आदि के जरिए साहित्य में प्रयुक्त भाषा के फिल्मों में प्रयोग की अपनी एक सीमा है। साहित्य और सिनेमा की भाषाई विशिष्टता और सीमाओं पर प्रकाश डालते हुए डॉ. सुरेंद्र नाथ तिवारी लिखते हैं–

"फिल्म की भाषा का ठोस आधार बिंब है लेकिन फिल्म में बिंब सामने घटित होता दिखाई पड़ता है जबकि साहित्य में बिंब की अनुभूति उसके मानसिक संवेदना के कारण होती है। अतः दोनों रूपों में बड़ा अंतर है। फिल्म में बिंब निर्माण संवेदन पर आधारित न होकर एक मशीन द्वारा निश्चित स्थान और समय में अभिलिखित (रेकार्डिड) होते हैं। इसलिए फिल्म की भाषा की संपूर्णता कैमरा, ध्वनि यंत्र (माईक) और इन दोनों के संकलन (एडीटिंग) पर निर्भर होती है। सिनेमा की भाषा वही है जो इन तीनों साधनों के माध्यम से निखरकर आती है। अतः फिल्म, लेखन और मशीन के समन्वय द्वारा निर्मित कला रूप है।"[4]

साहित्य की भाषा को फिल्म की भाषा में बदलने से पहले परिवर्तन की आवश्यकता को लगभग सभी आलोचकों और विशेषज्ञों ने स्वीकार किया है। भाषाई भेद और भाषिक सौंदर्य भिन्नता की इन प्रवृत्तियों के चलते पाठकों एवं दर्शकों की रुचि के अनुकूल न होने का प्रश्न भी इसी से जुड़ा हुआ है। इसी बात को अधिक विस्तार से बताते हुए विवेक दुबे लिखते हैं .

"ऐसी कहानियाँ अथवा उपन्यास जिनका अधिकांश सौंदर्य उनकी भाषा शैली में निहित हो वे भी फिल्मांतरण के अनुकूल नहीं होते क्योंकि फिल्मांतरण की प्रक्रिया में उनका सारा भाषाई सौंदर्य जाता रहता है। परिणामस्वरूप ऐसी साहित्यिक कृति का

फिल्मांतरण देखकर पाठकों को निराशा ही हाथ लगती है। फिल्म चूँकि चाक्षुष माध्यम है अतः उसमें किसी साहित्यिक कृति के भाषाई सौंदर्य को बचाए रख पाना न तो संभव है और न वांछनीय। अधिक से अधिक यही किया जा सकता है कि उस कृति के संवादों का सौंदर्य बनाए रखा जाए किंतु इसकी भी अपनी सीमाएँ हैं क्योंकि उपन्यास के सभी संवाद तो फिल्म में नहीं लिए जा सकते और यदि सिद्धांत रूप में इस बात को स्वीकार भी कर लें कि सभी संवादों को फिल्म में लिया जा सकता है तो भी मूल कृति का भाषाई सौंदर्य अथवा चमत्कार फिल्म में नहीं आ सकेगा क्योंकि वह तो बहुत बड़ी सीमा तक लेखक की वर्णन शैली में निहित होता है और वर्णन शैली को फिल्मांतरित कर पाना किसी प्रकार भी संभव नहीं है।''[5]

यदि हम सत्यजीत राय द्वारा निर्मित फिल्म 'शतरंज के खिलाड़ी' की भाषा और संवाद की बात करें तो राय हिंदी और उर्दू से उस हद तक परिचित न होने के बावजूद फिल्म की भाषा और संवाद को साधने में बेहद सफल रहे। ध्यातव्य हो कि राय हिंदी और उर्दू से सर्वथा अपरिचित थे, फिर भी राय की इस फिल्म में भाषा के अनेक स्तर पाए जाते हैं। यहाँ तक कि इस फिल्म में बोलियों तक का प्रयोग हुआ है। सत्यजीत राय किताबी भाषा और संवाद में जरूरी और फिल्मानुकूल परिवर्तन करते थे। वे सर्वदा इन फिल्मों के संवाद स्वयं लिखते थे या मूल कृति के संवाद में जरूरी संशोधन करते थे। 'शतरंज के खिलाड़ी' में भी उन्होंने अपने उर्दू के विशेषज्ञ परामर्शदाताओं के सहयोग से अत्यंत बारीकी से कार्य किया और प्रत्येक पात्र के वर्ग, जाति, चरित्र आदि कारकों को ध्यान में रखकर उसके संवादों की रचना की। यही कारण है कि वे फिल्म के संवाद और वॉयस ओवर की भाषा को इतनी पात्रानुकूल व प्रभावशाली बनाने में सफल रहे। अपनी भाषा, संवाद आदि के संदर्भ में सत्यजीत राय ने खुद ही लिखा है–

"मैं अपने संवाद, डायलॉग बोलने के अभिनेता के खास अंदाज को ध्यान में रखकर लिखता हूँ। साथ ही पात्र का ध्यान तो रहता ही है। वस्तुतः यह दोनों का समुच्चय होता है। किसी भी चीज को कहने के एक से अधिक ढंग हैं। आप वही ढंग चुनते हैं जो अभिनेता पर सबसे सही बैठेगा।''[6]

उपन्यास अथवा साहित्यिक कृति की भाषा और फिल्मों की भाषा की भिन्नता और बदलाव की प्रक्रिया के बीच ही फिल्मों में संवादों के लिखने की प्रक्रिया अपनाइ जाती है। 'शतरंज के खिलाड़ी' के संवादों का भाषाई कसाव अत्यंत ही निखरा हुआ है। पारस्परिक संवादों में उर्दू का प्रयोग बहुतायत है। पात्रों के संवादों में लखनवी अंदाज और लोक भाषा के पुट को सहज ही देखा जा सकता है। इस फिल्म के संवादों में स्थानीय बोलियों के उपयोग को भी खूबसूरती के साथ प्रस्तुत किया गया। उदाहरण के लिए –

"सरकार दुल्हन बेगम बुलाइन हैं।''

मिरजा – क्या बात है?

"अब हम ई का जाने सरकार''

मिरजा – कह दो आते हैं।

"कहिन सर माँ बोहत दर्द है, तुरंत बुलाइन''[7]

इसी प्रकार सत्यजीत राय की प्रेमचंद की कहानी पर बनाई फिल्म 'सद्गति' के संवाद और भाषा तथा उनकी बिंब योजना के संदर्भ में विनोद दास लिखते हैं .

"सत्यजीत राय की फिल्म–भाषा में बिंबों की केंद्रीय भूमिका होती है। दर्शक के संवेदन–स्त्रोतों को उत्तेजित करने और उन्हें अपने सृजनात्मक अनुभवों के अंतरंग में शामिल करने के लिए बिंब उनका सर्वाधिक प्रिय उपकरण है। वे अपनी प्रत्येक फिल्म में कुछ बिंब सृजित करते हैं और उनकी आवृत्ति से मनुष्य की सहज वृत्तियों, हर्ष, दया, प्रेम, घृणा और करुणा आदि को जगाकर दर्शकों के मन–मस्तिष्क को उद्वेलित करते हैं।"[8]

समग्रता में देखें तो शब्द और संवाद के अतिरिक्त सिनेमा की भाषा के अपने अनेक तत्व हैं और उन तत्वों के सहारे सिनेमा सर्वाधिक संप्रेषणीय माध्यम के रूप में हमारे सामने है। संवादों की भाषा की दृष्टि से हिंदी सिनेमा ने हिंदी के साथ–साथ भारत की प्रांतीय और विदेशी दोनों प्रकार की भाषाओं को बड़ी तेजी से आत्मसात किया है। किंतु यहाँ यह प्रश्न बेहद महत्वपूर्ण है कि भाषा केवल संप्रेषण ही नहीं हमारी अस्मिता से भी अनिवार्यतः संबद्ध होती है। ऐसे में यह जरूरी है कि इतने प्रभावशाली माध्यम की भाषा सुरुचिपूर्ण और हमारे देश के गौरव एवं परंपराओं के अनुरूप ही हो। यह भाषा शिक्षण का कार्य भी करता है, अतः यह जरूरी है कि हिंदी फिल्मों की भाषा हिंदी के भाषिक संस्कार के अनुरूप हो। उसका अपना विशिष्ट भाषिक बहाव हो सकता है किंतु वह तटों को तोड़ने वाली न हो बल्कि पाटों के मध्य चलने वाली हो। इस कोण से देखें तो हिंदी सिनेमा की वर्तमान स्थिति संतोषजनक नहीं मानी जा सकती। हिंदी फिल्म जगत से जुड़े फिल्मकारों एवं कलाकारों का यह दायित्व है कि वे इस दिशा में अधिक संवेदनशीलता का परिचय दें और स्थिति में गुणात्मक परिवर्तन के लिए ठोस कदम उठाएँ।

संदर्भ सूची :

1. हिंदी सिनेमा की भाषा – एक के भीतर अनेकः चंदन श्रीवास्तव, https://tirchhispelling.wordpress.com/2013/02/01
2. सिनेमा के बारे में, नसरीन मुन्नी कबीर (जावेद अख्तर से बातचीत), राजकमल प्रकाशन प्रा. लि., चौथा संस्करण 2022, पृष्ठ 55,
3. जवरीमल पारख, समयांतर, जुलाई 2012

4. सुरेंद्र नाथ तिवारी, साहित्यिक कृति के फिल्म में रूपांतरण की समस्या–शतरंज के खिलाड़ी के संदर्भ में
5. विवेक दुबे, हिंदी साहित्य और सिनेमा, संजय प्रकाशन, नई दिल्ली, वर्ष 2009, पृ. 213
6. रॉबिंसन एंड्रयू, सत्यजीत राय, द इनर आई, ऑक्सफ़ोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, नई दिल्ली, 2004,पृ. 309
7. फिल्म, शतरंज के ख़िलाड़ी, सत्यजीत रे, वर्ष 1977
8. विनोद दास, भारतीय सिनेमा का अंतःकरण, मेधा बुक्स, दिल्ली, संस्करण 2003, पृ. 2

❑❑❑

आदिकाल से हिंदी की विकास यात्रा

वाय. जी. काले

अभिनय कुमार शर्मा

भाषा में रचनात्मक क्षमता तभी तक होती है, जब तक वह लोकसामान्य के अनुभव से जुड़ी रहती है। भाषा जब लोकजीवन से अलग होकर कुछ वर्ग तक सीमित होने लगती है, तब उसमें एक प्रकार की जड़ता आने लगती है। फिर रचनात्मक प्रतिभा उस जड़ता को त्यागकर नए मनोभाव के अनुकूल नई भाषा की रचना करती है। उदाहरण के लिए हम रीतिकालीन भाषा के विरुद्ध खड़ीबोली की प्रतिष्ठा का उद्धरण दे सकते हैं। रीतिकाल के जीवन के प्रति यथास्थितिवादी दृष्टिकोण ने भाषा को जड़ बना दिया था। इसलिए आधुनिक संवेदना के विकास के साथ भाषा परिवर्तन अनिवार्य हो गया। इसी प्रकार की घटना आदिकालीन भाषा में भी घटित हुई। प्राकृत जबसे पुस्तकों की भाषा हो गई, उसी समय से बोलचाल की भाषा ने नया रूप ले लिया। इस भाषा को अपभ्रंश भाषा कहा गया। लेकिन एक बात जिसपर ध्यान देना चाहिए, वह यह है कि जब तक वह बोलचाल की भाषा थी तब तक उसे देशभाषा कहा जाता था, लेकिन जब वह साहित्य की भाषा हो गई तब उसका नाम अपभ्रंश चल पड़ा। देशभाषा से अलग होकर अपभ्रंश, साहित्य की अभिव्यक्ति की भाषा हो गई। भाषा जब देशभाषा से अलग हुई तो उसमे शास्त्रीयता जैसी प्रवृत्ति पनपने लगी। अपभ्रंश के आचार्य हेमचंद्र दो प्रकार की अपभ्रंश भाषा की बात करते हैं। प्रथम प्रकार की वह अपभ्रंश भाषा जिसका व्याकरण उन्होंने स्वयं लिखा था। इस अपभ्रंश भाषा में जैन कवियों और आचार्यों ने रचना की थी, इसके साथ ही एक दूसरे प्रकार की अपभ्रंश भाषा भी प्रचलित हो रही थी। इसे हेमचंद्र ने ग्राम्यभाषा कहा हैं। बौद्ध सिद्धों के दोहे और 'संदेशरासक' जैसे काव्य इस ग्राम्य भाषा के उदाहरण हैं। ग्राम्यभाषा में रासक और डोम्बिका आदि लोकप्रचलित गेय और अभिनेय काव्य लिखे जाते थे। इसी भाषा का आगे चलकर हिंदी भाषा के रूप में विकास हुआ। हिंदी भाषा के प्रारंभिक रूप की जानकारी भी इन्हीं रचनाओं से मिलती है। स्वयं आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने लिखा है–

"अपभ्रंश या प्राकृतभास् हिंदी के पदों का सबसे पुराना पता तांत्रिक और योगमार्ग बौद्धों की सांप्रदायिक रचनाओं के भीतर विक्रम की सातवीं शताब्दी के अंतिम चरण में लगता है।"

ग्यारहवीं सदी के पहले से ही भारत पर मुसलमानों के आक्रमण होने लगे थे और लगभग दो सौ वर्षों में उन्होंने संपूर्ण भारत पर अपना अधिकार कर लिया था। वैसे तो उस समय उनकी अपनी भाषा या राजभाषा फारसी थी किंतु भारतीयों के साथ व्यवहार एवं संपर्क करने के लिए उस समय प्रचलित प्राचीन हिंदी को ही साधन –माध्यम बनाया गया। धीरे–धीरे आदिकाल के आगामी वर्षों में इसी प्राचीन हिंदी से अनेक रूप सामने आए। इन्ही रूपों में से एक रूप 'डिंगल' था जिसका संबंध राजस्थानी साहित्य से है। हिंदी भाषा का दूसरा रूप भी विकसित हुआ जिसे 'पिंगल के नाम से अभिहित किया गया। 'पिंगल' वस्तुतः मध्यदेश की साहित्यिक ब्रजभाषा का ही एक रूप है। इसी युग में 'डिंगल', 'पिंगल' के अतिरिक्त हिंदी का एक तीसरा रूप भी देखने को मिलता हैं जिसे विद्वानों ने 'हिंदवी' के नाम से पुकारा। हिंदी के इस रूप को हम तेरहवीं शती के आसपास अमीर खुसरों के साहित्य में देख सकते हैं। यह हिंदी भाषा के रूप से अलग हैं। वास्तव में यह भाषा का वह रूप है जो उस युग की सामान्य जनता प्रयोग में लाती होगी।

आदिकालीन हिंदी साहित्य के विकास में उस समय उपलब्ध धार्मिक साहित्य जैसे जैन, बौद्ध, नाथ, सिद्ध आदि का बहुत बड़ा योगदान परिलक्षित होता है। जैन साहित्य का अध्ययन करने से पता चलता है कि उसकी भाषा हिंदी के आदिकालीन स्वरुप का परिचय देती है। प्राचीन हिंदी के अंतर्गत बौद्धों एवं सिद्धों के साहित्य में पश्चिमी एवं पूर्वी अपभ्रंश के शब्दों का मिला –जुला रूप देखने को मिलता है। हिंदी के प्राचीन रूप को विकास की ओर अग्रसर करने में आदिकालीन रासो साहित्य का भी महत्वपूर्ण योगदान है। इस क्षेत्र में 'बीसलदेव रासो' ओर 'पृथ्वीराज रासो' का विशेष महत्व है। 'बीसलदेव रासो' की भाषा में डिंगल तथा पिंगल दोनों ही भाषाओं के रूप दृष्टिगत होते हैं परंतु 'पृथ्वीराज रासो' की भाषा में कहीं हिंदी, कहीं राजस्थानी मिश्रित हिंदी, कहीं ब्रजभाषा के रूप,कहीं विकृत अपभ्रंश के रूप उपलब्ध होते हैं।

तेरहवीं शताब्दी के आसपास विकसित हिंदी के एक अन्य रूप 'हिंदवी' की झलक हमें अमीर खुसरो के साहित्य में दिखाई देती है। 'खुसरो की पहेलियाँ', 'ढकोसले', 'दो/सखुन' आदि में हिंदी के सरल स्वाभाविक एवं बोलचाल की भाषा के रूप के दर्शन होते हैं। उदाहरण के लिए–

दो /सखुन
सितार क्यों न बजा?
औरत क्यों न नहाई –परदा न था!

अमीर खुसरो नस्ल से तुर्क होते हुए भी उनको भारतीयता भरपूर मिली थी। उन्हें 'हिंदवी' (हिंदी) मातृभाषा विरासत में मिली थी। भारतीय होने पर उन्हें गर्व था;

तर्क हिंदुस्तानियम मन हिंदवी गोयम जवाब।

(मैं हिंदुस्तानी तुर्क हूँ, हिंदवी में जवाब देता हूँ।)

'नुह सिपेहर' शीर्षक ग्रंथ के तीसरे में उल्लेख किया गया है कि अन्य भाषाओं के समान हिंदुस्तान में प्राचीन काल में 'हिंदवी' बोली जाती थी, किंतु गोरियों और तुर्कों के पश्चात लोगों ने फारसी भाषा का ज्ञान भी प्राप्त करना प्रारंभ कर दिया। खुसरो ने इस भाषा को हिंदवी, देहलवी भी कहा है। खुसरो के अतिरिक्त दक्खिनी के कवि शराफ ने 'नौसर्हार' (1503 ई.) में इस भाषा को हिंदवी कहा है।

हिंदवी के साथ 'हिंदुई' रूप भी मिलता है जिसका स्पष्ट उल्लेख "कुतुब शतक' (15वीं) शती में मिलता है। हिंदुई नाम का सबसे पुराना उल्लेख सुप्रसिद्ध भारतीय फारसी कवि मुहम्मद औफ़ी (1228 ई.) में मिलता है। स्पष्ट रूप से 'हिंदुई', हिंदी शब्द का पूर्व रूप सिद्ध होता है। हिंदी साहित्य के अनेक साहित्यकारों ने अमीर खुसरो को हिंदवी का पहला कवि माना है। खुसरो तेरहवीं शताब्दी के कवि थे जो निश्चित रूप से गोरखनाथ के बाद के हैं। खुसरो की 'भाषा, विशेषतः पहेलियों – मुकरियों की भाषा में खड़ीबोली का वही रूप है जो विद्यमान है, साहित्यिक मानक हिंदी से मेल खाती है। डॉ. भोलानाथ तिवारी ने यह माना है कि 'हिंदी' शब्द का प्रयोग भारतीय मुसलमानों के लिए होता था जबकि 'हिंदी' शब्द का 'मध्यदेशीय भाषा' के लिए। इस प्रकार यह स्पष्ट हो जाता कि अमीर खुसरो ने जिस भाषा (हिंदवी) में अपनी 'मुकरियाँ', 'दो सखुने', 'निसबत', 'ढकोसला', 'पहेलियाँ' आदि लिखीं वही भाषा में उन्होंने कई प्रयोग भी किए। बिखरी हुई सामग्री के अतिरिक्त 'खालिकबारी' की रचना भी मिलती है जिसका प्रकाशन नागरी प्रचारणी सभा से हो चुका है।

चौदहवीं शताब्दी में मुसलमान शासकों द्वारा दक्षिण भारत पर भी आक्रमण होने से इन शासकों के साथ मौलवी एवं व्यापारियों आदि का भी दक्षिण भारत में आगमन हो गया। उस समय राजधानी के आसपास बोली जाने वाली भाषा को ये लोग अपने साथ ले गए। अब दक्षिण भारत के निवासियों के साथ व्यवहार एवं जनसंपर्क के लिए एक ऐसी भाषा का रूप विकसित हुआ जिसमें दक्षिण भारत की भाषाओं के शब्द भी आ गए। धीरे –धीरे भाषा के इस रूप को स्थिरता मिली और यही भाषा आगे चलकर 'दक्खिनी हिंदी' के नाम से जानी जाने लगी।

आधुनिक युग में हिंदी की विकास यात्रा

इस युग में हिंदी न केवल साहित्यिक सृजन का सशक्त माध्यम बनी बल्कि अपनी विकास – यात्रा में हिंदी भाषा ने देश की राजभाषा का प्रतिष्ठित स्थान प्राप्त किया और शिक्षा, जनसंचार आदि विविध क्षेत्रों में उसके प्रकार्यों का विस्तार हुआ। सन 1790 तक जॉन बोर्थविक गिलक्राइस्ट नामक अंग्रेज अधिकारी ने 'अंग्रेजी और

हिंदुस्तानी' कोश के दो भाग प्रकाशित किए। हिंदी के लिए इससे अधिक और क्या गौरव की बात थी कि वह उस समय संपर्क भाषा के रूप में विद्यमान थी। 'न्यू टेस्टामेंट' (बाइबिल) का प्रथम हिंदी अनुवाद सन 1807 में प्रकाशित हुआ। कप्तान टेलर ने वर्ष 1805 में सर्वप्रथम हिंदी का प्रयोग आधुनिक अर्थ में किया। वर्ष 1816 के अध्यादेश में अनेक परिवर्तन हुए जिसके फलस्वरूप वर्ष 1825 में विलियम प्राइस ने (जो फोर्ट विलियम कॉलेज, कलकत्ता में हिंदी और हिंदुस्तानी विभाग के अध्यक्ष थे) पहली बार हिंदी भाषा को हिंदुस्तानी से पृथक, एक प्रमुख देशी भाषा के रूप में स्वीकार किया। 26 फरवरी 1824 को फोर्ट विलियम से प्रकाशित सामग्री में ये सूचना महत्वपूर्ण है–

"यह संतोष का विषय है कि संस्था से संबंधित विद्यार्थियों की एक पर्याप्त संख्या हिंदी के अध्ययन की ओर विशेष ध्यान दे रही है। उनकी प्रगति, इस भाषा में, आशा से अधिक दिखाई देती है।"

(डॉ शारदा वेदालंकार की पुस्तक से,पृ. 120)

इसी समय वर्ष 1826 में वहाँ के पंडित गंगाप्रसाद शुक्ल ने हिंदी भाषा का शब्दकोश संकलित किया। इससे पहले कैप्टन टेलर ने वर्ष 1808 में हिंदुस्तानी – अंग्रेजी कोश बनाया था और विलियम हंटर ने इसे दोहराया था। विलियम प्राइस ने 'प्रेमसागर के मुख्य शब्द' कलकत्ता, वर्ष 1825 में तैयार किया। इस शताब्दी के अन्य कोशकारों में थॉम्पसन, येट्स, हंकन फ़ोर्ब्स, मथुराप्रसाद मिश्र तथा बेट्स के नाम उल्लेखनीय हैं।

सन 1802 से सिविल सेवा के अधिकारी विलियम बटरवर्थ बेली ने हिंदुस्तानी और हिंदी का एक ही अर्थ में प्रयोग किया। उनकों हिंदुस्तान में कार्रवाई के लिए 'हिंदी जबान' शीर्षक निबंध पर पंद्रह सौ रुपए नकद और मैडल प्राप्त हुआ। बाद में कुछ समय के लिए गवर्नर जनरल भी रहे। उस समय अंतरराष्ट्रीय संपर्क की भाषा भी हिंदी ही थी।

उन्नीसवीं शताब्दी के मध्य में दो साहित्यकार उभरकर आए:

1 राजा शिवप्रसाद 'सितारेहिंद' और

2 राजा लक्ष्मण सिंह

प्रथम ने हिंदी और उर्दू को समीप लाने की चेष्टा में हिंदी को उर्दू से भर दिया जबकि दूसरा संस्कृत की तत्समता की ओर झुका। राजा शिवप्रसाद ने अनेक पाठ्यपुस्तकों की रचना भी की और हिंदी को शिक्षा जगत में आगे बढ़ाया। सितारेहिंद की नीति सरकारी नीति का पक्ष लेना था। 'राजा भोज का सपना' प्रसिद्ध पुस्तक है जिसका एक उद्धरण भाषा के नमूने के लिए प्रस्तुत है:

1. "तू ईश्वर की निगाह में क्या है क्या हवा में बिना धूप तृस रेणु भी दिखाई देते हैं।

2. पर सूर्य की किरण पड़ते ही कैसे अनगिनत चमकने लग जाते हैं।

3. क्या कपड़े में छाने हुए पानी की दरमियान किसी को कीड़े मालूम पड़ते हैं।

4. पर जब शीशे को लगाकर देखो जिससे छोटी चीज बड़ी नज़र आती है तो

5. एक उस बूँद में हजारों ही जीव सूझने लगते हैं।"

हिंदी को व्यापक स्वीकृति दिलाने के लिए वह हिंदी को सरलता की ओर ले जाने के लिए उर्दू की शब्दावली लाने लगे। उनका विचार था कि "हम लोगों को जहाँ तक बन पड़े चुनने में उन शब्दों को लेना चाहिए जो आमफहम ख़ास पसंद हो अर्थात जिनको ज्यादा आदमी समझ सकते हों।" उनके प्रयास से भाषा पंडिताऊपन से मुक्त हुई। किंतु इससे वर्तनी में एकरूपता नहीं आ सकी। दो–दो रूप चलते रहे, जैसे उनने– उन्ने, सकता–सक्ता। बाद में भाषा को व्याकरणसम्मत बनाया गया और अरबी–फारसी की ध्वनियों– क, ख, ज, फ, र को शुद्ध लिखने की ओर ध्यान दिया गया।

शिवप्रसाद की भाषानीति के विरोध में राजा लक्ष्मण सिंह दूसरी दिशा में जाते हुए दिखाई दिए। वे विशुद्ध हिंदी के पक्षधर थे। उन्होंने 'शकुंतला नाटक' और 'मेघदूत' के अनुवाद में भाषा के इसी रूप को ही दिखायाः–

"पहले तो राज बढ़ाने की कामना चित्त को खेदित करती है फिर जो देश जीतकर बस गए हैं उनकी प्रजा के प्रतिपालन का नियम दिन रात मन को विकल रखता है जैसा बड़ा छत्र यद्यपि घाम की रक्षा करता है परंतु बोझ भी देता है।"

अनेक प्रयोग मानक नहीं कहे जा सकते। राजा लक्ष्मण सिंह का विचार था कि–

"हमारे मत में हिंदी और उर्दू दो बोली न्यारी–न्यारी हैं। हिंदी इस देश के हिंदू बोलते हैं और उर्दू यहाँ के मुसलमान और पारसी पढ़े हुए हिंदुओं की बोलचाल है। हिंदी में संस्कृत के पद बहुत आते हैं उर्दू में अरबी फारसी के। परंतु कुछ आवश्यक नहीं कि अरबी फारसी के शब्दों के बिना न बोली जाए और न हम उस भाषा को हिंदी कहते हैं जिसमें अरबी फारसी शब्द भरे हों।"

भाषा के इसी रूप के पक्षधर हुए स्वामी दयानंद सरस्वती, पंडित भीमसेन शर्मा, अंबिकादत्त व्यास आदि। आज अनेक विद्वानों ने इसी शैली को परिष्कृत रूप में अपनाया है।

ऐसी परिस्थितियों में भारतेंदु युग का आविर्भाव हुआ। इस समय की साहित्यिक गतिविधियॉ भारतेंदु की रुचि,साहित्य सेवा और सजगता में समर्पित हैं। गद्य की दृष्टि से सही अर्थों में यही गद्य का प्रवर्तन काल था। काव्य के संदर्भ में नई धारा का शुभारंभ हुआ। भारतेंदु और उनकी मंडली का व्यक्तित्व और कृतित्व मुखर रूप में प्रस्तुत हुआ। 'कविवचन सुधा' के प्रकाशन से हिंदी पत्रकारिता को प्रोत्साहन मिला। ब्रजभाषा के साथ–साथ खड़ी बोली में काव्यरचना होने लगी। काव्यभाषा के संदर्भ में अयोध्याप्रसाद खत्री का खड़ीबोली का आंदोलन उल्लेखनीय है। खड़ीबोली कविताओं

का संकलन (सन 1887 में) प्रकाशित हुआ जो बाद में सजधज के साथ इंग्लैंड से प्रकाशित हुआ। पिन्काट ने इस संकलन की भूरि–भूरि प्रशंसा की। बाद में तो श्रीधर पाठक भी खड़ीबोली में काव्य रचना करने लगे और सन 1886 में 'एकांतवासी योगी' को खड़ी बोली में प्रस्तुत किया गया। ऐसे में कवियों का झुकाव खड़ीबोली की ओर होने लगा। भारतेंदु स्वयं खड़ीबोली में काव्यरचना करने में संकोच करते थे। उन्हें भय था कि कहीं इस बहाने उर्दू ही न आ जाए। भारतेंदु ने शिवप्रसाद सितारेहिंद और राजा लक्ष्मण सिंह की संस्कृतनिष्ठ हिंदी के बीच में से मध्यम मार्ग निकाला। भाषा में से हिंदीपन न जाने पाए, इस बात का भरसक प्रयत्न किया। उन्होंने साधु शैली का रूप निश्चित किया और उसे 'नए चाल की हिंदी' की संज्ञा सन 1873 में प्रदान की। "निज भाषा उन्नति अहै, सब उन्नति को मूल" का मंत्र देने वाले भारतेंदु की सर्वत्र प्रशंसा हुई। यहाँ कुछ सार्थक सम्मितियाँ देना उपयुक्त होगाः

"जो लोक विवेकी हैं वे इसे अवश्य स्वीकारेंगे कि श्री हरिश्चंद्र जी ने उस बिगड़ी हुई भाषा को जो ग्रामीण स्त्री देश में थी, सुधाकर सुसंपन्न नागरी शब्द को सार्थक कर दिखलाया। हिंदी भाषा ने उनके समय में वह लावण्य या माधुर्य धारण किया कि लोग ही मुग्ध हो जो हैं और जिन लोगों को बाल्यावस्था से मियाँ जी की तख्ती लिखने का अभ्यास था वे भी इसी पर लट्टू पर गिरते हैं, अधिक कहाँ तक उन्होंने उसकी आकृति ऐसे साँचे में खींची कि सब में हिंदी का समादर होने लगा।"

(मित्र विलास, दिनांक 17/10/1987 डॉ. बहरी की 'हिंदी भाषा' से उद्धृत)

"यह सच बात है कि आपकी हिंदी और हिंदुस्तान सबसे मनोहर हैं, इसके बदले में राजा शिवप्रसाद को अपना ही हित सबसे भारी बात है।" **पिन्कॉट**

आगे चलकर आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने 'हिंदी साहित्य के इतिहास' में लिखाः–

"जब भारतेंदु अपनी मंजी हुई परिष्कृत भाषा सामने लाए तो हिंदी बोलने वाली जनता को गद्य के लिए खड़ी बोली का प्राकृत साहित्यिक रूप मिल गया और भाषा के स्वरूप का प्रश्न न रह गया। भाषा का स्वरूप स्थिर हो गया।"

बालकृष्ण भट्ट अच्छे निबंधकार थे। वे किसी भी विषय पर बड़ी कुशलता से लिख लेते थे। हिंदी का निबंध साहित्य बिना बालकृष्ण भट्ट के अधूरा ही माना जाएगा। वे अपने विचारों के पुष्टि के लिए संस्कृत के उद्धरण देते थे वे शुद्ध हिंदी के पक्षधर होते हुए भी यथावश्यक अंग्रेजी शब्दों का प्रयोग भी करते थे। भट्ट जी ने अपने लेखन से हिंदी को गौरव दिलाया और दिखा दिया कि खड़ीबोली भी साहित्यिक भाषा के रूप में प्रतिष्ठित हो चुकी है। श्रीनिवासदास ने उपन्यास लिखा। तोताराम ने विविध समाजोपयोगी सामग्री से हिंदी साहित्य के भंडार को भरा। सबसे विशेष तथ्य ये है कि कोई लेखक किसी भी क्षेत्र का हो, उस क्षेत्र की बोली के प्रभाव से मुक्त होकर हिंदी में रचना कर रहा था। अंग्रेजी के आगत शब्द बढ़ते गए, जैसे– पॉलिसी, फिलिंग, लालटेन, गिलास आदि। उन्नीसवीं शताब्दी के भाषिक स्वरूप पर सुप्रसिद्ध

भाषाविद डॉ. हरदेव बहरी ने टिपण्णी करते हुए लिखा हैः

"उन्नीसवीं शती के उत्तरार्ध की भाषा–स्थिति का अवलोकन करने पर इस निष्कर्ष पर पहुँचा जा सकता है कि भारतेंदु हरिश्चंद्र और उनके युग के साथी हिंदी की उन्नति के लिए बहुत सक्रिय थे और सबने मौलिक कृतियों तथा अनुवाद द्वारा साहित्य को समृद्ध करने का भरसक प्रयत्न किया। भारतेंदु भाषानीति के संबंध में जागरूक अवश्य थे।"

उन्नीसवीं शताब्दी के अंत में बाबू श्यामसुंदर दास के अथक प्रयासों से काशी नागरी प्रचारिणी सभा की स्थापना हो चुकी थी। नागरी प्रचारणी सभा ने हिंदी शब्दकोश का कार्य प्रारम्भ किया जो आगे चलकर 'हिंदी शब्दसागर' शीर्षक से प्रकाशित हुआ और आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने इसकी भूमिका के रूप में 'हिंदी साहित्य का इतिहास' की रचना की। पत्र के माध्यम से हिंदी का प्रचार–प्रसार हुआ तो गद्य साहित्य में नई विधा का पदार्पण हुआ। हिंदी को प्रतिष्ठित करने में आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी तथा उस युग की पत्रिका 'सरस्वती' के योगदान को भुलाया नहीं जा सकता। दूसरी पत्रिका 'समालोचक' (सन 1902) का विशिष्ट स्थान रहा है। इसके पहले संपादक गोपालदास गहमरी थे। सरस्वती पत्रिका का उद्देश्य था– हिंदी रसिकों के मनोरंजन के साथ भाषा के सरस्वती भंडार की अंगपुष्टि वृद्धि और पूर्ति।

वर्ष 1900 में काशी नागरी प्रचारणी सभा के अनुमोदन से 'सरस्वती' मासिक का प्रकाशन प्रारंभ हुआ जिसने युगांतकारी भाषा चेतना उत्पन्न की। इस पत्रिका के संपादक महावीरप्रसाद द्विवेदी थे जिनके नाम से इस काल को द्विवेदी युग कहा जाता है। पंडित श्रीनारायण चतुर्वेदी जी ने स्पष्ट शब्दों में कहा है –

"द्विवेदी जी ने सरस्वती के शक्तिशाली माध्यम से अनुयायियों की सहायता और समर्थन से अंत ब्रजभाषा को साहित्य जगत से निकाल बाहर करने में अभूतपूर्व सफलता प्राप्त की और उनके बाद जो पीढ़ी आई उसके संस्कार खड़ीबोली के ही थे।"

(आधुनिक हिंदी का आदिकाल, पृ. 236)

आचार्य द्विवेदी के समय ही जो ग्रीव्ज ने हिंदी साहित्य का इतिहास लिखा उसमें उन्होने बाद में स्पष्ट शब्दों में लिखा –

"आचार्य द्विवेदी एक अध्यवसायी व्यक्ति हैं और सम्पादकीय लेखों में श्रम करने के अतिरिक्त उन्होने कई पुस्तकें लिखी हैं। उनकी कुछ पुस्तकें मौलिक हैं कुछ संस्कृत और कुछ अंग्रेजी से अनूदित हैं। अनूदित पुस्तकों में मिल कृत 'स्वतंत्रता' और हर्बर्ट स्पेंसर कृत 'शिक्षा' उल्लेखनीय है।" (आधुनिक हिंदी का आदिकाल पृ. 156)

इस युग का सम्यक मूल्यांकन करते हुए डॉ. रामचंद्र तिवारी ने लिखा है–

"नई जीवन दृष्टि ने नई भाषा को माध्यम बनाया। खड़ीबोली पूर्णतः प्रतिष्ठित हुई। उसे पंडिताऊ और ठेठ गँवारूपन से मुक्त किया और माँजा–सँवारा गया। साहित्य सृजन की मूल प्रेरणा, समाज सुधार, चरित्र निर्माण या व्यापक राष्ट्रीय हित

होने के कारण साहित्यिक कृतियों में कलात्मक निखार तो नहीं आया, किंतु सभी प्रकार की गद्य– विधाओं की विकास परंपरा का आरंभ अवश्य हो गया। साहित्य का स्वर क्रमशः गंभीर हुआ और उसमें दायित्व बोध जागा। साहित्य को शिष्ट समाज में प्रवेश पाने योग्य समझा जाने लगा और सब मिलाकर हिंदी को व्यापक प्रतिष्ठा प्राप्त हुई।"

(हिंदी साहित्य पर इतिहास, पृ. 526)

खड़ीबोली गद्य के विकास में ईसाई मिशनरियों का योगदान

ईसाई मिशनरियों ने ईसाइयत का प्रचार करने के लिए दोहरी नीति अपनाई। एक ओर उन्होंने शिक्षा क्षेत्र में ये सोचकर कार्य किया कि शिक्षित भारतीय ईसाई धर्म की ओर आकर्षित होंगे और उसे अपनाएँगे, इसके लिए उन्होंने स्कूल ओर कॉलेज खोले। स्कूलों में शिक्षा का माध्यम अधिकांशतः खड़ीबोली हिंदी को रखा। स्कूल स्तर की भूगोल, इतिहास, धर्मशास्त्र, राजनीति, चिकित्सा, अर्थशास्त्र, विज्ञान, साहित्य, ज्योतिष, व्याकरण आदि विभिन्न विषयों की पाठ्यपुस्तकें तैयार करने के लिए कलकत्ता, आगरा, इलाहाबाद आदि विभिन्न स्थानों पर 'स्कूल बुक सोसाइटी' स्थापित किया और मुद्रणालय प्रारंभ किए। इससे विविध विषयों को व्यक्त करने मं समर्थ गद्य का विकास हुआ। पादरियों ने प्रवचनों के लिए हिंदी को अपनाया।

आर्यसमाज की खड़ीबोली गद्य को देन

यद्यपि स्वामी दयानंद स्वयं संस्कृत के गुजरातीभाषी विद्वान थे और आर्य समाज की स्थापना भी उन्होंने बंबई में की थी तथापि वे यह अनुभव कर चुके थे कि केवल हिंदीभाषी क्षेत्रों में ही नहीं अपितु गुजरात और पंजाब आदि में भी यदि उनका संदेश प्रचारित हो सकता है तो खड़ीबोली हिंदी के माध्यम से ही। इसलिए उन्होंने स्वयं अपने ग्रंथ 'सत्यार्थ प्रकाश', 'संस्कार विधि', 'ऋग्वेद भाष्य'– भूमिका' आदि हिंदी में प्रस्तुत किए। वे अपने भाषण भी हिंदी में ही देने लगे। उनकी प्रेरणा से उनके अनुयायी भी खड़ीबोली हिंदी में लेखन, प्रवचन और शास्त्रार्थ करते। इसके कारण आर्य समाजियों के द्वारा प्रचुर मात्रा में खड़ी बोली में गद्य लिखा गया और उसका परिमार्जन हुआ। 1863ई. के आसपास पंजाब के आर्यसमाजी प्रतिभाशाली पंडित श्रद्धाराम फिल्लौरी के लेखों और व्याख्यानों की बड़ी धूम थी। उन्हें अपने गद्य पर स्वयं भी गर्व था। वर्ष 1881 में अपनी मृत्यु के समय उन्होंने कहा था–

"भारत में भाषा के दो लेखक थे– एक काशी में दूसरा पंजाब में" काशी के लेखक से उनका तात्पर्य था भारतेंदु हरिश्चंद्र और पंजाब में वे स्वयं थे।

हिंदी के बढ़ते चरण

राजभाषा के रूप में हिंदी का प्रतिष्ठापन्न के बाद हिंदी के परिचय में वृद्धि हुई और उसके प्रकार्य बढ़ गए। साहित्यिक दृष्टि से अंतरराष्ट्रीय संपर्क के कारण, नई–नई विधाओं और साहित्यिक धाराओं का प्रवर्तन हुआ जिससे हिंदी समुन्नत बनी।

द्विवेदी काल के बाद साहित्यिक दृष्टि से हिंदी भाषा का विभिन्न दिशाओं में जो विकास हुआ है उसके समक्ष विश्व की कुछ भाषाएँ ठहर सकती हैं। यही कारण है कि आज भारत में संप्रेषण की दृष्टि में हिंदी सर्वोपरि है। साहित्यिक दृष्टि से द्विवेदी जी के सामने ही 'छायावाद' धारा प्रवाहित हो गई थी जिसके तत्काल बाद प्रगतिवाद, प्रयोगवाद, नवलेखन में नई कविता, गीत, व कविता से लेकर क्षणिकाएँ (हाईकू) लिखी जाने लगी हैं। आधुनिक काल में रचित कुछ उल्लेखनीय रचनाएँ हैं जिन्होंने हिंदी के उत्थान में, उसके सर्वांगीण विकास में महती भूमिका निभाई–

'तुलसीदास'– निराला, 'हल्दीघाटी' (श्याम नारायण पांडेय), 'एकलव्य' रामकुमार वर्मा, 'कुरुक्षेत्र' दिनकर, 'लोकायतन' 'सुमित्रानंदन पंत', 'कनुप्रिया' भारती, 'पार्वती' रामानंद तिवारी, 'उर्मिला (बालकृष्ण शर्मा नवीन), 'तक्षशिला' उदयशंकर भट्ट, 'नूरजहाँ गुरुभक्त सिंह।

अज्ञेय ने जो 'तारसप्तक' का संपादन किया उसके बाद दूसरा, तीसरा तथा चौथा सप्तक प्रकाशित हुआ। गीतकाव्य एवं नई कविता पर कई ग्रंथ प्रकाशित हो चुके हैं।

रिपोर्ताज, डायरी, साक्षात्कार, ललित निबंध, आत्मकथा, जीवनी, संस्मरण, रेखाचित्र, व्यंग्य विनोद, यात्रा–साहित्य, पत्र, फीचर, लघु कथा, नुक्कड़–नाटक, रेडियो–रूपक, ध्वनि नाट्य, सोप ओपेरा, टिपण्णी, पोस्टर, कोलाज आदि। ज्ञान की विविध विधाओं में पर्याप्त साहित्य अब प्रकाशित हो रहा है। धार्मिक साहित्य का प्रकाशन तो उन्नीसवीं शताब्दी से ही प्रारंभ हो गया था जिसमें निरंतर प्रगति हो रही है। प्रौढ़ शिक्षा तथा बाल शिक्षा की दृष्टि से पिछले दशकों में अधिक साहित्य प्रकाशित हुआ जिसको सूचीबद्ध करने में कई ग्रंथ बन सकते हैं।

बीसवीं शताब्दी में हिंदी भाषा का विकास सभी दृष्टियों से हुआ। शताब्दी के प्रारंभ में नागरी प्रचारणी सभा, वाराणसी ने 'शब्द सागर' की जो योजना बनाई वह तीसरे दशक में आठ खंडों में पूर्ण हुई। रामचंद्र वर्मा ने 'मानक कोश' तैयार किया और बाद में हिंदी साहित्य सम्मलेन, प्रयाग से पाँच खंडों में वृहत कोश भी तैयार किया। कालांतर में नेशनल बुक ट्रस्ट, केंद्रीय हिंदी निदेशालय, वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग और विधि मंत्रालय द्वारा अनेक कोश प्रकाशित किए गए हैं। सूचना क्रांति ने तो इक्कीसवीं शताब्दी में अपना दरवाजा खटखटाया है पर हिंदी भाषा इस दिशा में निरंतर अग्रसर होती गई है। इनमें से कुछ हैं –

– आई.आई.टी कानपुर द्वारा विकसित जिस्ट (GIST) का विकास सी –डेक, पुणे द्वारा किया गया है।

– 'पाठ से वाचन' (Text to Speech) का विकास द्रुत गति से हो रहा है।

– कंप्यूटर के लिए अनेक सॉफ्टवेयर तैयार हो गए हैं जैसे– फैक्ट, सुलिपि, आकृति, पी सी डॉस, श्रीलिपि, प्रकाशक, लीप ऑफिस, अक्षर आदि।

– हिंदी सीखने के लिए 'लीला प्रबोध' 'लीला प्रवीण' 'गुरु' जैसे अन्य कई प्रोग्राम उपलब्ध हैं।

इस प्रकार हम देख सकते हैं कि हिंदी अपनी यात्रा आदिकाल से प्रारंभ करती हुई आज इक्कीसवीं शताब्दी तक निरंतर बिना किसी विशेष सहारे के निरंतर आगे कदम बढ़ाती चली आ रही है। सबसे विशेष तथ्य यह है कि विश्व की अन्य भाषाएँ राजनीतिक प्रश्रय लेकर आगे बढ़ी हैं परंतु हमारी हिंदी भाषा के साथ ऐसा कुछ भी नहीं है। यह उस समय भी फली –फूली जब देश विदेशी आक्रमणकारियों के अधीन था चाहे वे तुर्क हों, मुग़ल हों या अंग्रेज। हाँ, कभी ये सफर थोड़ा धीरे जरूर रहा परंतु बदस्तूर आगे निरंतर बढ़ता गया। इसी का परिणाम है कि हिंदी अपने देश के अंदर सम्मानजनक स्थिति में तो है ही साथ ही ये एक अंतरराष्ट्रीय स्तर पर भी प्रमुख भाषाओं में से भी हैं। हिंदी भाषा आज अपने आधुनिकीकरण के दौर से गुजर रही है। हिंदी राजभाषा की भूमिका निभा रही है। संविधान की धारा 343 में उल्लेख है कि देवनागिरी लिपि में लिखित हिंदी देश की राजभाषा होगी।

राजभाषा के अलावा, हिंदी अखिल भारतीय सांस्कृतिक और साहित्यिक आदान–प्रदान के लिए संपर्क का सूत्र भी है, जिस भूमिका के संदर्भ में हम उसे राष्ट्रभाषा कहते हैं। भारतवंशी भारतीयों के कारण, जो विदेशों में बस गए। हिंदी के बढ़ते महत्व के कारण हिंदी भाषा अंतरराष्ट्रीय भाषा का भी दर्जा प्राप्त कर चुकी है। कोई भाषा औपचारिक संदर्भों में बहुत विविधता लेकर नहीं चल सकती। उसमें एकरूपता, उपयोग की सफलता आदि का गुण चाहिए जिससे कि लोग आसानी से काम कर सकें। भाषा में साधन की इस प्रक्रिया को मानकीकरण कहते हैं जिसके अभाव में भाषा का विकास बाधित हो जाता है। हिंदी मानकीकरण की इस दिशा में तेजी से प्रयासरत है।

साथ ही नियोजित रूप से सामग्री निर्माण, शिक्षण – प्रशिक्षण, अनुवाद आदि नए क्षेत्र खोले जा रहे हैं। अतः इसमें कोई संदेह नहीं कि हिंदी अपनी विकास यात्रा यूँ हीं निरंतरता बनाए रखेगी और भारत की ही नहीं पूरे विश्व की सबसे अधिक श्रेष्ठ संपर्क भाषा के रूप में अपनी पहचान बनाएगी।

संदर्भ सूची –

1. हिंदी साहित्य का इतिहास, आचार्य रामचंद्र शुक्ल
2. आधुनिक हिंदी का आदिकाल
3. सरस्वती पत्रिका, मार्च 1911 ई.
4. नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी,संस्करण सं. 2048, पृ 222

5. रसज्ञ रंजन पृ. 23, आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी
6. हिंदी साहित्य : उद्‌भव और विकास, पृ. 244,हजारीप्रसाद द्विवेदी
7. हिंदी साहित्य और संवदेना का विकास,पृ. 121,रामस्वरूप चतुर्वेदी
8. मित्र विलास, दिनांक 17/10/1987 डॉ. हरदेव बहरी की 'हिंदी भाषा' पृ. 52

❑❑❑

नाथ साहित्य की भाषिक संकल्पना का वैशिष्ट्य

राजेंद्र कुमार सेन

मानव प्रकृति के सभी जीवधारियों में सर्वाधिक सक्रिय प्राणी है जिसने अनेक उपलब्धियाँ अर्जित की हैं। उसने प्रकृति के अनेक गूढ़ रहस्यों को प्रकट किया और इस दिशा में निरंतर कार्यरत है। मानव ने अपने मानसिक विकास के साथ–साथ वागेंद्रियों के प्रयोग द्वारा अनेक भाषाओं और बोलियों का विकास किया है तथा ध्वन्यात्मक और वर्णात्मक दोनों ही दृष्टियों से भाषाओं को विकसित किया है। भिन्न–भिन्न भाषाओं की ध्वनियों के लिए भिन्न–भिन्न लिपियाँ विकसित की हैं। भावों की अभिव्यक्ति का सर्वाधिक सशक्त माध्यम भाषा ही है। डॉ. रविदत्त कौशिक मानते हैं, कि "भाषा, भावों की अभिव्यक्ति का साधन है। भावानुभूति एवं उसकी अभिव्यक्ति प्राणी मात्र का नैसर्गिक स्वभाव है। इस प्रकार पशुपक्षियों से लेकर मानव तक जो कुछ वह जानते–समझते हैं उसे अभिव्यक्त किए बिना नहीं रह सकते। अतः भावाभिव्यक्ति के संपूर्ण साधन सामान्य तौर पर भाषा के अंतर्गत आते हैं, जिन्हें वह विभिन्न ध्वनियों संकेतों एवं संकेत चिह्नों द्वारा व्यक्त करता हैं।"[1] भाषा के इंगित और वाचिक दो रूप स्वीकार किए गए हैं। इंगित भाषा प्राकृतिक है और सभी जीवधारियों की अपनी इंगित भाषा अथवा शैली होती है परंतु जब इसी इंगित कूटों को भिन्न–भिन्न ध्वनि संकेतों और कूटों के माध्यम से व्यवस्थित ढंग से प्रकट किया जाता है तब वाचिक भाषा का विकास होता है। "आंगिक भाषा से आगे बढ़कर वाचिक भाषा तक पहुँचना मानव–इतिहास की क्रांतिकारी उपलब्धि थी। जहाँ आंगिक भाषा इने–गिने स्थूल–इंगितों तक ही सीमित थी, वहीं वाचिक भाषा भाव और विचार संप्रेषण की असीम संभावनाओं से संपन्न थी।"[2] भाषा के वाचिक स्वरूप को ही आगे लिखित और यांत्रिक भाषा के रूप में विकास प्राप्त हुआ। मानव का सारा क्रियाकलाप भाषा के इन्हीं रूपों पर आधारित होता है। वह अपने जीवन के आरंभ से लेकर अंत तक किसी न किसी रूप में भाषा को सीखता, पढ़ता और गढ़ता रहता है। भाषा इतनी विशिष्ट होती है कि मानव जीवनपर्यंत इस प्रणाली के साथ जीवन व्यतीत करता है। भाषा के संबंध में सुधिजन ने विविध प्रकार की परिभाषाओं द्वारा पाठकों को अवगत करवाया है। भाषा को परिभाषित करते हुए देवेंद्रनाथ शर्मा लिखते हैं कि भाषा

यादृच्छिक, रूढ़, उच्चरित संकेतों की वह प्रणाली है जिसके माध्यम से मनुष्य परस्पर विचार–विनिमय, सहयोग अथवा भावाभिव्यक्ति करते हैं।[3]

भाषा की उत्पत्ति अत्यंत प्राचीनकाल में उन स्थानों पर हुई होगी जहाँ बहुत से लोग एक साथ रहते होंगे। ऐसे स्थानों में से किसी एक स्थान की वह भाषा जो प्रारंभ में उत्पन्न हुई होगी तथा आगे चलकर जिससे ऐतिहासिक तथा भौगोलिक आदि कारणों से अनेक भाषाएँ, बोलियाँ तथा उपबोलियाँ बनी होंगी, मूल भाषा कही जाएगी यथा आधुनिक आर्यभाषाओं की मूल भाषा भारोपीय भाषा है। शेष अन्य भाषाएँ उन्हीं से उत्पन्न हुई हैं।[4] इसी प्रकार भाषा का एक रूप बोली होता है। बोली का संबंध किसी समुदाय द्वारा बोली जाने वाली प्राकृतिक भाषा से होता है। बोली में किसी भी प्रकार के व्याकरणिक बंधनों का पालन नहीं होता और जनसमुदाय अपनी सुविधानुसार शब्द प्रयोग करता है। परंतु जब बोली को मानक रूप में ढालकर तैयार किया जाता है, तब भाषा का रूप विकसित होता है।

किसी भी कालखंड की भाषा उस कालखंड की परिस्थितियों और जीवनशैली का परिणाम होती है। हिंदी साहित्य का आदिकाल जहाँ एक ओर राजनीतिक उथलपुथल और सामाजिक संक्रमण का काल माना जाता है वहीं धार्मिक दृष्टि से यह काल नवीन चेतना का कालखंड रहा है। राजनीतिक दृष्टि से केंद्रीय सत्ता के भाव के कारण रियासतों का आपसी टकराव देश को राजनीतिक अस्थिरता की ओर धकेल रहा था जिसका लाभ विदेशी हमलावरों को प्राप्त हुआ। सामाजिक दृष्टि से जातियों में आपसी वैमनस्य और भेदभाव का बोलबाला होने लगा। इस्लाम के आगमन के कारण सामाजिक संक्रमण का दौर आरंभ हो चुका था, जातिवादी मान्यताएँ कठोर हो गई और धर्म के नाम पर अनेक रूढ़ियों ने जनमानस में अपनी पकड़ बना ली थी। सनातन धर्म का स्वरूप विकृत होने लगा जिसके परिणामस्वरूप धर्मांतरण की गति तेज होने लगी और इस्लाम पैर पसारने लगा। बौद्धधर्म की महायानी शाखा का विकास वज्रयान और तंत्रयान के रूप में हुआ और समग्र उत्तरभारत में सिद्धों की स्वीकार्यता बढ़ने लगी। सिद्धों की साधना पद्धति यद्यपि जनसामान्य को अपनी ओर आकृष्ट कर रही थी तथापि इसने समाज के नैतिक मूल्यों को हाशिए पर धकेल दिया इसी कालखंड में भाषिक विकास की दृष्टि से अद्भुत कार्य हुआ। आधुनिक भारतीय भाषाओं यथा हिंदी, पंजाबी, मराठी, बांग्ला, उड़िया, मराठी इत्यादि का आरंभिक स्वरूप इसी कालखंड में विकसित होना आरंभ हुआ। जहाँ एक ओर सामाजिक और धार्मिक संक्रमण का दौर चल रहा था वहीं भाषिक दृष्टि से भी एक नया युग आरंभ हो चुका था। प्राकृत भाषाएँ अब साहित्य की भाषाएँ बन चुकी थीं। प्राकृत से अपभ्रंश भाषाओं का विकास हो चुका था और यही अपभ्रंश आधुनिक भारतीय भाषाओं के लिए जमीन तैयार कर रही थी। सिद्धों ने इस युग में संस्कृत भाषा के वर्चस्व को चुनौती दी और जनसामान्य की भाषा (अपभ्रंश) में अपने संदेश और उपदेश का प्रचार–प्रसार किया।

इस काल में सिद्धों के साहित्य का संपूर्ण उत्तर भारत पर प्रभाव था। सिद्धों की विचारधारा ने धीरे–धीरे जनसामान्य पर अपनी पकड़ बनानी आरंभ कर दी थी, जिसकी ऐतिहासिक परंपरा भी विद्यमान थी, "गुप्त काल तक शक्ति की उपासना पूर्ण रूप से प्रतिष्ठित हो चुकी थी। पार्वती, दुर्गा, लक्ष्मी, श्रीकाली आदि अनेक रूपों में शक्ति की उपासना प्रचलित थी। किंतु तांत्रिक धर्म के अनेक तत्व अत्यंत प्राचीनकाल से जनसाधारण में प्रचलित थे, जिनका कुछ रूप 'अथर्ववेद' में भी संकेतित है। सातवीं शताब्दी से तांत्रिक साधना का विकास व्यापक रूप में हुआ...कश्मीर, पंजाब, नेपाल, कामरूप, बंगाल, उड़ीसा, मध्य भारत तथा दक्षिण भारत में यह अत्यंत लोकप्रिय था। पर्वतीय क्षेत्रों में इसके विशिष्ट केंद्र थे।"[5] सिद्धों ने इसी परिपाटी को आगे बढ़ाते हुए जनसाधारण पर अपनी पकड़ मजबूत कर ली थी। जातिप्रथा का विरोध, जनसामान्य की भाषा का प्रयोग करते हुए सिद्धों ने स्वयं को जनसामान्य का अघोषित प्रतिनिधि बनाने का प्रयास किया। "सिद्धों की बिरादरी में दाखिल होकर जाति–भेद स्वयमेव नष्ट हो जाता था। संख्या में शूद्र अधिक थे। कोई कारीगर था तो कोई खेतिहर–मछुआरा, कोई तेल निकालता था तो कोई भांडे गढ़ता था। इस समय की सामंती व्यवस्था में खेती का काम शूद्रों के हाथों में आ गया था। भूमि से जुड़कर पहले ही हीन भावना कम हुई। उच्चजातियों के विरोध में खड़े होने में उन्हें बल मिला" 6 परंतु सिद्धों ने नैतिक मूल्यों को तिलांजलि दे दी तथा समाज में विकार उत्पन्न होने लगा। तांत्रिक साधना के नाम पर सिद्धों ने विकारों को प्रोत्सहित किया, परिणामस्वरुप समाज का नैतिक पतन होना आरंभ हो गया था। सिद्धों के पाखंडपूर्ण वचन, वासना को बढ़ावा देकर समाज को पतन की ओर लेकर जा रहे थे। ज्ञान और भक्ति दोनों तत्व ओझल हो रहे थे। ऐसे नाजुक समय में एक बड़े एवं भारी समन्वयकारी महात्मा की समाज को आवश्यकता थी, जो लोगों को ज्ञान का सच्चा मार्ग दिखाकर समाज को पतन से बचाता। संयोगवश ऐसे ही संघर्ष के समय में, गुरु गोरखनाथ का प्रादुर्भाव हुआ। "नाथ संप्रदाय का आरंभ नवीं शताब्दी से माना जाता हैं। आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी ने मत्स्येंद्रनाथ तथा गोरखनाथ का समय नवीं शताब्दी के मध्य मानते हुए नाथ संप्रदाय का विकास नवीं शताब्दी से माना है जबकि डॉ. पीतांबरदत्त बड़थ्वाल ने नाथ संप्रदाय का उद्भव दसवीं शताब्दी माना है। नाथों की यह परंपरा 13–14 वीं शताब्दी तक चलती रही।"[7] नाथों का प्रभाव संपूर्ण उत्तर भारत के साथ–साथ दक्षिण में भी बढ़ने लगा। महाराष्ट्र में नाथों की विचारधारा का जनसामान्य में बहुत प्रचार हुआ।

भाषिक दृष्टि से यह कालखंड अत्यंत महत्वपूर्ण माना जाता हैं। इसी कालखंड में आधुनिक भारतीय भाषाओं और बोलियों का विकास होना आरंभ हुआ। इस संबंध में रावत चंद्रभान का कथन अवलोकनीय है। उनका मानना है कि "1000 ई. तक अपभ्रंश भाषा और साहित्य का वर्चस्व रहा। प्राकृत प्रादेशिक अपभ्रंशों का कलेवर छोड़ते हुए आधुनिक भारतीय भाषाओं में परिणित होने लगी थी। यद्यपि अपभ्रंश की

परंपरा अभी भी शुद्ध रूप तथा देशी भाषाओं की शब्दावली व मुहावरों के रूप में परंपरा का निर्वहन कर रही थी। इस तरह एक अद्र्ध–अपभ्रंश और अद्र्ध नवीन भाषा साहित्यिक रूप में प्रतिष्ठित हुई।"8 भाषा की यह प्रवृत्ति सिद्ध–नाथ साहित्य की भाषा में देखने को मिलती हैं। दोनों ने ही जनसामान्य की भाषाओं को अपनाया। "नाथ सिद्धों के साहित्य की भाषा में पश्चिमी हिंदी की बोलियों का मिश्रण है। इतिहासकारों ने इस भाषा को 'सधुक्कड़ी भाषा' का नाम दिया है। परवर्ती निर्गुण संत परंपरा नाथ–पंथियों की धार्मिक–सामाजिक चेतना से प्रभावित रही है जिस प्रकार सिद्धों ने युगीन धार्मिक, सामाजिक व्यवस्था को ललकारा था, उसी प्रकार नाथ–सिद्धों के साहित्य में भी प्रचलित अंधविश्वासों और धार्मिक कड़ियों का खंडन किया गया है। परवर्ती हिंदी भाषा के रूप के निर्माण और निर्गुण संतों की विचारधारा की पृष्ठभूमि का निर्माण करने की दृष्टि से सिद्धों और नाथों की रचनाएँ हिंदी साहित्य के इतिहास में अपना महत्वपूर्ण स्थान रखती है।"[9] इसलिए नाथों के साहित्य में 1000 ई. के आसपास की ऐसी हिंदी का रूप दिखाई देता है जिसे पुरानी हिंदी अथवा अवहट्ट भी कहा जा सकता है। यह हिंदी जहाँ एक ओर अपने नवीन स्वरूप को अपना रही थी वहीं दूसरी ओर इस में पूर्ववर्ती भाषिक परंपरा के अनुरूप अपभ्रंश के लक्षण विद्यमान दिखाई देते हैं। इस बोली में खड़ी बोली का स्वरूप स्पष्ट तौर पर उभरता हैं। गुरु गोरखनाथ ने हठयोग पर उपदेश देते हुए जिस तरह से हठयोग को परिभाषित किया था, उसी में खड़ी बोली का व्यापक परिदृश्य दिखाई देता है। इनके अनुसार इस मार्ग में विश्वास करने वाला हठयोगी साधना द्वारा शरीर और मन को शुद्ध करके शून्य में समाधि लगाता था और वहीं ब्रह्म का साक्षात्कार करता था। गोरखनाथ ने कहा कि धीर वह है जिसका चित्र विकार–साधना होने पर भी विकृत नहीं होता है–

नौलख पातरि आगे नाचै, पीछे सहज अखाड़ा।
ऐसे मन लै जोगी खेलै, तब अन्तरि बसै भंडारा।।

इसमें खड़ी बोली की सारी प्रवृत्तियाँ परिलक्षित होती हैं। आकारांतता और एकारांतता आधुनिक खड़ीबोली की पहचान है। कुछ शब्दों जैसे–खेलै, बसै, नाचै आदि को छोड़ दें, जिसमें ब्रजभाषा की प्रवृत्ति दिखाई देती है, तो सभी शब्दों में खड़ीबोली हिंदी के लक्षण साफ नजर आते हैं।[10] नाथों की घुमंतु प्रवृत्ति का प्रभाव इनकी भाषा पर भी पड़ा है। नाथ अपने संदेश और उपदेश के प्रचार–प्रसार के लिए निरंतर यात्राएँ किया करते थे। कभी भी एक स्थान पर टिक कर नहीं बैठते अर्थात कभी अपना स्थायी डेरा नहीं बनाते थे। जनमानस में जाकर निर्गुण ब्रह्म का उपदेश देना, जनमानस को विकृतियों से हटाकर सदाचारी जीवन जीने के लिए प्रेरित करना और अपने शिष्यों को शुद्ध आचरण के लिए कड़े नियमों का पालन करने के लिए उपदेश देते नाथों के ये सभी संदेश जनभाषा में दिए जाते। यहाँ तक कि नाथों ने साधना के लिए जनभाषा में ही मंत्र भी बनाए जो संस्कृत के वर्चस्व को सीधी चुनौती थी। नाथों की वाणी में अलग–अलग

बोलियों के शब्दों का सम्मिश्रण पाया जाना इनकी भाषा की अन्यतम विशेषता हैः

दषिरगी जागी सँग, चंगा, पूरबी जोगी बाधी पछमी जोगी बाधी
पछिमी जोगी बालाभोला,सिधजोगी उतराधी
अवधू पूरब दिसि व्याधिका रोग, पछिम दिसि मितुं का सोग
दछिरगा दिसि माया का भोग उत्यर दिसि सिध का जोग।[11]

सामान्यतः खड़ीबोली का 'योगी' शब्द ब्रज, पंजाबी और राजस्थानी हिंदी में 'जोगी' बन जाता है क्योंकि इन भाषाओं की प्रवृति इस प्रकार की है जो 'य' को 'ज' बना देती हैं। यह अपभ्रंश का प्रभाव है जो अब इन बोलियों में लक्षित होता है। इसी प्रकार यहाँ 'चंगा' शब्द पंजाबी भाषा का है, 'पूरबी' हिंदी भाषा का है तो'उतराधी' शब्द राजस्थानी हिंदी में प्रचलित है। इस प्रकार हम कह सकते हैं कि नाथों की भाषा में विविध बोलियों की शब्दावली और प्रवृत्ति विद्यमान है।

गोरखनाथ के नाम पर जो पद मिले हैं, वे कितने पुराने हैं यह बता सकना कठिन है। इनमें से कुछ अवश्य बहुत पुराने और गोरक्ष–कथित हो सकते हैं, यद्यपि इनकी भाषा बहुत बदल गई है। इन पदों में कई कबीर के नाम से, कई नानक के और दादूदयाल के नाम से भी पाए गए हैं। कुछ पद लोकोक्ति का रूप धारण कर चुके हैं, कुछ का जोगीड़ा के रूप में व्यवहार होता है और कुछ लोक में अनुभवसिद्ध ज्ञान के रूप में चल पड़े हैं। इन पदों में यद्यपि योगियों के लिए ही उपदेश है, अतएव इनमें भी उसी प्रकार की साधनामूलक बातें पाई जाती हैं, जो इस प्रकार की सभी रचनाओं में मिलती हैं। बहुत–से पद ऐसे हैं, जिनमें लेखक के नैतिक विश्वास का पता चलता है। ऐसी नैतिक विश्वासवाली रचनाएँ आगे चलकर लोक में अनुभूत ज्ञान के समान चल पड़ी हैं। जिस प्रकार के ज्ञान का उपदेश इस साहित्य में किया गया है, उसमें गुरु का होना परमावश्यक माना गया है, और चित्त की शुद्धता पर अधिक जोर दिया गया है। कहा गया है कि मानसिक दृढ़ता के रहते कोई भी विघ्न योगी को विचलित नहीं कर सकता। काम और क्रोध में मन आसक्त न हो, और चित्त की शिथिलता उसे बहकने न दे, तो हँसने–खेलनेवालों से नाथजी प्रसन्न ही होते हैं और ऐसे योगी के लिए लाखों अप्सराएँ भी विघ्न उपस्थित नहीं कर सकतीं:

हँसिबा पेलिबा रहिबा रंग। काम क्रोध ना करिबा संग।।
हँसिबा पेलिबा गाइबा गीत। दिढ़ करि राखिबा आपना चीत।।
हँसिबा षेलिबा धरिबा ध्यान। अहि विधि कथिबा ब्रह्म गियान।।
हँसे षेले ना करे मन भंग। ते निहचल सदा नाथ के संग।।[12]

इस पद में हँसना के स्थान पर 'हंसिबा', खेलना के स्थान पर 'षेलिबा' आदि का प्रयोग हुआ है। अर्थात यह नाथों की तत्कालीन भाषा की विशेषता है जिसके अंतर्गत 'क्रिया' में 'बा' शब्द जोड़ा जाता है। 'धरना' के लिए 'धरिबा' तथा कथना के स्थान पर 'कथिबा' का प्रयोग देखने को मिलता है, 'गाना' क्रिया के लिए 'गइबा' का प्रयोग

अपभ्रंश के प्रभाव की परंपरा को स्पष्ट करता है। नाथ संप्रदाय के काव्य की भाषा में शास्त्रीय परंपरा के बंधनों, व्याकरण तथा पिंगल का अभाव है। अपने भावों को जनसमुदाय तक पहुँचाने के लिए जिस भाषा का इस संप्रदाय के कवियों ने प्रयोग किया है, वह लोकरुचि के अनुकूल ही है। सधुक्कड़ी प्रवृत्ति के होने के कारण अनेक क्षेत्रीय भाषाओं का प्रयोग भी इनकी कविता में देखा जा सकता है, तथापि इसमें अपभ्रंश, परवर्ती काल की अपभ्रंश तथा तेरहवीं शताब्दी की सामान्य प्रचलित भाषा की शब्दावली सुरक्षित है। इन कवियों ने अलंकारों का प्रयोग सहज रूप से किया है। वे जहाँ भी आए हैं, काव्य की रोचकता में वृद्धि करते हैं। मोक्ष तथा आध्यात्म की बात जहाँ आई है, वहाँ शांत रस का प्रयोग हुआ है। युद्ध–वर्णन के स्थूल उपकरणों को इन्होंने मन और इंद्रियों के दमनार्थ प्रतीक–रूप में प्रयोग किया है। ऐसे स्थलों पर वीर रस तथा उलटबाँसियों में अद्भुत रस प्रयुक्त हुआ है।[13] साहित्य में उलटबासी का प्रयोग समान्यतः अनुभूति अथवा विचार के किसी ऐसे माध्यम द्वारा अभिव्यक्ति के लिए किया जाता है, जो बाह्य दृष्टि से नितांत असंगत, अतार्किक अथवा लौकिक धरातल पर असंभावित प्रतीत हो, परंतु आंतरिक दृष्टि से प्रतीकार्थक स्पष्टीकरण के द्वारा एक अभिनव गूढ़ार्थ की चमत्कारिक अभिव्यंजना करने में पूर्ण सशक्त हो। अन्यत्र जहाँ दैहिक मानसिक कर्म जो सामान्यतया लोगों को अमृतवर्षा में भीगने से बचाते हैं, वहीं ज्ञान की आँच पा शुद्ध हो अमृतमय कार्यों के रूप में स्वयं बिंदु निर्मित अस्तित्व के ऊपर बरस रहे हैं। इस अभिप्राय के लिए गोरखनाथ कहते हैं:

नाथ बोले अमृतवाणी, बरिषेगी कम्बली भीजैगा पानी।[14]

बाह्य जगत के नियमों का निर्देश करते हुए, जहाँ यह बताया गया कि कुआँरूपी ब्रह्मरंध्र से निकलकर योगशक्ति कुंडलिनी मूलाधार में अवस्थित है और योगी अपनी साधना के द्वारा उसे उलट फिर मूल स्थान पर पहुँचाकर सिद्धि प्राप्त करता हैं। उसे गोरखनाथ इस प्रकार कहते हैं:

नगरी को पाणी कुई आवे,
उलटी चर्चा गोरख गावे।[15]

नाथों की उलटबासियों की यह परंपरा परवर्ती संत साहित्य विशेषकर कबीर के साहित्य में देखने को मिलती है। अतः उलटबासियों के रूप में नाथों की उपादेयता परवर्ती साहित्य की एक महत्वपूर्ण प्रवृत्ति है। गोरखनाथ ने अपने नाथ– पंथ के प्रचार के लिए जनसमुदाय की भाषा का आश्रय ग्रहण किया। गौतम बुद्ध ने भी अपने मत का प्रचार संस्कृत को छोड़कर जन–समुदाय की भाषा पाली में किया था। सर्वसाधारण को अपने सिद्धांत समझाने के लिए गोरखनाथ भी जनभाषा में कुछ लिखने के लिए बाध्य हुए, पर उनके ग्रंथ पूर्ण प्रामाणिकता के साथ अभी निश्चित नहीं हो सके हैं। मिश्रबंधुओं का कथन है कि इस महात्मा ने प्रायः 40 छोटे–बड़े ग्रंथ रचे और ब्रजभाषा–गद्य में भी एक अच्छा ग्रंथ बनाया। सो ये महात्मा गद्य के प्रथम कवि

हैं।[16] अतः नाथ साहित्य की भाषा मिली जुली भाषा की एक समृद्ध परंपरा है।

गुर कीजै गहिला निगुरा न रहिला, गुरु बिन ग्यान न पायला रे माइला।
दूधे धोया कोइला उजला न होइला, कागा कठै पहुप माल हंसवा न मैला।।
नाथ बोले अमृत बांणी बरियेगी कंबली पांणी।।
गाड़ि पडरवा बांधिले खूंटा चलें दमामा बजिले ऊँटा।।
घसे सहंस इकीसों जाए। अनहद उपजे आपहि आप।।
बंका नालि में ऊगे सूर। रोम रोम धुनि बाजे सूर।।

भाषा के आधार पर इन रचनाओं को 15वीं शताब्दी के पहले का नहीं माना जा सकता। शुक्ल जी ने इस भाषा को ठीक ही सधुक्कड़ी कहा 'है। 'सधुक्कड़ी' का अर्थ भाषा साधुत्व से हीन होना नहीं है। सधुक्कड़ी में खड़ीबोली के साथ अनेक प्रादेशिक भाषाओं का मिश्रण होता है। गोरख की सधुक्कड़ी एक प्रकार की है और कबीर की दूसरे प्रकार की। गोरखबानी की भाषा खड़ीबोली मिश्रित राजस्थानी है और कबीर की खड़ीबोली मिश्रित राजस्थानी, ब्रजी और भोजपुरी।[17] नाथों की भाषा में प्रतीकों का बहुतायत में प्रयोग नाथों की भाषा की एक अन्यतम विशेषता हैं। नाथों की हठयोग साधना और इसके अंतर्गत प्रतीकों का प्रयोग परवर्ती संत साहित्य की थाती बन गया। कबीर ने अपने साहित्य में इन प्रतीकों का हूँ–ब–हूँ प्रयोग किया हैं। कुछ विद्वानों का यह मानना है कि नाथों की भाषा के इस प्रभाव के कारण ही कबीर कहीं–कहीं रहस्यमय हो गए। नाथों की भाषा में अमृत, अवधू, अनहद, उलटी गंगा, औंधा कुआँ, उनमनी अवस्था, घट, कुंडलिनी, इड़ा, पिंगला और सुषुम्ना नाड़ी आदि प्रतीकात्मक शब्दावलियों की भरमार है।

गगन मंडल में ऊंधा कूबा तहां अमृत का बासा[18]
उनमनि रहीबा भेद न कहिबा पीयबा नीझर पाणी[19]

नाथों ने अपने उपदेशों के लिए लोक में सर्वग्राह्य और सर्वप्रचलित दोहा शैली को अपनाया। यह शैली इतनी अधिक प्रचलित हुई कि बाद में कबीर ने भी इसी दोहा शैली को अपनाया। नाथों की भाषा अलंकारों की दृष्टि से अत्यंत समृद्ध भाषा रही है। यद्यपि नाथों ने शास्त्रीय भाषा को दरकिनार करते हुए अपने उपदेशों के लिए जन भाषा का प्रयोग किया तथापि अलंकारों की दृष्टि से उनकी भाषा अत्यंत सक्षम और समृद्ध भाषा थी। नाथों के साहित्य में अनुप्रास, उपमा, उत्प्रेक्षा, श्लेष, यमक, रूपक आदि अलंकारों का प्रयोग अधिक मिलता है। नाथों का यह प्रयोग सायास नहीं अपितु प्राकृतिक ढंग से हुआ है इसलिए सहज, सरल और ग्राह्य है।

केता आवै केता जाई, केता मांगै केता खाई
केता रूप विरष तलि रहै, गोरष अनभै कासौ कहैं।[20]
मन मैं रहिणा भेद न कहिणा बोलिबा अमृत बाणी
अगिला अगनी होइबा अवधू तौ आपण होइबा पाणी[21]

उपर्युक्त विश्लेषण के उपरांत कहा जा सकता है कि नाथों का कालखंड भारतीय इतिहास का एक महत्वपूर्ण कालखंड है। इस कालखंड में जहाँ एक ओर नाथों ने समाज में निहित रूढ़ियों का विरोध किया, धार्मिक वैमनस्य को दूर करके सामाजिक समरसता और भ्रातृत्वभाव को मजबूत करते हुए नैतिक मूल्यों को पुनर्स्थापित करने का कार्य किया, वहीं भाषिक दृष्टि से भी समाज को एक नवीन दिशा प्रदान की। नाथों ने कुलीन समाज में स्थापित संस्कृत भाषा के बजाय लोक में प्रचलित सामान्य भाषा का प्रयोग किया। यद्यपि इस भाषा को तत्कालीन संभ्रांत वर्ग और विशेषकर पुरोहित वर्ग हेय की दृष्टि से देखता था, नाथों ने इसी भाषा में अपनी वाणी की रचना की तथा साथ ही इस सामान्य भाषा में मंत्र भी रचे। यह एक प्रकार से नाथों की संस्कृत के वर्चस्व को चुनौती थी। नाथों ने घूम–घूमकर अपनी वाणी का प्रचार जनमानस में किया और इसीलिए भिन्न–भिन्न क्षेत्रों की बोलियों के शब्दों का मिश्रण करके एक नवीन भाषा विकसित की, शब्दों के मिश्रण की यह परंपरा भारतीय भाषाओं में आज भी विद्यमान है। नाथों ने सरल दोहा शैली को अपनी अभिव्यक्ति का माध्यम बनाया जो जनमानस में आसानी से आत्मसात हो गया कदाचित इसी कारण आगे चलकर कबीर ने नाथों की शब्दावली के साथ–साथ इस दोहा शैली को भी अपना लिया। नाथों ने भारतीय जनमानस की नब्ज को अच्छे से समझ लिया था और उसके अनुरूप ही अपने संदेश दिए। नाथों की भाषा के कारण जनमानस के साथ उनका सीधा संपर्क स्थापित हुआ और इसका लाभ परवर्ती भक्ति आंदोलन के विकास में संतों को प्राप्त हुआ। नाथों ने अपनी भाषा में उलटबासियों, अलंकारों, रूपकों और प्रतीकों का सहज प्रयोग किया। कबीर ने नाथों की उलटबासियों को भी अपनाया और नाथों के अनहद, शून्य, औंधा कुआँ, गगन मंडल, कुंडलिनी आदि सभी प्रतीकों का प्रयोग करते हुए नाथों के निर्गुण परब्रह्म के संदेश को अत्यंत सरल, सहज और ग्राह्य बनाकर प्रस्तुत किया। कबीर की इस अपार सफलता का श्रेय नाथों को जाता है जिन्होंने संक्रमण काल में विषय और भाषापरक नवीन उदभावना द्वारा जनमानस का सफल नेतृत्व प्रदान किया। आधुनिक काल में भी साहित्य की भाषा का अवलोकन करने पर नाथों की भाषा का प्रभाव स्पष्ट लक्षित होता है। निस्संदेह नाथों ने जनमानस में घूम–घूमकर एक ऐसी जनभाषा के रूप को विकसित किया जो साहित्य के लिए सर्वग्राह्य, सहज और सरल सिद्ध हुई। नाथों की भाषा के क्षेत्र में यह देन भारत के भाषा और साहित्य दोनों ही क्षेत्रों के लिए एक अमूल्य निधि है।

संदर्भः

1. रविदत्त कौशिक, भाषा विज्ञान की रूपरेखा, संजय प्रकाशन, दिल्ली, 2008, पृष्ठ संख्या 14
2. देवेंद्रनाथ शर्मा, भाषाविज्ञान की भूमिका, राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली, 2004, पृष्ठ संख्या 28

3. वही, पृष्ठ संख्या 22
4. रविदत्त कौशिक, भाषा विज्ञान की रूपरेखा, संजय प्रकाशन, दिल्ली, 2008, पृष्ठ संख्या 29
5. हरिश्चंद्र वर्मा, मध्यकालीन भारत, हिंदी माध्यम कार्यान्वयन निदेशालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली 2004. पृष्ठ संख्या 61
6. बच्चन सिंह, हिंदी साहित्य का दूसरा इतिहास, राधाकृष्ण प्रकाशन, पृष्ठ संख्या 30
7. आलोक कुमार शुक्ल, हिंदी साहित्य का इतिहास, रितु पब्लिकेशंस, पृष्ठ संख्या 85
8. चंद्रभान रावत, मथुरा जिले की बोली, इलाहबाद, हिंदुस्तानी एकेडमी, 1967, पृष्ठ संख्या 42
9. डॉ रीना कुमारी, आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी एवं पंडित रामचंद्र शुक्ल के साहित्येतिहासों में साहित्येतिहासिक चिंतन, प्रगति प्रकाशन, प्रथम संस्करण. 2011 पृष्ठ संख्या
10. संजय सिंह बघेल, हिंदी भाषा और साहित्य का इतिहास, वाणी प्रकाशन, दिल्ली, 2020, पृष्ठ संख्या. 63
11. पीताम्बरदत्त बड़थ्वाल, गोरखबानी, हिंदी साहित्य सम्मेलन प्रयाग, पृ.सं. 16
12. डॉ मुकुंद द्विवेदी, हिंदी साहित्य उद्भव और विकास, राजकमल प्रकाशन, उन्नीसवाँ संस्करण, 2018, पृ.सं. 33
13. डॉ ललचं गुप्तमंगल, हिंदी साहित्य का इतिहास, निर्मल पब्लिकेशन हाउस, 2016, पृ.सं. 55
14. रामकीर्ति द्विवेदी, भक्त कबीर की उलटबासियों का वैज्ञानिक विश्लेषण, पंजाब सौरभ, जनवरी–मई, 2007, पृ.सं. 336
15. वही
16. डॉ रामकुमार वर्मा, हिंदी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास, लोकभारती प्रकाशन 2010, पृ.सं. 106
17. डॉ बच्चन सिंह, हिंदी साहित्य का दूसरा इतिहास, राधाकृष्ण प्रकाशन, पहला संस्करण, 1996, पृ.सं. 37
18. पीताम्बरदत्त बड़थ्वाल, गोरखबानी, हिंदी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग, पृ.सं. 9
19. वही, पृष्ठ संख्या 23
20. वही, पृष्ठ संख्या 21
21. वही, पृष्ठ संख्या 23

❑❑❑

कहानी

रामरति का सुख

योगेंद्रनाथ शर्मा 'अरुण'

कभी–कभी लगता है कि नियति कुछ लोगों को जरूरत से ज्यादा दुःख देकर सहनशक्ति का अकूत खजाना भी अनायास ही उन्हें दे देती है। रेलवे की पटरी के किनारे बनी झोपड़पट्टी में एक टूटी सी झोंपड़ी में रहने वाली गरीब रामरति आज जाने क्यों, भगवान की मूर्ति के सामने खड़ी होकर, दोनों हाथों को जोड़े भगवान का शुक्रिया अदा कर रही है।

आज गरीब रामरति बेहद खुश है।

भला खुश हो भी क्यों नहीं?.... आज शायद जीवन में पहली बार उसके पति और बच्चों को सिर्फ भरपेट ही नहीं, बल्कि बेहद स्वादिष्ट और बिलकुल ताजा भोजन जो खाने को मिला है।

रामरति इस झोंपड़ी में अपने बेरोजगार, लेकिन खूब नशेड़ी पति के साथ–साथ अपनी दोनों बेटियों और इकलौते बेटे को बहुत खुश होकर खाना खाते देख रही थी, तो उसे पूरा विश्वास हो गया था कि देवी मईया पूरी तरह उस पर मेहरबान हो गई हैं।

असल में रामरति की इस सोच का जीता–जागता कारण भी तो उसके सामने था। कहाँ रोज अमीरों के द्वारा छोड़ी गई बची–खुची जूठन होटल से लाकर रामरति इन सबको खिलाती रही है और कहाँ आज उसी होटल के मालिक ने सबके खाने के लिए गरमा–गरम और ताजा खाना रामरति को दिया है ऐसे में सबको भरपेट खाना खिलाने के बाद रामरति खुद को जैसे दुनिया की सबसे भाग्यवान और सुखी औरत मानकर, भगवान और अपनी देवी मईया का शुक्रिया अदा कर रही थी।

रामरति तो पैदा ही गरीब माँ की कोख से हुई थी और रोज शराब के नशे में धुत्त होकर पिता द्वारा अपनी माँ को पिटते देखकर, यही मान लिया था कि भगवान ने इस दुनिया में औरत को पैदा ही शायद इसलिए किया है कि वह दिनभर मेहनत–मजदूरी करती रहे और अपने पति की इच्छा के अनुसार पिटती रहे और बच्चे जनती रहे।

आज बेचारी रामरति का दुर्भाग्य अचानक ही इतने बड़े सौभाग्य में कैसे बदल

गया है, इसकी पूरी कहानी तो रामरति भी शायद नहीं जानती। वह बेचारी तो बस इतना ही जानती है कि रोज शहर के नामी–गिरामी होटल में बर्तन माँजने वाली रामरति को आज होटल के सबसे बड़े रसोइए ने खुद आकर कहा था कि 'चलो,... तुम्हें होटल के मालिक और मैनेजर साहब ने तुरंत बुलाया है। एकबारगी तो रामरति काँप ही गई थी। बेहद डरी हुई सी रामरति जब मालिक के केबिन में पहुँची, तो पहली बार उसने सूटेड–बूटेड मालिक और होटल के मैनेजर साहब को देखा।

खुश होकर होटल मालिक की तरफ देखते हुए, होटल के मैनेजर साहब ने रामरति से कहा– ''देखो, रामरति!.....तुम तो बहुत ही बढ़िया चने और सरसों का साग और मक्का की करारी रोटियाँ बनाना जानती हो....इसलिए हमने फैसला किया है कि. ... अब से तुम हमारे होटल में बर्तन नहीं माँजोगी..... बल्कि रोज आकर सरसों का साग और मक्के की रोटियाँ बनाया करोगी।'' रामरति ने खुश होकर जैसे ही हामी भरी, वैसे ही मालिक ने अपने बटुए से सौ–सौ रुपए के पाँच नोट निकालकर रामरति को देते हुए कहा– ''ये मैनेजर साहब तुम्हें तुम्हारा काम समझा देंगे। तुम अब हमारी रसोई में ही रहा करोगी।'' और तभी, मैनेजर साहब ने होटल के सबसे बड़े रसोइए की ओर देखते हुए कहा, ''मिस्टर इस्माइल!.... रामरति को आज घर के लिए ताजा और काफी खाना पैक करवाकर दे देना और पूरा काम भी ठीक से समझा देना।''

रामरति को तो लग रहा था जैसे वह खुली आँखों कोई सुहाना से सपना देख रही है। उसने खुश होकर अपने मालिक और मैनेजर के चरण छुए और गरमा–गरम खाना लेकर झोंपड़ी में आई थी। उसके पति और बच्चों ने जीवन में पहली बार ऐसा खाना देखा था और स्वाद ले–लेकर भर पेट खाया था।

अपने पूरे परिवार के साथ ही आज तो रामरति ने भी पहली बार बढ़िया दाल मखनी, पालक–पनीर, मलाई कोफ्ते, बढ़िया पुलाव, ताजी रोटियाँ और सूखे मेवे डालकर बनाई खीर खूब स्वाद ले लेकर खाए। सबसे बड़ी बात तो यह थी कि आज वह अपने नशेड़ी पति की बेवजह मार–पिटाई का शिकार होने से भी बची रही। आज रामरति के चेहरे पर अठखेलियाँ करती हुई खुशी उसकी टूटी–फूटी सी झोंपड़ी के छप्पर में हो गए बड़े से छेद से छनकर आती हुई रोशनी में साफ–साफ दिखलाई दे रही थी।

असल में, जन्म से ही दुर्भाग्य की मारी गरीब रामरति के इस अप्रत्याशित भाग्योदय के पीछे अचानक हुई एक ऐसी घटना है, जो घटित न हुई होती, तो शायद दुःखों की मारी रामरति को आज मिली हुई खुशी कभी नसीब ही नहीं हुई होती। आज उसका पति, दोनों बेटियाँ और उसकी आँखों का तारा इकलौता बेटा, भरपेट भोजन करके जिस सुख की नींद में खोए हुए हैं, वह सब उसी अप्रत्याशित घटना की ही बदौलत तो संभव हुआ है।

पिछले सप्ताह अचानक केंद्र की सरकार से आए एक फरमान के कारण ही

राज्य की सरकार ने यह फैसला लिया था कि इस शहर में ''पर्यावरण– सुधार'' पर एक राज्यस्तरीय महत्वपूर्ण सेमिनार करवाई जाएगी। अब यों तो इस शहर में कई बड़े–बड़े और नामी होटल हैं, लेकिन पर्यावरण–सुधार पर आयोजित की जाने वाली राज्यस्तरीय सेमिनार में राज्य के मुख्यमंत्री के साथ ही पर्यावरण–संरक्षण मंत्री जी को भी जिलाधिकारी ने निमंत्रित कर लिया था, तो फिर होटल भी तो उनकी पसंद का ही होना जरूरी था न? इसी बीच, अचानक किसी बेहद जरूरी समस्या के चलते राज्य के मुख्यमंत्री जी ने जब इस सेमिनार के उद्घाटन–समारोह में आने की मनाही करा दी, तो प्रशासन का पूरा ध्यान राज्य के धाकड़ मंत्री के रूप में मशहूर 'पर्यावरण–संरक्षण' मंत्रालय के कैबिनेट मंत्री श्री रामलाल जी को ही प्रसन्न करने में लगना सहज स्वाभाविक सा हो गया था। जब कमिश्नर साहब और जिलाधिकारी ने मंत्री जी को बताया कि माननीय मुख्यमंत्री जी ने तो सेमिनार में आने से मना कर दिया है, तो मंत्री जी ने अपने मुँह के पान को गाल की तरफ सरकाते हुए पी.ए. से कहा –''हमारी बात तुरंत सी.एम. साहब से कराओ।''

पी.ए. ने पलभर में बताया कि सी.एम. साहब 'लाइन' पर हैं, तो पी.ए. से फोन लेकर मंत्री जी बोले–''जयहिंद, सीएम साहब!..... आपने तो हमारा दिल ही तोड़ दिया हुजूर!....आप अगर इस महत्वपूर्ण सेमिनार का उद्घाटन नहीं करेंगे, तो पूरे प्रदेश और देश मे आपकी 'विकास–पुरुष' वाली छवि को बट्टा लग जाएगा।'' उधर से सी.एम. साहब कुछ बोले होंगे, जिसके उत्तर में मंत्री रामलाल जी ने बड़ी जबरदस्त चापलूसी करते हुए फरमाया –''अब हमारा फैसला जरा ध्यान से सुन लीजिए सी.एम. साहब!. ....ये जो रामलाल है ना हुजूर!....यह तो अपने आप में एक यूज बल्ब है....आपकी रोशनी से ही हमारी चमक बनी हुई है। जान लीजिए कि सेमिनार का भव्य उद्घाटन तो आपके कर–कमलों से ही होगा सी.एम. साहब....वर्ना... भाड़ में जाए सेमिनार।'' और आखिर में, मंत्री रामलाल जी की खरी चापलूसी ही विजयी हुई और राज्य के मुख्यमंत्री जी ने ''पर्यावरण सुधार संगोष्ठी'' के उद्घाटन समारोह में मुख्य अतिथि के रूप में पधारने की स्वीकृति दे दी। अब कमिश्नर और डी.एम. पर पूरा रौब जमाते हुए मंत्री जी ने फरमाया–''अरे, कमिश्नर बाबू!....सी.एम. साहब हमारा वजन अच्छी तरह जानते हैं.....हम कहें और सी.एम. साहब मना कर दें, यह कभी हो सकता है क्या?'' और एक पान मुहँ में ठूँस लिया।

कमिश्नर और डी. एम. टकटकी लगाए मंत्री जी की बात सुन रहे थे और 'जी, सर!...जी, सर' उनके मुँह से निकल रहा था। तभी मंत्री जी बोले–''सी.एम. साहब की खातिरदारी जमकर होनी चाहिए।.....कोई कोर–कसर उनके स्वागत में न रहे।'' मंत्री रामलाल जब कभी इस शहर में आते हैं, तब प्रशासन उनके ठहरने और भोजन आदि की सारी व्यवस्थाएँ शहर के नामी 'सनराइज' होटल में ही करता आया है। अब उनका निर्देश मिला तो सेमिनार के साथ–साथ ही प्रदेश के मुख्यमंत्री जी के ठहरने

की व्यवस्था भी इसी होटल में की गई। जाहिर था कि मुख्यमंत्री जी स्वयं उद्घाटन–समारोह में पधारने वाले थे, इसलिए पूरे जिले और शहर में हलचल सी मच गई थी। स्वयं मंत्रीजी कमिश्नर और जिलाधिकारी के साथ होटल 'सनराइज' पहुँचे और मुख्यमंत्री जी के दौरे की तैयारियों में जी–जान से जुट गए। सुरक्षा में कोई चूक न हो जाए, इसलिए होटल की बेहद बारीकी से सघन जाँच की गई। कमिश्नर साहब को निर्देश देते हुए मंत्री जी ने कहा–''देखिए, कमिश्नर बाबू!....एक–एक इंतजाम आप खुद देखें, ताकि मुख्यमंत्री जी यहाँ से पूरी तरह गदगद होकर ही जाएँ। यह हमारी इज्जत का मामला है।''

कमिश्नर साहब का उत्तर था, ''आप बेफिक्र रहिएगा सर।....मैं और हमारे ये बेहद चुस्त डी.एम साहब सारी व्यवस्थाओं को खुद देख रहे हैं..... आई. जी. और यहाँ के पुलिस कप्तान भी बस पहुँचने ही वाले हैं। कमिश्नर साहब ने डी.एम साहब को सारी व्यवस्थाएँ देखने की हिदायत करते हुए मंत्री जी से आज्ञा माँगी, तो डी.एम. साहब ने एस.डी.एम. और डी.एस.पी को बुलाकर कहा–''मुख्यमंत्री जी के प्रोग्राम का फैक्स आते ही मुझे तुरंत बताएँ और.... हाँ, जरा होटल 'सनराइज' के मैनेजर को तुरंत यहाँ बुलवाकर मेरी बात कराइए।'' एस.डी.एम. ने तुरंत होटल के मैनेजर को बुलवाया और डी.एम. साहब को सूचित किया कि सी.एम. साहब के प्रोग्राम का फैक्स भी मिल गया है। माननीय मुख्यमंत्री जी सेमिनार का उद्घाटन करने के बाद दोपहर का भोजन यहीं करेंगे और कुछ देर यहीं विश्राम करके लौटेंगे।

इस बीच होटल 'सनराइज' के मैनेजर आ चुके थे। उन्हें देखकर डी.एम. साहब बोले–''देखिए मैनेजर साहब!....आपके होटल में राज्य के मुख्यमंत्री पधार रहे हैं, यह आपके होटल की प्रतिष्ठा के लिए बहुत बड़ी बात है।...अब आपको सी.एम. साहब के लंच और विश्राम की यादगार व्यवस्था करनी है।....ध्यान रहे...कहीं कमी न रहे।'' मैनेजर साहब मुस्कुराते हुए बोले– ''आप पूरी तरह निश्चिंत रहें, सर!...आपको रत्ती भर शिकायत नहीं होगी....बस,...आप एक छोटी सी मेहरबानी हमपर कर दें तो हमारा काम आसान हो जाएगा।'' डी.एम. साहब तुरंत बोले–''हाँ, हाँ..... मैनेजर साहब, फरमाइए, हम से क्या चाहते हैं आप?''

थोड़ा झिझकते हुए मैनेजर ने कहा–''हमें ऑनरेबल सी.एम. साहब के खाने में उनकी किसी खास पसंद 'डिश' का पता चल जाए, तो हम उनके लिए लंच में वही 'डिश' खासतौर पर बनवा लेंगे।'' डी.एम. साहब मैनेजर का कंधा थपथपा कर बोले– ''रियली,...वेरी स्मार्ट!....वेरी गुड सजैसेशन मिस्टर!... मैं आज ही सीएम सचिवालय से सी.एम. साहब की मनपसंद 'डिश' के बारे में फोन पर जानकारी ले लेता हूँ।....आप कतई चिंता न करें...आज रात तक या फिर कल सुबह तक हम आपको सब बता देंगे।. ... और भी कुछ चाहिए तो आप सीधे मुझसे बात करें।''

शाम को डी.एम. साहब का फोन आया, तो होटल मैनेजर बोला–''यस सर!...

मैनेजर 'सनराइज' हियर।'' दूसरी तरफ से आवाज आई, ''ओह, आई सी!..... वैल मिस्टर! मैं डी.एम. बोल रहा हूँ....आपकी इच्छा के मुताबिक मैंने ऑनेरेबल सी.एम. साहब की पसंद पूछ ली है....अब आप जरा ध्यान से मेरी बात सुनें और हर बात ठीक तरह से नोट करते चलें।'' इधर से मैनेजर की उत्सुकता भरी आवाज सुनाई दी, ''सर!.. थैंक्स ऑ लॉट,...जी, फरमाइए सर,....मैं हर बात नोट कर रहा हूँ।''

डी.एम. साहब बोले–''तो, अब सुनिए मैनेजर साहब!....हमारे मुख्यमंत्री जी उस दिन दोपहर के खाने में बढ़िया चने और सरसों का साग खाएँगे मक्के की करारी–करारी रोटियों के साथ.....और इसके साथ शुद्ध देसी घी और बढ़िया छौंके हुए मट्ठे के साथ बिना मसाले वाले गुड़ का इंतजाम भी जरूर रखिएगा।'' मैनेजर ने बड़ी ही विनम्रता के साथ उत्तर दिया–''ओ के, डी.एम. सर!..... सब हो जाएगा..... सर!.... यू डोंट वरी एट ऑल... सर!.....आई शैल टेक एवरी केयर सर' और फोन रखते ही मैनेजर ने होटल के चीफ शैफ इस्माइल को बुलाया और उसके आते ही कुछ चिंतित से स्वर में बोला, ''इस्माइल!....यार, हमारा मुख्यमंत्री तो अजीब 'गँवार' सा लगता है.....पता है... उसे 'लंच' में क्या चाहिए?.....चने–सरसों का साग, मक्का की करारी रोटियाँ, मक्खन वाला ताजा मठ्ठा और बिना मसाले वाला गुड़!.....मुझे बताओ मेरे भाई ! क्या ये सब खिला पाओगे?''

चीफ शैफ इस्माइल भौचक्का सा खड़ा कुछ देर तो मैनेजर को घूरता रहा और फिर परेशानी के स्वर में बोला, ''ओह.... नो सर!....मैं तो लाजवाब 'नॉनवेज' लंच की तैयारी कर रहा हूँ.....यह क्या हो गया है सर!....सरसों का साग और मक्के की रोटी? डैम इट सर!.....इट इज वर्चुअली इंपॉसिबल, सर!... मैंने तो आज तक कभी ये 'डिश' बनाई ही नहीं!... गाँव के सरसों का साग, मक्के की रोटी, ताज़ा मठ्ठा और गुड़?.. ...ये सारी चीजें तो इस बड़े शहर में कोई जानता तक नहीं होगा...फिर...खाएगा क्या?'' बेहद परेशान और घबराए हुए मैनेजर के मुँह से निकला–''फिर अब हम करें क्या?. ....तुम नहीं जानते मिस्टर इस्माइल!...ये पसंद किसी ऐरे–गैरे, नत्थू खैर की नहीं, बल्कि इस प्रदेश के ऑनेरेबुल चीफ मिनिस्टर की है। जानते हो ना कि हमें अपने होटल का नाम और शान कायम रखने के लिए ये सारी चीजें तैयार करानी ही पड़ेंगी. ... वर्ना.... जान लो कि तुम्हारे साथ मेरी नौकरी भी गई।''..... बेहद परेशान मैनेजर टकटकी लगाए चीफ शैफ का जवाब सुनने को बेताब था।

थोड़ी चुप्पी के बाद इस्माइल बोला–''ठीक है सर!... अब होटल की...आपकी... और अपनी भी इज्जत तो बचानी ही है। मैं कुछ–न–कुछ करता हूँ। डोंट यू वरी, सर।....मैं मैनेज कर लूँगा।'' लंबे अनुभव की डोर पकड़कर, चीफ शैफ इस्माइल होटल के पीछे बर्तन माँजने और धोने वाली औरतों के बीच पहुँचा और सबको अपने पास बुलाकर बोला –''अरे, तुम सभी ध्यान से मेरी बात सुनो!... क्या तुम में कोई ऐसी औरत है, जो चने और सरसों का साग बनाने के साथ मक्के की करारी और पतली रोटियाँ

बनाना जानती है?'' इस्माइल की बात सुनकर बर्तन माँजने और धोने वाली औरतें टुकुर–टुकुर एक–दूसरे का मुँह ताकने लगीं। तभी पसीने से तर–बतर, अपनी धोती के पल्लू से मुँह पौंछते हुए रामरति आगे निकल कर बड़ी ही विनम्रता से बोली– ''जी,. ..साहेब!...मैं सरसों का साग और मक्के की पतली–पतली रोटी बनाना जानती हूँ.... कितनी ही बार...अपने गाँव में बनाकर सबको खिलाया है।.... आप जब कहें... मैं ये सब बना सकती हूँ साहेब!'' बेहद खुश और उत्साहित होकर इस्माइल बोला–''शाब्बाश, रामरति!.... हाथ–पैर धोकर....जरा जल्दी से....मेरे कमरे में आओ।'' जैसे ही रामरति आई,... इस्माइल ने उसे कुर्सी पर बिठाते हुए कहा – ''हाँ, क्या नाम है तुम्हारा?...ओह, हाँ, देखो रामरति! कल तुम्हें हमारे होटल के आदमी के साथ जाकर बाजार से सारा जरूरी सामान लाना होगा और.... बस, परसों सुबह–सुबह होटल आकर तुम्हें सरसों और चने के साथ मक्के की रोटियाँ बनानी होंगी।... और हाँ, कल तुम होटल के बर्तन माँजने का काम मत करना।....बस, तुम तो कल वो सारा सामान ले आना, जो परसों के लिए जरूरी है।''

बेहद खुश होकर रामरति ने हामी भर दी। चीफ शैफ इस्माइल भी बहुत खुश था। और, आखिर वह दिन आ ही गया, जब राज्यस्तरीय 'पर्यावरण सुधार सेमिनार' के उद्घाटन के लिए मुख्यमंत्री जी अपने धाकड़ मंत्री रामलाल जी के साथ पधारे। सेमिनार के उद्घाटन के बाद मीडिया के लोगों से मुखातिब होकर मुख्यमंत्री जी ने दिल खोलकर राज्य के विकास और पर्यावरण में सुधार की महत्ता पर खूब बातें कहीं. ...जमकर फोटो खींचे गए और मंत्री रामलाल जी की धाक जम गई।

सारे हो हल्ले से निकलकर मुख्यमंत्री जी प्रदेश के पर्यावरण संरक्षण मंत्री रामलाल जी का हाथ थामे हुए 'लंच' के लिए होटल के शानदार 'डाइनिंग हॉल' में पहुँचे, जहाँ उनका स्वागत हुआ। बिलकुल अलग एक बड़ी सी डाइनिंग टेबिल पर मुख्यमंत्री जी की 'खास पसंद' के रूप में चने और सरसों का देसी घी में छौंका गया साग बड़ी सुंदर सिकी हुई पतली–पतली मक्का की रोटियों के साथ सजाकर रखा गया था।...पास ही...ताजा मठ्ठा, मक्खन और बिना मसाले का गुड़ भी बड़े जतन से अलग प्लेटों में रक्खा हुआ था।

मुख्यमंत्री जी के प्यार भरे, विशेष आग्रह पर मंत्री रामलाल जी भी 'लंच' के लिए बैठ गए। भरपेट भोजन कर लेने के बाद, बेहद गद–गद होकर मुख्यमंत्री जी बोले–''भाई रामलाल जी!.... आपने तो आज सचमुच कमाल ही कर दिया है....सच कहता हूँ कि ऐसा स्वादिष्ट और लाजवाब सरसों का साग और ऐसी करारी–करारी मक्के की रोटियाँ तो हमने वर्षों बाद खाई हैं।....थोड़ी देर रुककर...रामलाल जी के कंधे पर हाथ रखते हुए मुख्यमंत्री जी बोले–''सुनो जी, ये लाजवाब साग और मक्के की रोटी खाने तो हमें जल्दी ही फिर यहाँ आना पड़ेगा।...अरे, भाई!..... किसने बनाया है आज का खाना?....तनिक उस जादूगर को बुलवाइए तो सही?...हमें तो आज सच में

अपना गाँव याद आ गया है।'' और तभी, होटल के मैनेजर और चीफ शैफ को साथ लेकर मालिक राजदान साहब आगे आकर बोले–''मान्यवर मुख्यमंत्री जी!... ये हमारे मैनेजर और चीफ सैफ इस्माइल साहब का कमाल है।.... ये दोनों हमारे होटल की शान हैं जनाब।'' तभी गदगद होकर मुख्यमंत्री जी ने जेब से अपना बटुवा निकालकर पाँच–पाँच सौ के कई नोट चीफ सैफ इस्माइल को पकड़ा दिए। इस्माइल ने ज्यों ही नोट लिए, टी मुख्यमंत्री जी खुश होकर बोले–''भई वाह!....आज तो सचमुच मजा आ गया।.....इसे अपना इनाम समझिए.....बहुत जल्दी ही.....हम और ये रामलालजी यही सब खाने के लिए फिर आएँगे।.... बड़ा ही स्वादिष्ट बना है।'' और, बेचारी रामरति!... वह तो इस सारे राग–रंग से पूरी तरह दूर थी....कोसों दूर। वह तो बस इतना ही जानती थी कि होटल के मालिक ने उसे सौ–सौ रुपए के पाँच नोट देकर कहा है कि रामरति अब झूठे बर्तन नहीं माँजा करेगी, बल्कि अब होटल की खास 'डिश' यानि ''सरसों का साग और मक्के की रोटियाँ'' बनाया करेगी। पता नहीं, मुख्यमंत्री जी कब फिर आ जाएँ?

❑❑❑

कहानी

मौसम बदलते हैं

कुमकुम शर्मा

ट्रेन में बैठते ही बहुत कुछ छूट जाने का भाव मुझे डुबोता जा रहा था। मेरी आँखें भींग गई थीं। सामने बैठा आदमी मुझे लगातार देख रहा था। दुपट्टे के छोर से मैंने आँखों से छलकते आँसुओं को वहीं रोक दिया था। कमजोर दिखना मुझे अच्छा नहीं लगता। अपने सामान को एडजेस्ट कर बैग से पत्रिका निकाल पढ़ने लगी। ट्रेन स्टेशन छोड़ चुकी थी, उसके रफ़्तार पकड़ते ही मेरा मन दोगुनी तेजी से पीछे लौट रहा था। कितना कुछ छूट गया था इस स्टेशन के छूटते ही। मेरा घर आँगन जहाँ मेरा खुखद बचपन बीता था। पापा, माँ और दोनों भाइयों के साथ बिताए दिनों की यादें ताजा हो आईं थीं। कितनी खास हुआ करती थी, तब मैं। पापा के सामने कोई मुझे डाँट भी नहीं सकता था।

यह घर उन्होंने बड़े अरमानों से बनवाया था। बीचों बीच बड़े से आँगन के चारों तरफ चार कमरों से सटी हुई बैठक जिसमें पापा के समय में आने–जाने वालों की भीड़ लगी रहती थी। पापा यूनिवर्सिटी में प्रोफेसर थे। माँ से अक्सर कहते प्रकाश और नारायण के अलावा यह तीसरा कमरा मेरी अपर्णा का है। शादी के बाद जब अपने नन्हें–मुन्नों के साथ आया करेगी तो इसमें रहेगी हमारे साथ। और मैं आँगन में बैठकर कभी छोटी बहू को पुकारूँगा तो कभी बड़ी बहू को। उस समय माँ के चेहरे पर वात्सल्य की गरिमा देखते ही बनती, खुशी से फूली नहीं समातीं, कभी बेटों को देखती कभी पापा को तो कभी मुझे। यह समय ज्यादा दिन नहीं चला। एक दिन अचानक पापा को दिल का दौरा पड़ा और वो नहीं रहे। मैं तब नवीं में थीं। बड़े भैया पढ़ने के लिए विदेश जा चुके थे। छोटे भैया भी उन दिनों इंजीनियरिंग की पढ़ाई करने के लिए नागपुर में थे। घर में बस मैं और माँ। पापा की कमी मुझे बहुत सताती। मैं अक्सर माँ से छुपछुप कर रोया करती। और माँ मुझसे बचकर धोती के पहलू से आँखें पोंछती, जिसे मैं हमेशा देख लिया करती थी।

इसी तरह छाती पर पत्थर रखकर माँ ने सोलह बरस बिता दिए। भाइयों को पढ़ाया उनकी शादियाँ की। बड़े भैया, भाभी को लेकर अमरीका में ही बस गए और

छोटे भैया अपने परिवार सहित मेरठ चले गए। इस बीच माँ मेरे लिए विवाह के लिए हाथ–पैर मारती रही पर कोई निष्कर्ष नहीं निकला। बड़े भैया कभी–कभी मिलने भी आ जाते पर उन दो तीन दिनों में मैं और माँ उनकी खातिरदारी ही कर पाते। न उन्होंने कभी कोई बात की और न हम ही कह पाते। किसी तरह पढ़ाई पूरी हो सकी। माँ भी अब बीमार रहने लगी थी। चारों कमरे बंद पड़े थे। हम दोनों बैठक में ही सोते। आँगन में बैठते तो माँ उदास हो जाती, कहती बिट्टो तेरे पापा ने यह घर बड़े अरमानों से बनवाया था, मैं तो तुझे ससुराल भी नहीं भेज सकी। माँ फिर रोने लगती और शायद मैं भी।

इसी तरह रोते–रोते एक रात माँ सोई तो फिर सुबह नहीं उठी। मेरे सामने अब ऐसा कुछ नहीं था जिसके कारण इस घर से बँधा जा सके। मन उचाट–सा रहने लगा। घर में एक पल भी रहने को जी नहीं करता था। रह–रहकर माँ के साथ बिताए हुए दिन याद आते जो हम दोनों ने एक–दूसरे का दुःख बाँटते एक साथ बिताए थे। तो कभी पापा के समय की खुशनुमा यादें जब हम सबकी आँखों में एक सपना पलता था। भाइयों की याद आती। घोर निराशा के इन्हीं दिनों में एक दिन अखबार पढ़ रही थीं। कोने में एक छोटा–सा विज्ञापन छपा था, एक अपाहिज महिला की सेवा के लिए किसी महिला की जरूरत है। इच्छुक व्यक्ति इस पते पर संपर्क करें। 1.0 विवेक विहार, दिल्ली।

मैंने संपर्क के लिए दिए गए फोन पर बात की और अपने जाने की तैयारी शुरू कर दी। निश्चित तारीख पर मैं घर से दिल्ली के लिए रवाना हो गई थी। घर बहुत याद आ रहा था, आज सबकुछ छोड़कर मैं जा रही थी शायद हमेशा के लिए। शाम ढलने लगी थी, लोग बिस्तर खोलने लगे थे। मैंने भी अपना बिस्तर बिछाया और लेट गई। लेटते ही नींद कब आ गई पता ही नहीं चला। सुबह दिल्ली स्टेशन पर उतरते ही विभिन्न आशंकाओं से मन में उथल–पुथल होने लगी। सामने टैक्सी वाला जैसे मेरी ही प्रतीक्षा कर रहा था। बैठते ही मैंने उसे पता थमा दिया, 'देखो भैया इस पते पर पहुँचना है। मकान ढूँढ़ने में लगभग आधा घंटा लगा होगा। टैक्सी वाले को पैसे देकर मैंने बेल बजाई। एक अधेड़ उम्र के व्यक्ति ने दरवाजा खोला। मैंने अखबार की कटिंग और अपने आने की सूचना का जिक्र किया तो उन्होंने मुझे पहचान लिया। मुझे बैठक में बैठाया और पत्नी को आवाज दी। भीतर से कोई उत्तर नहीं मिलता देख वे उठकर अंदर चले गए। उस बीच नौकर मुझे पानी दे गया था। भीतर से किसी महिला के रोने की आवाज के साथ बहस की आवाजें भी आ रही थीं। मैं घर की साज–सज्जा और वहाँ के माहौल को देख घरवालों के स्वभाव और रूचियों का अंदाजा लगाती रही। अंदर की बातचीत से भान हुआ कि गृहस्वामी पत्नी को बाहर आने के लिए कह रहे हैं और वह आना नहीं चाहती। काफी चिक–चिक के बाद पुरूष अपनी पत्नी को

बाहर लाने में सफल हो सका। व्हीलचेयर पर बैठी वह स्त्री जब मेरे सामने आई तो कुछ देर के लिए मैं मंत्रमुग्ध सी उसके अर्पूव सौंदर्य को निहारती रह गई। दूसरे ही क्षण मेरी नजर उसके पैरों पर पड़ी, मैं भीतर ही भीतर लगभग चीख उठी। उस खूबसूरत पत्नी के दोनों पैर नहीं थे। उनके पति ने बताया कि उनके विवाह के कुछ ही महीनों बाद, एक एक्सीडेंट में उनकी दोनों टाँगें कट गई थीं। उनके बेटों का जन्म बाद में हुआ। इस बीच वह स्त्री बिलकुल भी नहीं बोली थी, क्रोधित दृष्टि से अपलक पति को देख रही थी। उस समय मैं उनके गुस्से का अर्थ नहीं समझ सकी थी। पति–पत्नी के इस रहस्यमय व्यवहार से मैं कुछ देर के लिए विचलित होने के बाद पुनः स्थिर हो गई क्योंकि न लौटने का निश्चय करके ही घर से निकली थी। पत्नी से परिचय कराने और मेरा काम मुझे समझाने के बाद अग्रवाल साहब दिल्ली और उनका बेटा मनु कॉलेज जा चुके थे। मनु डॉक्टरी की पढ़ाई कर रहा था।

अब घर में मैं और कमला जी अकेले थे। सबके जाने के बाद उनके चेहरे की तनाव की रेखाएँ क्षीण हो चुकी थीं। उन्होंने मेरे बारे में सबकुछ जानने के लिए मेरे अतीत को खोद–खोदकर अनेक प्रश्न कर डाले और मैं यंत्रवत उनके प्रश्नों का जवाब देती रही। मेरे बारे में जानने के बाद वे मेरे प्रति अत्यंत सहृदय हो चुकी थीं। मैं उनके साथ रहने लगी जैसे माँ के साथ रहती थी, धीरे–धीरे मैं उनके स्नेह में बँधती चली गई। वे मुझसे बहुत–सी बातें करतीं। उन्होंने ही मुझे बताया कि उनके पति कलकत्ता में बिजनेस करते हैं कभी–कभी छुट्टियों में मिलने आते रहते हैं। बेटा कलकत्ता में ही हॉस्टल में रहकर पढ़ाई कर रहा है। मैं जी–जान से उनकी सेवा करती। हम दोनों साथ–साथ खाना खाते, साथ–साथ सोते और घंटों बातें करते। पर जाने क्यों वे जब भी अकेली होती बहुत उदास होतीं। दो–एक बार तो मैंने उन्हें रोते हुए भी देखा था, कारण समझ न सकी। अग्रवाल साहब का आना भी अब कम हो गया था। बेटा कभी–कभी माँ से मिलने चला आता। उनकी पढ़ाई अब पूरी होने को थी। जब वह आता उन दिनों वे बहुत खुश रहतीं और व्हीलचेयर पर ही दौड़–दौड़कर उसकी पसंद का खाना बनवातीं। मुझे बताती जाती बिट्टों मनु के खाने में दही जरूर होना चाहिए, वह बिना दही के खाना नहीं खाता। नाश्ते में मनु को गोभी के पराठे अच्छे लगते हैं वहीं बनाना आदि। उसके कपड़े धुलवातीं, प्रेस करवातीं। उनको इस तरह प्रसन्न और उत्साहित देखना मुझे बहुत अच्छा लगता। आँखों के आगे माँ का पिता के जीवनकाल का हँसता हुआ चेहरा घूम जाता, और आँखें नम हो जाती। इतना प्यार, त्याग, समर्पण बदले में क्या मिला माँ को जो भी आगे निकल गया उसने पीछे मुड़कर नहीं देखा। अंतिम समय में माँ कितनी निरीह और निराश हो गई थीं। मुझे ससुराल न भेज पाने की असमर्थता उन्हें भीतर ही भीतर कचोटती रहती थी। मुझे कहती छोटा–सा था प्रकाश तब कितना प्यार करता था मुझसे, मुझे छोड़कर कहीं नहीं रह पाता था। आज उसको देखो कितने बरस बीत गए। मैं उनको समझाती। माँ मैं तो हूँ। पता नहीं वह

कुछ समझती या नहीं पर मरी–मरी आँखों से मेरी तरफ देखती रहतीं।

कमला जी से मुझे जीवन में दोबारा माँ का प्यार मिला। उनके स्नेह से हौसला पाकर एक दिन मैंने उनसे पूछ ही लिया। ''आप इतनी उदास क्यों रहती हैं। मुझे बताइए न! मन हल्का हो जाएगा।'' मैंने उनके कंधे पर हाथ रखा ही था कि वे टूट गई। देर तक फूट–फूट कर रोती रहीं। तभी उन्होंने अपने बारें में बताया कि मनु पेट में था तभी एक दुर्घटना में मेरे दोनों पैर कट गए। बच्चे के जन्म के बाद और सास–ससुर के देहांत के बाद मेरे पति के व्यवहार में बहुत तेजी से बदलाव आया। इन्होंने कलकत्ता में अपना बिजनेस शिफ्ट किया, दूसरी शादी की। अपना घर बसाया मुझसे दूर, मैं देखती रही। तुम्हें मेरे पास छोड़कर और मनु को पढ़ाकर इन्होंने अपनी जिम्मेदारी पूरी कर दी है। अब ये कभी नहीं आएँगे। यह कहते–कहते वे फिर रो पड़ी। मैं घंटों उनके बेहद खूबसूरत मगर कांतिहीन चेहरे को देखती रही थी।

उस दिन से मैं उनके काफी करीब आ चुकी थी। जब भी वे उदास होतीं तो मुझसे कहकर मन हल्का कर लेतीं। मनु पढ़ाई पूरी कर डॉक्टर बन चुका था। कभी–कभी माँ से मिलने आता रहता। पता नहीं क्यों मुझे मनु अच्छा लगता।

पिता और भाइयों के बाद पहली बार किसी पुरुष को इतने करीब से देख रही थी। मनु को लेकर मैं अपने ही ख़्यालों में खोई रहती और माँ जी की सेवा करती। इस बार मनु 15–20 दिनों की लंबी छुट्टियाँ लेकर आया था। वह दिल्ली में ही नर्सिंगहोम खोलने की तैयारी कर रहा था। उसको आये हुए चार–पाँच दिन गुजर चुके थे। ऐसे ही एक दिन मैं किचन में थी तभी मुझे अपने पीछे किसी के खड़े होने का आभास हुआ। मैंने पीछे मुड़कर देखा तो मनु था। मुझे आश्चर्य हुआ, मनु इस समय यहाँ वह सहज था। उसने पूछा क्या कर रही हो! चलो अंदर बैठते हैं। मुझे तो जैसे विश्वास ही नहीं हो रहा था। मेरा सपना सच भी हो सकता है क्या? मैं चुप रही, बस उसकी तरफ देखा और कढ़ाई में पकती सब्जी चलाने लगी। शायद मेरी मनःस्थिति को भांप गया था। मनु अच्छा खाना खा लो फिर बाहर आओ मैं माँ के पास हूँ। वह चला गया। मुझे तो जैसे कुछ समझ में ही नहीं आ रहा था। खुशी का जैसे तूफान–सा उठ रहा था अंदर में। मैं जल्दी ही काम खत्म करके बाहर आ गई। हम तीनों साथ थे। मैं प्रतीक्षा करती रही मनु कुछ कहेगा, पर वह चुप था।

माँ जी को लिटाकर मैं भी अपने कमरे में सोने चली गई थी। मनु ने मुझे क्यों बुलाया, वह क्या कहना चाहता था, मैं पहले ही क्यों नहीं चली गई। इस तरह की अनेक बातें सोचते हुए मैं कब सो गई, पता नहीं। गहरी नींद में थी तभी मुझे लगा कि कोई मेरे करीब है। आँखें खोली तो मनु था। ''मैं तुम्हें बहुत प्यार करता हूँ बिट्टों'' उसके इस एक वाक्य के साथ ही मैं उसके आगोश में थी। मैं चाहते हुए भी उसका विरोध नहीं कर सकी। अंतर्मन में कहीं किसी पुरुष की चाह ने मुझे कमजोर बना दिया

था। शायद मनु रात भर मेरे कमरे में रहा और सुबह चला गया था। सवेरे देर से उठी। दूसरे दिन मनु का व्यवहार भी बदला–बदला था। हँसते बोलते 10 दिन बीत गए उसकी छुट्टियाँ खत्म हो गईं और वह चला गया। उसके जाने के बाद मेरा मन नहीं लगा। मैंने अपने कों संयत किया और सोचा माँ जी से बात करूँ। फिर यह सोचकर चुप रही कि मनु अपने आप ही बात करेगा। मैं अपने काम में व्यस्त हो गई थी।

मनु को गए तीन महीने बीत चुके थे। उसकी कोई सूचना नहीं थी। मेरे शरीर में होने वाला परिवर्तन मुझे डरा रहा था। अब मुझे अपनी गलती का अहसास हो गया था। अब अगर वह लौटकर नहीं आया तो इस आशंका से देह काँप उठती। मेरे पीले पड़ते चेहरे को भाँपकर माँ जी ने ही पूछा, ''क्या बात है बिट्टों भाईयों का कोई खत आया क्या? उनके प्यार और सहानुभूति का स्वर था मैं बिखर गई थी, मैंने उन्हें सब कुछ बता दिया। उन्होंने आश्चर्य से मुझे देखा और दूसरे क्षण स्थित हो मुझसे ढाँढस बँधाते हुए कहा, ''तू चिंता मत कर बेटी मैं हूँ न! मनु अपने बाप का ही बेटा है। वह नहीं आएगा।''

उन्होंने बच्चे के जन्म तक मेरी जी–जान से देखभाल की। पास–पड़ोस की महिलाएँ अक्सर माँ जी के पास आया करती थीं। उनमें से कुछ उनकी अच्छी दोस्त थीं। उनकी मदद से डॉक्टर को घर में ही बुलवाकर बच्चे का जन्म हुआ। माँ जी ने नाम रखा विवेक।

मनु नहीं आया। माँ जी के किसी परिचित ने बताया उसने वहाँ विवाह कर लिया है उसकी पत्नी भी डॉक्टर है। दोनों मिलकर नर्सिंगहोम चलाते हैं। मैं थोड़ा उदास हो गई थी यह सब सुनकर। माँ जी ने एक दिन मुझसे कहा, बिट्टों मैं इस घर में एक आश्रम खोलना चाहती हूँ। संसार में ऐसी औरतों की कमी नहीं है जो बेसहारा हैं, दुखी हैं, मैं उन्हें घर देना चाहती हूँ, उन्हें प्यार देना चाहती हूँ। तू मेरी मदद करे तो मैं यह सपना पूरा कर सकती हूँ। मैं प्यार से लिपट गईं थी माँ जी से। हम दोनों रो रहे थे लेकिन मन में एक नई उमंग थी कुछ नया करने की। हमने काम शुरू किया। अपने आश्रम को नाम दिया 'अपना घर'। हमारा घर जल्दी ही दुखी बेसहारा महिलाओं से भर गया था। हम सब एक दूसरे का सहारा थे। अपने को आर्थिक रूप से सबल बनाने के लिए माँ जी के कुशल निर्देशन में हमने बुनाई का काम शुरू किया। मार्केट में हमारे स्वेटर की बहुत डिमांड थी। कमला जी स्वेटर बहुत अच्छे बनाती थीं। हम सबने मिलकर अपने प्रयासों से घर में ही एक दुकान खोल ली। आज हमारे पास खरीददारों की कमी नहीं है, घर आकर लोग ऑर्डर दे जाते हैं हम उनके लिए उनके हिसाब से स्वेटर डिजाइन करते हैं।

हमारे परिवार में दो सौ से अधिक महिलाएँ हैं, हम सब माँ जी के इसी घर में

रहते हैं माँ जी ने यह घर संस्था के नाम करके एक ट्रस्ट बनवा दिया था। हमारे परिवार का भोजन एक जगह तैयार होता है। माँ जी तो आज हमार बीच नहीं है लेकिन उनकी ऊर्जा और उनका आशीष हमारे साथ आज भी है।

इस बार मैं अकेली नहीं हूँ मेरे साथ मेरा परिवार और मेरा विवेक भी है। मैं विवेक को अपने अंक में लेकर पूछती हूँ 'बेटा अपनी मम्मा को छोड़कर नहीं जाएगा न'। वह मेरे गले में बाहें डालकर कहता है, 'नहीं मम्मा मैं तुम्हारे पास ही रहूँगा, कहीं नहीं जाऊँगा।' मैं हाथ बढ़ाकर उसे चूम लेती हूँ। मेरी नम आँखों में माँ, कमला जी और अतीत के अनेक चित्र गड़मड़ होने लगते हैं।

❑❑❑

कहानी

पहेली

रजनी दिसोदिया

वेद सी.आर.पी.एफ. में सिपाही भर्ती हुआ और अब तरक्की पाकर इंस्पेक्टर के ओहदे तक पहुँच गया था। घर–गाँव में उसकी इज्जत थी। पढ़–लिखकर बाहर निकल गया इसलिए कुछ अदब कानून भी सीख गया था, मालूम हो गया था कि अब वो पुराना फार्मूला नहीं चल सकता कि जब सिर पर जिम्मेदारी आएगी तो लड़का कमाने भी लगेगा। किसी भले घर की बेटी ले तो आओ और उसे दो बखत की रोटी और कपड़ा देने की बात आए तो पीट डालो। बेचारी अपने भाग (भाग्य) को रोकर जिंदगी काट देगी। अब ऐसा नहीं होगा। पर जब–जब घर आता माँ यही रट लेकर बैठ जाती।

"तू इसका ब्याह क्यूँ नी करता.... बैरी...." आज फिर सरबती ने उसे घेरा। बेटा साल में एक दो बार घर–गाँव के चक्कर लगाता था उसमें ही सरबती यह रोना लेकर बैठ जाती थी।

"ख्वावै के गा यो उस ब्याहली नै..." बेद ने आज भी अपना पुराना रटा–रटाया सा जवाब दिया। वह खुद भी चाहता था अपनी इस जिम्मेदारी को पूरा कर पाता। पिता को दिया अपना वादा पूरा कर देता। पर कोई बाप उसके निकम्मे भाई को अपनी लड़की देने को तैयार ही न था। वह देख भी रहा था जमाना बदल रहा है, लड़कियाँ पढ़–लिखकर आगे बढ़ रही हैं, वे अपनी किस्मत सँवारना चाहती हैं। और न भी पढ़ लिख रही हों पर ये तो चाहती ही हैं कि खसम कोई काम–धाम तो करता हो। पर बेटे के प्यार में अंधी इस माँ को वह कैसे समझाए।

माँ आज फिर चूल्हे पर रोटियाँ सेंक रही थी।

"यो फेर क्यूँ धुम्मा ठा राख्या सै... गैस खतम होगी के?" उसने बात बदलने के लिए पूछा।

"के आज की.....? यो तो महीना हो लिया जबसे खतम सै। इससे पहले की बेद कहता कि 'छोट्टे नै भेज कै क्या नै न भरवा लिया सिलेंडर' उससे पहले ही सरबती बोल पड़ी। "जभी तो कहुँ... जो उसकी बहू की आँख्यां मैं बड़ै यो धुम्मा तो न चालैगा वो भरवाण नै" आगे कुछ कहना बेकार था। बेद चुपचाप रोटी का इंतजार करने लगा।

गैस चूल्हा, सिलेंडर सब था। जब वह आता सिलेंडर भरवा जाता जब वह खाली हो जाता तो माँ फिर से गोस्से सुलगा लेती। छोट्टा किसी काम को हाथ नहीं लगाता। आखिर वह कब तक उसे ढोता पर माँ को वह न छोड़ सकता था। उसे चुप बैठा देखकर माँ ने फिर कहा।

"अरै ब्याह तो कर कमाण भी लाग ज्यागा..... कसाई...जो इसका बाबू होता तो क्यूँ तेरे नोहरे खात्ती, आप्पै न चढ़ावता घोड़ी" कहकर सरबती सुबकने लगी। उसने यही सुना था यही समझा था। आखिर बेटे को क्यों रोती थी दुनिया। इसीलिए तो कि एक दिन वह घोड़ी चढ़ेगा और बहू लाएगा। घोड़ी चढ़ना और बहू लाना इतना बड़ा पुरुषार्थ था कि जिसे स्त्री शायद स्वयं करने में असमर्थ थी इसलिए अपने बेटे के द्वारा इस पुरुषार्थ को बार–बार जीना चाहती थी। बेद ने अपनी शादी तो पच्चीसवाँ लगते–लगते कर ली थी। बीस बरस होने को आए। तब तो उसने इतना इंतजार नहीं किया। अब भाई की बारी आई तो....

"देख ए माँ तू ये ड्रामे तो करै मतना, तन्नै ही बिलकुल बिगाड़ राख्या सै यो। तीस बरस का होण न आया, न पड्ढै.. न लिक्खै, कितै मजूरी ही करण लाग जा...। ब्याह करदै, ब्याह करदै, दिमाग खराब कर राख्या सै"

बाप था नहीं और बड़ा भाई घर से दूर, माँ के लाड़–प्यार ने छोटे को किसी काम का नहीं छोड़ा। सिर्फ बेटों की माँ होने के गरूर में वह भूल ही गई थी कि बेटों को जनने के बाद उन्हें लायक भी बनाना होता है। इस बार फिर बेद उसे टरकाकर वापस चला गया। उसने भी नहीं सोचा कि पानी को बहने का रास्ता नहीं मिलेगा तो उफान आने पर वह किसी के भी खेत खलिहान में घुस जाएगा। एक दिन सरबती को छोट्टे ने बताया था कि माँ तू चिंता मत कर, बहू तो चालीस हज्जार में मिल जाएगी बस तू मेरा हिस्सा मन्नै दिवा दे। सरबती ने भी इस बार मर्दानगी दिखाई और बेद को बिना पूछे, बिना बताए ही छोट्टे का घर बसा दिया। घोड़ी चड्ढ़ण की के जरूरत है जब बहू न्यूँ ही मिल रही हो। गाँठ मैं पीसे होणे चहिएँ। छोट्टे का घर बस गया था, साथ में धंधा भी। गाँव में कुँवारों और रंडवों की कमी थोड़े ही थी।

"यो भादवा का घाम बिगाड़ै सारा काम..." रेड लाईट पर सबसे आगे तीर की तरह निकल जाने को तैयार मोटर साइकिल पर सवार बीट कांस्टेबल ने पीछे बैठे अपने साथी से कहा। आसमान में कहीं बारिश का नामोनिशान नहीं था पर आसपास सभी के कपड़े गीले थे और सभी के माथे व बाजूओं पर से पसीने की धार बह रही थी। गजब की उमस थी पर दिल्ली पुलिस सदैव आपकी सुरक्षा में तैयार अपने गंतव्य की ओर बढ़ रही थी। 'हैलमेट, पुलिस से बचाव नहीं आपका मौत से बचाव है' इस बात को खूबसूरत जिंगल के साथ गाने के बावजूद दोनों ने अपना–अपना हैलमेट उतारकर हाथ में ले लिया था। इतनी भंयकर गर्मी में हेलमेट के भीतर तो दम ही घुटने लगता है।

थाने में किसी ने सूचना दी थी कि नालेपार वाली झुग्गी बस्ती में एक परिवार के पास एक नवजात बच्चा देखा गया है। बच्चा चोरी का है। बच्चे की उम्र कोई दस बारह दिन होगी। न तो परिवार में कोई स्त्री गर्भ से थी और न ही कोई रिश्तेदार ही आया है। परिवार का कोई पड़ोसी ही पुरानी दुश्मनी निकालने के लिए दिल्ली पुलिस की आँख और कान बन गया था। एरिया के अस्पतालों से नवजात बच्चों की चोरी का मामला जोर पकड़ता जा रहा था। यूँ भी ऐसी झुग्गी बस्तियाँ हर प्रकार के क्राईम में पुलिस वालों की हिट लिस्ट में होती ही हैं।

छह महीने ही पहले पार्बती पंद्रह दिन के लिए अपने गाँव गई थी, अपनी मौसी के लड़के की बेटी के ब्याह में और पीछे से अपनी पड़ोसी बिरमू की महतारी को कह गई थी कि दस पंद्रह दिन वह उसका भी काम सँभाल ले। 'दारी नै अपनी बहू लगा दी वहाँ।' उसका जमा–जमाया काम हड़प लिया। पार्बती उम्रदराज औरत थी। यूँ बिरमू की बहू के ब्याह को भी दस बरस हो गए थे पर कोई बाल–बच्चा नहीं था सो वैसी ही चटक–मटक थी। जबान कम और हाथ ज्यादा चलाती थी। पार्बती की मैडम को वह भा गई। अब पार्बती मैडम का तो क्या बिगाड़ सकती थी। पर वह इस ढ़लती उम्र में कहाँ जाए? उसकी बिरमू की महतारी से ठन गई। लंबे इंतजार के बाद उसे अब मौका मिल ही गया।

शक तो उसे कल रात भी हुआ था तब तो बिल्ली के बच्चे की आवाज समझकर वह करवट बदल कर सो गई। सबेरे ही घर के बाहर सोते उसके लड़के ने अपनी माँ से पूछा– "हैं री माँ बिरमू चाचा के कोई रिश्तेदार आरया है? कोई दीखता तो न है पर किसी जमा ही छोटे बालक नै रात में घुमाण लाग रये थे। रोवै ही जाए था।" कहकर लड़का तो सरकारी शौचालय की लाईन में लगने चला गया पर पार्बती को अचानक से रात की याद आई। कुल्ला करने, दाँत माँजने घर से बाहर निकली तो सभी तरफ लोग फुसफुसा रहे थे। बाहर सरकारी नल पर तो मजमा लगा था। हर उम्र की औरतें पाँच से पचास तक सभी अपनी–अपनी बाल्टियाँ, पीपे और बासण लेकर पानी के लिए लाईन में खड़ी थी और अपनी–अपनी उम्र की औरतों के साथ जोड़ी बनाकर बतिया रही थीं।

क्यूँ री कल तो मास्टर जी नै तेरे कान पै रैपटा मारा था, आज भी तू बाल खोल के जाएगी स्कूल?" यह सरकारी स्कूल में पढ़ने वाली स्वीटी थी।

चल झूँट्टी मास्टर जी नै मेरेको थोड़ी मारा था वो तो शबनम कल बालों में पफ बना कै आई थी, मास्टर जी नै तो उसके कान पर रैपटा मारा था। पूजा ने जवाब दिया। दोनों जल्दी में थीं क्योंकि दोनों को घर का पानी भरकर स्कूल भी तो जाना था। वहाँ भी देर से पहुँचने पर हमेशा की तरह पूरे पार्क में घूम–घूम कर कागज उठाने पड़ेंगे।

तुलसी अपनी मैडम का दिया नया सूट पहने थी और इतरा–इतरा कर संतोष

को दिखा रही थी।

"मैं कब से सोचरी थी ऐसा घेरदार सूट पैहरूँ।"

"ये तो सिमर ने पहरा था ना ससुराल सिमर का में।" संतोष ने सूट को देखते ही पहचान लिया।

"मेरी मैडम के हाथ से जरा सा जल गया.. प्रैस कर रही थी अपने आप "कहकर तुलसी के गले से खुशी से भरी चीख–सी निकली जैसे उसकी तो बाछें खिल गईं थी।

"हाँ अब मैडम कहाँ पहरती तेरे तो मजे आ गए।"

"पर मैडम ने इतनी आराम से कहाँ दिया। बहुत दिन तक तो रक्खे रहीं,... कभी इस अलमारी में रखती कभी दूसरी अलमारी में, कभी किसी सूटकेस में.. कल हार कर बोलीं ' ले तुलसी तू भी क्या याद करेगी... तू ही पहर ले, मैंने तो आज ही पहर लिया. .." तुलसी आज खुश बहुत खुश थी।"... शाम को मेरी ननद के बेटे का जन्मदिन है। काम से सीधी चली जाऊँगी।"

संतोष जिस घर में काम करती थी वहाँ कोई मैडम नहीं थी। तीन लड़के थे जो पढ़ाई कर रहे थे। जाने किस चीज की पढ़ाई कर रहे थे कि दिन रात पढ़ते रहते थे कभी कभार उसे देखकर मुस्कुरा देते थे और उसके लिए इतना ही काफी था। मैडम लोग बहुत झिक–झिक करती हैं जिससे वो मुक्त थी।

पार्वती भी अपनी हमउम्रवालियों के करीब जाकर खड़ी हो गई। वहाँ बिरमू की महतारी की चर्चा पहले से ही चल रही थी। पार्वती को आता देख वे सब उसकी ओर उन्मुख हुई।

'हैं री पारबती तू बता बिरमू की बहू पेट से थी....?" पार्वती की झुग्गी बिरमू के बगल में ही थी। कलबिंदर की अम्मा ने उससे पूछा।

"जातक पेट के अंदर जरूर रहवै है पर पेट तो बाहर ही लिकड़ा दिखै है।" कासिम की घरवाली पार्वती के बोलने से पहले ही बोल पड़ी। बिरमू की बहू जिस मैडम के घर काम करती थी उसी की बगल वाली कोठी में हबदा काम कर रही थी। कितनी बार दोनों साथ–साथ जाती आती थी। आपस में बतिया भी लेती थीं। पर न कभी उसने चर्चा की और न कभी हबदा को ऐसा लगा कि वह उससे पूछ ही लेती। उसी ने कासिम की घरवाली को बताया था।

"न..न.. हो ही न सकै। बोलचाल बंद थी, हमारी आँख थोड़ी बंद थी। थोड़ा रुक कर सोचकर पार्वती ने कहा। "कह तो हमारा किरसन भी रया था। रात बिरमू चाचा किसी बालक ने घुमा रहे थे और वो रोवै ही जाए था। पर मैंने अपणी आँखों न देखा।. ... गंडे–ताबीज तो करावै थी बिरमू की महतारी, "पार्वती को याद आया। 'देसी दवाई भी कराई थी... वो बैद तो मैन्ने ही बताया था।"

"तो बैद नै बणा दिया जो बालक रातोंरात या उसनै पैदा कर दिया..।" हबदा ने हाथ चमका कर जोरदार ठहाका लगाया। उसका नंबर आ गया था इसलिए वह आगे

बढ़ गई। अपनी बाल्टियाँ, पीपे, घड़ा इत्यादि भरकर वह अपनी बेटी बबली को फटाफट देने लगी। जो एक–एक बरतन भाग–भाग कर घर पहुँचा आती। बातचीत का क्रम टूट गया। कोई कितनी भी जरूरी बात हो पर अपनी बारी नहीं छोड़ना चाहता था।

पार्बती जब अपने बर्तन भर चुकी तो अपने किरसन को पुकारने लगी। 'रै कामचोर कहाँ दुबक गया ये तेरी अम्मा उठाकर ले जाएगी और फिर अपनी मूर्खता पर झल्लाई क्योंकि फिर वही तो एक–एक कर अपने सारे बर्तन वहाँ से उठाकर घर ले गई।

एक हाथ में दस किलो के इंडियन ऑयल के पानी भरे केन को उठाए और दूसरे में भी पानी का दूसरा पीपा लिए जब वह अपनी झुग्गी के बाहर पहुँची तभी बिरमू की महतारी अपने आँचल में कोई तौलिया सा दबाए निकली। कुछ था जिसे वह छिपा रही थी पीछे–पीछे हड़बड़ी में बिरमू और उसकी बहू भी निकली तीनों ने आव देखा न ताव, तेज कदमों से आगे बढ़ गए। पार्बती की यूँ तो पिछले छह महीने से ही उनलोगों से कोई खास बातचीत नहीं थी पर ऐसा भी कोई झगड़ा नहीं रह गया था कि सामने–सामने कोई दुआ–सलाम भी न हो। कुछ तो गड़बड़ है एक बार तो लगा कि पीछे से टोक दे और पूछ ले, पर यह सब सोचने में ही देर हो गई।

किरसन का बापू चौकीदारी का काम करता था। आजकल कितनी ही प्राइवेट कंपनियाँ शहरों में, कॉलोनियों में, सरकारी प्राईवेट दफ़्तरों में सिक्योरिटी गार्ड्स की सुविधा मुहैय्या कराती हैं। प्रायः चालीस से साठ के बीच के सात–आठ तक पढ़े प्रौढ़ पुरुष जो कठोर मजदूरी के काम में उतना खप नहीं पाते वे इन कंपनियों में सिक्योरिटी गार्ड्स के रूप में काम करते हैं। किरसन का बापू भी नौंवी फेल था। पिछले चार दिन से उसकी रात की शिफ्ट चल रही थी। सुबह आठ बजे की ड्यूटी खत्म करके वह अपने घर पहुँचा ही था। आते ही पूछा– "वो छोरा काम पै गया कि नहीं?" 'गया होगा मैं क्या जानूँ' पार्बती ने अनमना सा जवाब दिया। 'क्यूँ बता कै न गया?' वह वहीं खाट पर बैठकर पाँव के जूते खोलने लगा। अब वह ग्यारह–साढ़े ग्यारह बजे तक सोएगा और पार्बती दोनों बाप–बेटे के लिए रोटी–पानी का इंतजाम करके पड़ोस के ही नए–नए खुले स्कूल में चली जाएगी। वहाँ वह बहुत छोटे बच्चों के टट्टी–पेशाब का काम देखती है। काम थोड़ा बुरा जरूर है मेहनत भी ज्यादा माँगता है पर पैसा पाँच हजार मिल जाता है और दिन में सिर्फ पाँच घंटे का काम।

आज पार्बती भाग–भागकर काम नहीं कर रही थी। न जाने किस उलझन में थी। मुन्नीलाल कब से इंतजार कर रहा था कि कब पार्बती चाय पकड़ाए और वह पीकर कुछ देर सो ले। 'के बात... कुछ तबीयत तो ठीके है तेरी..?' मुन्नीलाल ने पार्बती के बगल में बैठते हुए पूछा। पार्बती जैसे चौंक पड़ी।

'सोए नहीं हो अब तक?'

तू भांग खा गई है क्या या अभी तक रात की नींद में है। नौ बजने के आए न

तो तने चाय दी और न आज तुझे अपने काम पर ही जाने की जल्दी है।' मुन्नीलाल ने पार्बती को पकड़कर हिला दिया।

'अरे हाँ, जैसे पार्बती होश में आई। फिर अचानक बोली।

बिरमू के घर कोई बालक है।

मतलब

दूध पीता

किसका?

कोई तंतर–मंतर का लागै है। पार्बती ने अपनी सारी उलझन कह सुनाई।

किसी का ठा (उठा) तो नहीं लाए? मुन्नीलाल ने पूछा।

ठा लाए....? ठा के किसका लावै थे? पार्बती ने गंभीर होकर पूछा।

वो बगल वाली डिस्पैंसरी में से ठा लाई हो। मुन्नीलाल ने वापस खाट पर बैठते हुए कहा। उसने सुना था, अखबार में पढ़ा था कि लोग अस्पतालों से नवजात बच्चों को चुराकर ले जाते हैं। पार्बती के पेट में कुछ–कुछ होने लगा। झुरझुरी सी होने लगी। कुत्ते–बिल्ली के बच्चे अचानक से किसी भी दिन जब घर के आस पास अपने लटपटाते कदमों से घूमते नजर आते हैं तो भी मुँह से अचानक निकल ही जाता है अरे ये कहाँ से आ गए। यहाँ तो घर से बिलकुल लगते घर में इंसान का बच्चा रहस्यमयी तरीके से अचानक से आ गया था। एक अजीब सी चुल पार्बती के भीतर मची थी। किसी के बच्चे को चुराकर ले आने का विचार ही उसे भीतर तक झकझोर रहा था। 'हे भगवान कितने कमीने हैं ये लोग। वह बार–बार उस स्त्री के बारे में सोचती जिसका बच्चा उठाकर लाया गया होगा। उस बिलखती औरत के बारे में सोच–सोच कर उसे क्रोध आने लगा। इस सरासर अन्याय के खिलाफ उसे कुछ करना चाहिए। वह नहीं जानती थी कि न्याय के पक्ष में उठे उफान को हवा कहीं भीतर से मिल रही है।

"चलो किसन के बापू मैं तो थाने मैं इनकी शिकायत करके आऊँगी।"

"थाने में, बावली होगी मैं तो सोच रहा हूँ, कोई सच्ची थोड़े ही है कि उठाकर ही लाए हों।" मुन्नीलाल पुलिस के चक्कर में पैर नहीं फँसाना चाहता था। खामख्वाह क्यों किसी के फटे में पैर फँसाए। पर पार्बती को तो जैसे कोई जुनून सवार हो गया था, उसे कोई राह सूझ गई थी, उसे पुराना हिसाब चुकाना था। वह उठ खड़ी हुई और चल पड़ी। मुन्नीलाल भी झक्क मारकर साथ हो लिया।

जी जनाब..., जी...जी...जी... जनाब। अगले दस मिनट के अंदर वह साहब के कमरे में था। चिपचिपाते हाथों से फोन को जेब में सरकाया। साहब अंदर वाले कमरे में थे। फ़्लश चलने की आवाज आई। साहब सफेद झक्क रुमाल से हाथ पोंछते अपनी कुर्सी की ओर बढ़े।

लल्लन,

जी जनाब,

अरे रहता कहाँ है ...? आजकल... इलाके की कोई खबर रहती है या नहीं।

जनाब..." लल्लन की कनपटी से पसीना बहने लगा। उमस बहुत थी पर साहब के कमरे में तो ए.सी. चल रहा था। पर लल्लन के भीतर बादल घुप्प हो इंतजार कर रहे थे। साहब अब इत्मीनान से बैठ चुके थे।

तेरे इलाके की झुग्गी बस्ती में बच्चा चोरी करने वाला कोई गिरोह है...." लल्लन को समझ नहीं आया, साहब उससे पूछ रहे हैं या बता रहे हैं। कुछ पता चले तो उसके अनुसार ही मुखमुद्रा बनाए। पर कुछ न समझ पाकर वह घबरा गया। फिर सँभलकर बोला–" नहीं जनाब ? रोज इलाके में गश्त होती है जनाब। ऐसी कोई वारदात की कोई खबर तो नहीं लगी जनाब।"

खबर वो बाहर बैठी है। साहब उसकी घबराहट भरी होशियारी देखकर मुस्काए। फिर गंभीर होकर बोले— " अभी उस बाहर बैठी औरत ने रिपोर्ट लिखवाई है, तेरे ही इलाके की है। अरविंद को साथ ले जा और इस औरत के आदमी को भी, बंदे को उठा ला।" लल्लन ने अपनी टोपी बगल में दबाई और जी जनाब ठोककर बाहर आ गया। बाहर अरविंद तैयार खड़ा था।

"तेरा भी नाम अख़बार में आएगा, गर ये रैकेट पकड़ में आ गया तो।" अरविंद ने चुटकी ली।

पिछले पाँच–छह महीने से इलाके के अस्पतालों से चार–पाँच दिन के नवजात बच्चे उठाए जाने की वारदातें हो रही थीं। हाँलाकि सरकारी अस्पताल के गरीब माँ–बाप दो–चार दिन रो–धो के रह जाते, खबर शांत हो जाती थी। इतने बड़े देश में वैसे भी एक के बाद एक मुसीबतें अलग–अलग रूपों में धक्कम पेल में ऐसे आती रहती हैं कि एक पर ठीक से ध्यान जम भी नहीं पाता कि अगली आकर सारा ध्यान और हिम्मत छीन ले जाती है। थानेदार साहब को जैसे ही इलाके में चोरी का नवजात बच्चा होने की खबर मिली उन्हें याद आया कि कैसे कई महीनों से एक के बाद एक बच्चा अस्पताल से चोरी हो रहा था। कहीं उनके इलाके में ही तो कोई ह्यूमन ट्रैफिकिंग का गिरोह काम नहीं कर रहा। छोटे बच्चों के अंगों का व्यापार अंतरराष्ट्रीय बाजार में बड़े धड़ल्ले से चल रहा है। इसकी सूचना और सावधानी बरतने के आदेश बराबर ऊपर से आते रहते थे। अब इसका कोई सिरा पकड़ में आया था। उन्हें लगा कि डी.सी. पी. साहब को बताना चाहिए। ....

"बीट कांस्टेबल को भेजा है सर....,

बिलकुल सर....,

आप इत्मीनान रखिए सर...

सर...सर...।

बिरमू नीचे जमीन पर बैठा था। दोनो हाथों से अपना सिर पकड़े था। उसकी महतारी बाहर खड़ी विलाप कर रही थी। 'बच्चा चोरी का नाय है साहब... मोल लिया

है।' पिछले दिनों की भागा–भागी में वह हर काम इतनी सफाई और सावधानी से कर रहा था कि किसी को कानोंकान खबर न हो पर जहाँ एक के घर के अंदर से ही दूसरे का घर शुरू हो जाता हो वहाँ दीवारों के कान भी होने की जरूरत नहीं है। किसी की घर की बातें हवाओं से ही सूँघ ली जा सकती हैं।

"साब बच्चा मेरा और मेरी घरवाली का है...

सटा....क.... जोरदार झापड़ ने जबड़ा हिला दिया। "हरामखोर वो तेरी महतारी बाहर ही पुकारने लग रही तुझे सुनाई नहीं देता।" साहब ने अपने गुस्से को काबू किया और वापस आकर अपनी कुर्सी पर बैठ गए। 'कम से कम घर से तो सलाह करके आते कि.... कहना क्या है।' अब बिरमू क्या बताए चले तो सलाह करके ही चले थे पर यहाँ आकर शायद माँ गच्चा खा गई। अब कोई फ़ायदा नहीं था।

"औरत कहाँ है तेरी... उसी से पूछ लेते हैं।" अबकी बार दूसरे साहब ने पूछा।

"नहीं–नहीं साहब माँ ठीक कह रह रही है, बच्चा मोल का ही है।" साहब का पारा फिर चढ़ने लगा। साला फिर नई कहानी सुना रहा है। इससे पहले कि उस मरियल को मारकर वे खामख्वाह अपनी मुसीबत बढ़ाते और कोई तीसरी नई कहानी बनानी पड़ती, पुलिस का काम, सच तक पहुँचने की ये सारी मशक्कत सच बहुत मुश्किल है। वे उठकर कमरे से बाहर आ गए।

"अरै बेकूब, म्हारे साब तो बहुत नरमी बरत रे हैं, मैं इनकी जिगाह होता तो तन्नै तेरा ही मूत प्या देता। फेर देखता तू किस तरह करतब करता।" साहब के इशारे पर एक सिपाही ने बिरमू के बाल पकड़कर खींचते हुए कहा।

"अरबिंद" बाहर से साहब की कड़क आवाज आई। मतलब था कुछ उल्टा सीधा मत कर देना। अरबिंद बाहर आया और साहब अंदर आ गए।

"अच्छा तो तूमने बच्चा मोल लिया है।...ठीक.." उन्होंने एक दूसरे सिपाही को इशारा करके बुलाया।" इसका बयान लिख।

"हाँ तो ठीक तुमने बच्चा खरीदा... पर कहाँ से? मेरा मतलब है किससे खरीदा?" बिरमू तो फँस गया। अब क्या बताए किससे खरीदा। अब...?

साहब का टेबल पर पड़ा फोन घनघना उठा। यह उनका निजी फोन है। साहब पीछे मुड़े और फोन उठाकर बाहर चले गए। बाहर अँधेरा घिरने लगा था। पता ही नहीं चला कितनी देर से इसी मुद्दे पर माथापच्ची कर रहे हैं।

"पापा मम्मी पूछ रही है आज खाना खाने घर आओगे?' फोन पर बेटी थी।

"हूँ... पता नहीं। देखता हूँ और तू ट्यूशन नहीं गई?

"पापा क्या हो गया... आपको कुछ भी याद नहीं रहता।

अरे हाँ...., हाँ–हाँ आऊँगा, कुछ चाहिए, क्या भिजवाना है?

कुछ नहीं बस आप फिर भूल मत जाना। "बेटी ने फोन रख दिया। साहब ने इशारे से कपूर को बुलाया– "अरे यार वो मैडम को फोन कर ले... पूछ ले क्या–क्या

भिजवाना है। मीठी का बर्थडे है आज।"

जी जनाब... कहकर कपूर वहाँ से हवा हो गया। साहब की बेटी का जन्मदिन मतलब उसकी अपनी बेटी का जन्मदिन। कपूर की यही खूबी थी कम शब्दों में भी पूरा समझता था। उसे एक–एक बात बतानी और समझानी नहीं पड़ती थी। वह साहब के हाव–भाव तक से उनके मन की बात जान लेता था। इसलिए साहब भी अपनी हर पोस्टिंग में उसे साथ रखते थे।

अँधेरा गहरा चुका था। बिना किसी ठोस सबूत के माँ–बेटे को हवालात में रातभर नहीं रखा जा सकता था। बात बिगड़ते देर नहीं लगती पर छोड़ने से पहले कोई मजबूत सूत्र हाथ लगना भी जरूरी था। जैसे ही साहब वापस कमरे की ओर बढ़े। बिरमू की महतारी ने दौड़कर साहब के पाँव पकड़ लिए।

"साहब बच्चा मोल का लिया है। वो चोरी का नाय है। बिरमू नै कुछ नाय किया साब... वो तो लेवे भी नाय था साब बो तो मैने ही जिद करी थी।" अपनी माँ समान औरत को अपने पैर पकड़ते देख साहब कुछ असहज हो गए। 'अरे...अरे' करते उन्होंने उसके चंगुल से अपने पैरों को छुड़ाया। लेडी सिपाही दौड़कर आई और डपटकर बुढ़िया को जोर से धक्का दिया। बुढ़ियाँ वहीं पसर गई। 'इसे भी अंदर भेजो।' कहकर साहब एक बार फिर कमरे में दाखिल हुए। जल्दी से जल्दी उन्हें कुछ करना था। बुढ़िया हाथ बाँधकर डरी हुई सी वहाँ खड़ी हो गई। उसका बेटा बिरमू अभी भी जमीन पर उकड़ू बैठा था। नजरे अभी जमीन पर ही थी। आते–जाते लोगों के केवल जूते उसे दिखाई दे रहे थे या कदमों की आहट सुनाई पड़ रही थी। वह सिर उठाकर किसी को भी नहीं देख रहा था। चालीस बरस का वह होने को आया था कुछ बुजुर्गीयत में अपने को गिनने लगा था। पर माँ के पोता होने के सपने के आगे वह फेल हो गया। पोता भी कैसा जो दुनिया की नजर में उसी का हो। कहाँ फँसा मारा महतारी ने। पता नहीं अब पुलिस वाले उस पर क्या–क्या थोप देंगे। कौन–कौन से गुनाह उसके सिर मढ दिए जाएँगे। उसने तो सोचा था कि बच्चे के साथ पत्नी को गाँव के लिए रवाना कर देगा और गाँवभर यही जानेगा कि शहर जाकर इलाज के बाद उसकी औरत को बच्चा हो गया। माँ ने बताया था कि कितनी ही औरतों को दवा–दारू से शादी के दस–पंद्रह साल बाद भी बच्चा हो जाता है। वो मान भी गया था पर ऐसा हुआ तो नहीं। पर जैसे भी उसकी औरत यह बच्चा पाते ही जैसे जवान हो गई थी।

"हो गया बयान?" साहब ने फटाफट काम खत्म करने के मकसद से कहा। 'जी जनाब, इसने बताया है कि इन्होंने एक औरत से बच्चा खरीदा था।'

"कौन औरत से... साहब ने बीच में टोका।

"वो तो अभी इसने नहीं बताया जनाब।" साहब के माथे पर पड़ती त्यौरियाँ देखकर सिपाही को अपनी गलती का एहसास हुआ। साहब मुलजिम के सामने अपने सिपाही को लताड़ना नहीं चाहते थे इसलिए सीधे बिरमू और उसकी महतारी की ओर

मुखातिब हुए।

"अम्मा मान लिया तुमने बच्चा चोरी नहीं किया खरीदा है वह भी एक औरत से.... किस औरत से? वो कौन औरत है जो बच्चा पैदा करके फिर बेच देती है।...." साहब कुछ जरूरी फाइलों पर साईन करते हुए बोल रहे थे। उनकी बातों का मतलब साफ–साफ दोनों को समझ आ गया था। ऐसी कोई पेचीदा बात थी ही नहीं पर बच्चा लेते समय दोनों की शर्त ही यही थी कि ये लोग अब उससे दुबारा कभी नहीं मिलेंगे और न वो इन्हें कभी पहचानेगी कि उसने अपना बच्चा इन्हें दिया। सारा काम कितनी सफाई से हो गया था पर पता नहीं इस पुलिस को बीच में क्यूँ पड़ना था। पता नहीं किसने चुगली खाई थी।

जीवन भी कितना अजीब है। किसी मुकाम पर पहुँचकर लगता है कि हमने वह सब पा लिया जिसकी इच्छा न जाने कब से सँजोई थी, एक भरेपूरेपन के एहसास से भरे हम उन लोगों के प्रति शुक्रगुजार होते हैं जिनके कारण उस अप्राप्य को हम प्राप्त कर पाए। कृतज्ञता का भाव उन्हें भगवान या देवता का दर्जा दे देता है। नहीं जानते कि यह स्थिति कैसे पलट भी सकती है। बिरमू की महतारी जिसका अभी तक इस कहानी में नाम तक नहीं लिया गया, वह शकुंतला देई हारी–बीमारी में अपनी बस्ती के बगल में पिछले चार–पाँच सालों में खुल गई और चल निकली प्राइवेट क्लिनिक में ही जाती थी। वहाँ पैसा भले ही नकद धरा लिया जाता था पर रोज–रोज सरकारी डिस्पैंसरी के चक्कर लगाने और डॉक्टरों और नर्सों की खीझ से निजात मिल जाती थी। वैसे भी अपने लगे–बँधे कामों में उनको कहाँ फुरसत है बीमारी में छुट्टी भी लेने की। पिछले साल उसकी मुलाकात सर्दियों में उसी प्राइवेट अस्पताल में हसीना से हुई थी। सत्तर के आस–पास पहुँची हसीना कभी हसीन भी रही होगी यह उसकी सूरत से पता न चलता था। सुंदरता उस पेड़ का नाम है जिसे गरीबी का दीमक पनपने ही नहीं देता। बंगाल से दिल्ली की ओर बहने वाली गरीबी की नदी में हिचकोले खाती वह उसकी लहरों द्वारा यहाँ पटक दी गई थी। जब होश आया तो पता चला उसके जैसी और कई सालों से यहाँ पटके जा रहे हैं वह भी उठकर सीधे उनकी बस्ती में चली आई।

सर्दियों के दिन थे। डॉक्टर को दिखाने के लिए लंबी लाईन थी। बाहर घिरते अँधेरे की वजह से सबको जल्दी थी पर अंदर के पेशेंट बाहर आ ही नहीं रहे थे। शकुंतला बाहर बैठी अधीर हो रही थी। वह उठकर दरवाजे के बीचोबीच खड़ी हो गई।

"इसके साथ–साथ तू भी मर जाएगी समझती क्यों नहीं।" भीतर की बातचीत के प्रति सामान्य स्त्रियोचित जिज्ञासा से उसके कान खड़े हो गए। वह उस हरे पर्दे के पीछे की आवाजें सुनने की कोशिश करने लगी।

"देख तेरी सारी बात मैं समझ गई पर.. इतना तो तय है कि तू जीना चाहती है..... हाँ के नहीं।"

हाँ... पर" उस दुबली पतली सी लड़की ने सिर उठाया।

पर..., कुछ नहीं देखते हैं क्या हो सकता है।..... भरोसा रख...

क्या आप....

नहीं... नहीं मैं तो नहीं.... पर देखते हैं।

दो औरतें अनमनी सी उठी और अपना पोलिथीन सँभालती हुई बाहर निकली। शकुंतला ने जवान औरत के पेट की ओर देखा उसका अंदाजा सही था। वह भूल गई अगला नंबर उसी का है। अँधेरा घिर रहा था पर उसे कोई प्रकाश की किरण दिखाई दे रही थी। वह उठकर उनके पीछे–पीछे चलने लगी। अभी तो वह अपनी बारी के लिए बेसब्र हो रही थी और अब वह उठकर बाहर चली जा रही थी। उसकी इस हरकत से वहाँ बैठे मरीज पहले तो अकबकाए फिर अगला नंबर किसका है उसे खोजने लगे। शकुंतला ने बाहर सीढी से उतरते हुए पुकारा "भैन जी" हसीना ने पलटकर देखा शायद वह अपना कोई सामान पीछे छोड़ आई है।

भैन जी यह बच्चा मैं ले लूँगी" शकुंतला ने बिना किसी भूमिका के धीरे से इशारे से कहा। दोनों भौंचक उसका मुँह देखने लगी।

हसीना का घर ज्यादा दूर नहीं था। बस अड्डे के रास्ते में बीच में एक बंगाली बस्ती पड़ती है हसीना वहीं रहती थी। पिछले तीन महीने में शकुंतला ने उस बस्ती के कई चक्कर लगाए थे। पिछले हफ़्ते बच्चा जब सात–आठ दिन का हो गया तो वह उसे घर ले गई थी। जिन लोगों की वजह से उसका घर रौशन हुआ था आज उन्हीं के घर में आग लगाने को वह पुलिसवालों के साथ पहुँची। वह करती भी क्या, सब कुछ वैसे हुआ ही कहाँ जैसा उसने सोचा था। पान की पीक से संकरी गलियाँ रंगी पड़ी थीं। गहरे काले रंग की, मोटी नाक, मोटी आँख, और मोटे होठों वाली बंगालिने वहाँ घरों के बाहर ही बैठी–खड़ीं घर के छोटे–मोटे कामों को निबटा रही थीं। आदमी लोग शायद काम को निकल चुके थे। छोटी–छोटी लड़कियाँ अपने छोटे–छोटे भाई बहनों को कमर से लटकाए माँओं के बोझ को हल्का कर रहीं थीं। मच्छी की बू और मक्खियों के झुँड से पूरा इलाका बजबजा रहा था। पुलिस को देखते ही वहाँ हड़कंप मच गया। हाँलाकि पुलिस का वहाँ आना यूँ एकदम अजीब नहीं था। हसीना और उसकी नातिन को घर पर ही धर लिया गया।

पुलिस की जीप तीनों को लेकर थाने की ओर दौड़ पड़ी।

हसीना, शकुंतला और हाजरा तीनों एक ही बेंच पर बैठी थीं। एकदम चुप्प। किसी को किसी से न कुछ पूछना, न कुछ बताना। शकुंतला का सिर शर्म से झुका था। पर हसीना ने वहाँ के माहौल से सब समझ लिया था। उसे शकुंतला से कोई शिकायत नहीं रह गई थी। गरीबों का दुश्मन कोई नहीं सिर्फ गरीबी ही है। वह इतना ही समझ पाई थी। वह सोच रही थी तो सिर्फ हाजरा के बारे में बेचारी की सारी मेहनत बेकार हुई। अब ये पुलिसवाले उसे वहीं ले जाकर पटक देंगे। उसी कसाई के पास।

उधर हाजरा एकटक जमीन की तरफ देख रही थी। उसका शरीर अभी जापे में ही था। आखिर बीस दिन तो हुए हैं।

दिन के ग्यारह साढ़े ग्यारह का समय था। साहब अभी थाने में पहुँचे नहीं थे। तब तक उन्हें बैठा दिया गया। कल साहब के बेटी का जन्मदिन था। हफ्ते भर बाद साहब को घर जाने का टाईम मिला था तो आज आने में देर हो रही थी। तब तक सामने ही दो महिला पुलिसकर्मी बैठकर उनकी निगरानी कर रही थीं। कार्यवाही साहब के आने के बाद शुरू होगी। चिल्लाती हुई हाजरा अचानक से सामने बैठी पुलिस वाली का डंडा उठाकर भाग चली। उसे पकड़ने को दोनों महिला पुलिस भी उसके पीछे भागी। अचानक हार्न बजाती साहब की जीप अंदर आई। उधर उन दोनों सिपाहियों ने भी डंडा लेकर भागती हाजरा को काबू कर लिया। उसके बाल खींचकर उसके मुँह पर दो झाँपड़ रसीद कर दिए। अभी जोर से चिल्लाकर भागती हाजरा भय से काँपती वापस बैठ गई। उसके बाल अस्त–व्यस्त हो गए थे। मुँह पसीना–पसीना हो रहा था। साहब उसके सामने से गुजरकर अपने कमरे में जा बैठे।

'जनाब वो मजनू का टीला से दोनों औरतों को हम ले आए, बाहर बैठी हैं।" साहब के भीतर आते ही सिपाही ने उन्हें आकर सूचित किया। साहब ने पहले उन दोनों उम्रदराज औरतों को भीतर बुलवाया। उस जवान औरत की मानसिक हालत उन्हें ठीक नहीं लगी। उससे बाद में बात की जाएगी। दोनों औरतें आकर सामने खड़ी हो गईं। साहब के बाल सफेद थे पर उम्र ज्यादा नहीं थी। ऊँची नाक पर ऊँचे टँगे चश्मे के साथ वे फाईलों को भी निपटाते जा रहे थे। कमरे में एक महिला पुलिसकर्मी खड़ी थी। सब इंस्पेक्टर बगल में खड़ा फाईलों के बारे में मौका लगते धीरे–धीरे बता रहा था। साहब की मुखमुद्रा और हाव–भाव का वह पूरी तरह अभ्यस्त था। कब उसे बीच में बोलना है और कब नहीं वह भली प्रकार से जानता था। सामने की मेज की दूसरी तरफ एक हेड कॉस्टेबल डायरी लेकर बैठा था जिसमें उसे सामने बैठे मुलजिमों के बयान दर्ज करने थे।

"हाँ तो अम्मा तुमने वो बच्चा इनसे खरीदा था।" साहब ने फाइलों से क्षण भर को चेहरा ऊपर उठाकर बिरमू की महतारी की ओर देखा।

हाँ साब" बिरमू की माँ ने बिना देर किये जवाब दिया। वह हसीना की ओर देख भी नहीं रही थी।

अब साहब हसीना की ओर मुखातिब हुए।

आपका नाम?

हसीना.... 'साब'

उम्र

सत्तर बरस

क्या आपने अपनी नातिन का बेटा इनके परिवार को बेचा ?

"जी साब" साहब ने एक बार सिर उठाकर हसीना की ओर देखा। उसके चेहरे पर कोई मलाल नहीं था। कोई किसी तरह का दुराव–छिपाव नहीं था। अंदर से बाहर तक एकदम साफ। हसीना को मालूम था अब कुछ नहीं हो सकता। उसने अपनी तरफ से भरपूर प्रयास किया पर जब खुदा को ही मंजूर नहीं तो फिर इनसान क्या करे। गुत्थी अभी भी सुलझी नहीं थी। यहाँ से दो सिरे थे जो निकलते थे। या तो लड़की बदलचन थी न जाने कहाँ से पेट ले आई। या वह जबरदस्ती का शिकार हुई थी। साहब ने सारी फाइलें निपटा दी थी, सब इंस्पेक्टर फाइलें लेकर चला गया। साहब ने मेज पर थोड़ी दूरी पर रखी फाइलों के दूसरे पुलिंदे को देखते हुए पास में रखी बेल दबाई। बाहर से सिपाही भागता हुआ आकर खड़ा हो गया। "शिवदत्त को अंदर भेज दो।" सिपाही वापस चला गया। साहब फिर से हसीना की ओर मुखातिब हुए।

बाहर जो लड़की बैठी है वही तुम्हारी दोयती है।

जी साब।

उसका आदमी ?

नहीं है साहब

'मर गया या भाग गया' साहब ने काम रोककर एकटक हसीना की ओर घूर कर देखते हुए पूछा। हसीना सकपका गई। भय की एक सिहरन सी उसके पूरे शरीर में दौड़ गई। पर नहीं वह कुछ नहीं छिपाएगी। कुछ नहीं। "साहब उसका कोई आदमी नहीं है. वो इसे देश से खरीदकर लाया था। ..... हमारी तरफ गरीबी में माँ–बाप लड़कियों को बेच देते हैं.... साब। हसीना ने लंबी साँस ली। उधर बिरमू की महतारी हसीना की ओर प्रश्नवाचक नजरों से देख रही थी। उसे तो नहीं बताया था ये सब। पर उसने पूछना भी कब चाहा था। वह तो बस खुश थी कि उसे बच्चा मिल रहा है। बच्चा तो बच्चा है उसमें क्या। गरीब लड़कियों की खरीद फरोख्त उसने सुना तो था। ऐसा होता है। उसकी बस्ती में भी सब कौन सी ब्याहली आई हैं। कोई भागकर आई है तो कोई भगाकर लाई गई है। खरीदी हुई भी होगी कोई न कोई। बताता कौन है। और किसके पास फुरसत है पता करने की।

साहब भी जानते थे ऐसा होता है पर यह थाने का काम था यहाँ सिर्फ जानने से कुछ नहीं होता। सबूत होना चाहिए। वरना पता नहीं इसका धंधा हो यह सब करने का। उन्हें एक मीटिंग में जाना था। जाने से पहले यह किस्सा निपटाना था। अभी तक तो जो टीम बिरमू के गाँव भेजी गई थी वो भी बच्चे को लेकर वापस नहीं आई थी। उस पर अब यह नया किस्सा। इस बार तो हद हो गई थी अगस्त खत्म होने को था और बारिश का कहीं नामोंनिशान नहीं। बाहर निकलते ही जान आफत में आ जाती थी। एक सिपाही ने आकर साहब को लंच की सूचना दी। दो बजने को आए। तीन बजे से मीटिंग भी है। आफ्फो! कहाँ जान आफत में फँसी। सोचा था कोई गिरोह है। पकड़ में आता तो थाने का नाम होता उनका नाम होता। पर खैर उम्मीद अभी भी थी।

कौन जाने औरत झूठ बोल रही हो। सच में कोई रैकेट चला रही हो या उसकी मेम्बर हो। पर नहीं पिछले दस सालों से थानेदारी करते–करते चेहरा पहचानने की काबिलियत तो आ गई। उन्होंने उठने से पहले हेड कॉस्टेबल को कहा। "इनसे गाँव का नाम पता ले लो।

सरबती अपने आस–पड़ोस मे पताशे बाँट रही थी। पुलिसवालों को भी गुड़ खिलाकर उसने उनका मुँह मीठा करवाया था। उसका पोता हुआ है। कितनी बड़ी साध पूरी हुई है। उसका बंश चल गया। 'हे भगवान म्हारे तो न्यूँ ही मेहर राखिए।' वह हाथ जोड़–जोड़ अपने कुल देवताओं और पितरों को मना रही है। वेद आज ही गैस भरवाकर लाया था। घर में हलवा–पूड़ी बन रही थी। पोते का कुआ–पूजन जो था। 'हे माँ न दीखती इसकी..." पताशे लेकर पड़ोसन ने जानी हुई बात को ही पूछा तो "वा डाकण तो भाग गई।" कहकर सरबती ने हाथ झटककर जवाब दिया। उसे जैसे इस बात का कोई मलाल ही न था। वह तो पोते को पाकर धन्य हो गई थी। चार दिन हो गए वेद को आए। जब पुलिस की लिखा पढ़ी आई तो उसे आना ही पड़ा। उसकी माँ तो माँ भाई भी अगूँठा टेक ही था।

जब कील्ले बेचे जब तो ना याद आई थम नै मेरी।..... कर लिया ब्या छोरेका..... आ गई बहू..." वह बड़बड़ा रहा था। उसके बश में होता तो वह अपने भीतर से उस खून को निकालकर फेंक देता जिसका संबंध उसके माँ–भाई से जुड़ता है। हरामखोरों के लिए वहाँ दूर बैठा भी खटता रहता है और ये..." उसका मन कड़वा हो आया। उसे याद आ रहा था कि यही माँ उसकी बेटियों के पैदा होने पर तो सिर बाँधे पड़ी थी। अब इसके बड़े गोड्डे जवान हो रहे हैं। पर बस अब और नही। वह इन जाहिलों के लिए और कुर्बान नहीं हो सकता। पुलिसवालों ने उसे बता दिया था कि इस बच्चे की माँ अब इस घर में वापस आना नहीं चाहती। अगर वह कहेगा तो वे जबरदस्ती छोड़ तो आएँगे पर वह टिकेगी नहीं। उस बेचारी के लिए उसने इतना ही किया कि उसे दुबारा इस नरक में आने से बचा लिया।

❑❑❑

बैसराण घाटी

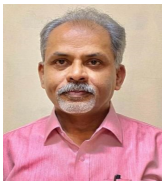

राकेशरेणु

एक बच्ची हँस रही थी
उछल रही थी जोर–जोर से ताली बजाते हुए
गा रही थी तोतली आवाज में
नाचती तितलियों के साथ
नदी नहीं, जीवन बह रहा था ।
पेड़ झूम रहे थे नाचते हुए
कुलाँचे भर रहे थे चीतल के साथ
हवा नहीं बह रही थी
वनपाखियों का समूह उड़ रहा था ।
फूल नहीं थे घास भी नहीं
तारे उतर आए थे घाटी में
चित्रकार के सपने को सच करते हुए
धरती रंगदान में बदल गई थी
कूचियाँ पेड़ थे नदियाँ क्यारियाँ सब गतिमान
रंग और खुशबू बिखेरते।
रंग, फूल, पेड़, घास, मैदान
नदियाँ, तितलियाँ, लड़कियाँ
एक सी चमक लिए रक्ताभ खिलखिला रही थीं
लगता ही नहीं था अभी यहाँ हथियार बंद दौड़ रहे थे
हाँफते हुए
लगता ही नहीं था अभी यहाँ खून बहा था
लगता ही नहीं था उसी की चमक से
चमक रही है घाटी ।

❑❑❑

कविता

दरवाजे पर दस्तक

जसवीर त्यागी

जिंदगी की उदासी भरी साँझ में
जब सन्नाटे और सूनेपन का साँप
पसरा होता है परिवेश में
तब अचानक लगता है
एक बूढ़ी महिला
आँखों के चश्मे को सँभालती
छड़ी के सहारे
धीरे–धीरे सरकती है
दरवाजे की ओर
आस और उत्सुकता के हाथों से
खोलती है दरवाजा
और पुकारती है... 'कौन'..?
कौन..... कौन..... ????
घूमता–गूँजता रहता है
हवा में देर तक
हर बार की तरह
कहीं कोई नहीं होता
द्वंद्व के दलदल में फँसी वृद्धा
बूढ़ी निगाहों से देखती है
द्वार पर खड़ा
किसी अड़ियल घोड़े–सा इंतजार
जो वृद्धा के बार–बार कहने पर भी
न देहरी से बाहर जाता है

और न ही
देहरी के अंदर करता है प्रवेश
कशमकश और असमंजस में
घिरी बुजुर्ग स्त्री
न द्वार खोल पाती है
और न ही कर पाती है बंद।

❑❑❑

अनूदित खंड (कहानी)
असमिया कहानी

गणित का पृष्ठ

रुमी लस्कर बोरा

विजय कुमार यादव

"तो मैं आऊँ ?"
"ठीक है।"

विदा करने के बाद मैं उस पुरुष की तरफ देख रही थी। घर में अतिथि आने पर उसे विदा करने के बाद मुड़कर देखने की फुर्सत नहीं थी। उस दिन की कार्यसूची बहुत लंबी थी। उस पुरुष की बातचीत, आचरण ने मुझे आकर्षित किया था। टीवी के सिनेमा, सीरियलों के बीच–बीच में हमेशा ही 'ब्रेकिंग एड' आने की तरह उस पुरुष की देहयष्टि, उसकी बातचीत की याद व्यस्तता के बीच भी मेरे मन में आती रही।

हाँ उनका नाम गुंजन बरुवा है। एक स्कूल के संस्थापक अध्यक्ष हैं। स्कूल के स्थापना दिवस पर मुझे आमंत्रित करने आए थे। गुंजन बरुवा ने पत्र को मेरी ओर स्वाभाविक रूप से बढ़ाते हुए अपना परिचय दिया था। वह क्षण मेरे मन में पुनः प्रत्यक्ष हो उठा।

मैंने पत्र को उनकी उपस्थिति में ही खोला था और उसे तन्मयता से पढ़ने का दिखावा किया था। मैं आगंतुक को यह विश्वास दिलाना चाहती थी कि इस आमंत्रण के प्रति मेरा आग्रह है, स्वीकृति है। मुझे ऐसा लगा था जैसे गुंजन बरुवा ने उतने थोड़े समय में ही मेरे ड्राइंग रूम में रखी किताबों की शेल्फ पर अपनी नजर दौड़ाई थी। हाँ, हाँ मेरा अनुमान ठीक था। ऐसे फॉर्मल पत्र पढ़ने में सामान्यतः जितना समय लगता है, उतने समय में ही मैंने पत्र से अपनी आँखें हटाकर मुस्कुराते हुए गुंजन बरुवा की तरफ देखा। गुंजन बरुवा भी मुस्कुरा पड़े और मुस्कुराते हुए ही मुझसे पूछ बैठे– "आप लेखक मेघमल्लार की किताबें पढ़तीं हैं?"

"हूँ...पढ़ती हूँ। बहुत पसंद हैं मुझे।"

समझ गई। गुंजन बरुवा ने किताबों की शेल्फ में रखी हुईं मेघमल्लार की कुछ किताबों को देखकर ही यह प्रश्न किया है। गुंजन बरुवा के चेहरे पर व्याप्त हँसी सागर के सीने पर ज्वार–भाटा की नाईं उठने–गिरने जैसी लग रही थी। इस बार

उन्होंने फिर कहा– "बहुत अच्छी बात है। काकतालीय संयोग शायद इसी को कहते हैं। खुली सभा में आपके उद्‌बोधन के पश्चात उसी सभा में मेघमल्लार की आत्मकथा का लोकार्पण किया जाएगा।"

आश्चर्यचकित हो गई थी मैं। यदि अपनी किताब के लोकार्पण के लिए मेघमल्लार ने मुझे ही चुना है तो वह खुद क्यों नहीं आए। मन में उठे इस प्रश्न को तुरंत गुंजन बरुवा के सामने रखा। गुंजन बरुवा भी शायद इस तरह के प्रश्न का उत्तर देने के लिए पहले से तैयार थे। मुस्कुराते हुए बोले, "अभी तक मेघमल्लार ने प्रिंट मीडिया, इलेक्ट्रॉनिक मीडिया से अपना वास्तविक परिचय छिपा रखा है। लेकिन अपनी आत्मकथा के लोकार्पण अनुष्ठान में वे अपने वास्तविक परिचय का खुलासा करेंगे।"

यह सुनकर मुझे ज्यादा आश्चर्य नहीं हुआ, फिर भी कुछ आनुषंगिक प्रश्न और बातें मेरा रास्ता रोके खड़ी हो गईं। एक बात से मैं गौरवान्वित महसूस कर रही थी कि इस तरह के एक लोकप्रिय लेखक की आत्मकथा का लोकार्पण मुझ जैसी कम ख्यातिवाली एक अध्यापिका, लेखिका द्‌वारा किया जाएगा। वाह! इसके साथ ही मेरा मन अपने भीतर पंछी की तरह दो पंख लगाकर दिशाओं का खयाल न करते हुए दिग्दिगंत तक निर्बाध उड़ान भरने लगा। भीतर ही भीतर प्रफुल्लित मन को बाहर से संयत कर पूछ बैठी– "मेघमल्लार उपस्थित रहेंगे न?"

"रहेंगे, रहेंगे। मेघमल्लार आपके प्रशंसक पाठक हैं, इसलिए आपके हाथों इस आत्मकथा का लोकार्पण होना उनके लिए गर्व की बात है।"

कुछ देर तक चुप्पी छाई रही। फिर गुंजन बरुवा ने पूछा– "जगह पहचानने में आपको कोई दिक्कत तो नहीं होगी न?"

मैं प्रफुल्लित होकर तत्काल कह उठी– "नहीं, नहीं। आपने जिस स्थान पर आमंत्रित किया है उसके साथ मेरे बाल्यकाल की कुछ स्मृतियाँ जुड़ी हुई हैं। यदि मेरा अनुमान ठीक है तो मेरी स्मृतियों में बसे बनगाँव नामक स्थान से आपके स्कूल की दूरी लगभग तीन किलोमीटर होगी।"

"जी, जी। आपका अनुमान बिलकुल ठीक है। मेरा स्कूल जिस जगह है, वह जिले का उपनगर वाला इलाका है। बनगाँव से आगे कुछ दूर और जाना होगा।"

मैंने यह अनुमान किया कि ये बातें कहते हुए गुंजन बरुवा कुछ हुलसे हुए लग रहे हैं। बरुवा पुनः बोले– "आपके लिए गाड़ी भिजवा दूँगा। आपके घर से मेरे स्कूल की दूरी पच्चीस किलोमीटर होगी, इसलिए..."

"इसलिए सुबह गाड़ी भिजवाने की कोई जरूरत नहीं है। दिन के ग्यारह बजे सभा में पहुँचने के लिए मैं यहीं से गाड़ी ले जाऊँगी, क्योंकि मुझे लौटना भी तो होगा...।" गुंजन बरुवा को अपनी बातें खत्म करने का मौका न देते हुए मैंने ये बातें कहीं। वे शायद कुछ कहना चाह रहे थे, लेकिन मैंने उन्हें मौका नहीं दिया।

व्यस्तता, व्यस्तता एक और व्यस्तता। मेरा बेटा अनुराग हाथ में गणित की किताब लिए मेरे पास आकर भुनभुनाने लगा कि जो हिसाब उसकी समझ में नहीं आ रहे हैं, मैं उन्हें हल कर दूँ। गणित? नहीं। शायद अब गणित के साधारण सवाल भी मुझसे हल नहीं होते। उसके पिता ही उसे गणित सिखाते हैं। उसके अन्य विषयों को मैं देखती हूँ। आज उसके इस तरह गिड़गिड़ाने का कारण यह है कि कल स्कूल में होमवर्क दिखाना होगा। उसके पिता घर पर नहीं हैं। अनुराग को साँझ को ही सोने का अभ्यास है। उसे कुछ कहकर फुसलाने के लिए उसकी ओर देखा। छुटपन में जब कोई मुझसे पूछता कि तुम्हारे जीवन का लक्ष्य क्या है, तो मैं छूटते ही कहती "डॉक्टर बनूँगी।" बाद में जब मैंने यह देखा कि विज्ञान के विषयों में गणित की प्रयोजनता है और धीरे–धीरे जब यह अनुभव करने लगी कि गणित के फॉर्मूले मेरे दिमाग में घुसने का नाम ही नहीं लेते, उसी समय मेरे लक्ष्य की इतिश्री हो गई थी। गणित की बात याद आते ही शुरू में प्राथमिक विद्यालय में पढ़ने वाले मेरे सहपाठी गिरिकांत की स्मृति ताजा हो जाती है। वह बहुत ही शांत स्वभाव का था। लालिमा भरे आकाश के मेघों से ढक जाने के कारण जो दृश्य उपस्थित होता है, उसका चेहरा भी कुछ–कुछ वैसा ही लगता। पढ़ाई में बहुत तेज था वह, विशेषकर गणित में। उन दिनों हम गणित की किताब न कहकर 'अंकगणित' की किताब कहते थे। गिरिकांत कक्षा में हरदम प्रथम आता था। अंक गणित में सदा सौ में सौ अंक पाता था। वह स्कूल के शिक्षकों का ध्यान बरबस अपनी ओर आकर्षित करता था। मैं कितना भी क्यों न पढ़ूँ, उसे पीछे छोड़कर कभी भी प्रथम नहीं हो पाती। मुझे हरदम दूसरा स्थान ही मिलता। उससे मन ही मन ईर्ष्या होती थी। हालाँकि वह मुझे बुरा भी नहीं लगता था। वह प्रायः मेरे लिए मौसमी फल टकौ, जलपाई, जामू ले आता। हो सकता है कि इस कारण भी वह मुझे अच्छा लगता हो। नहीं सोचा था, शायद यह सब सोचने की आयु भी नहीं हुई थी मेरी। एक दिन वह मुझसे गणित की किताब माँगकर ले गया। इसी तरह बीच–बीच में वह प्रत्येक सहपाठी लड़के–लड़कियों से दो–तीन दिन या एक सप्ताह के लिए गणित की किताब माँगकर ले जाता था। किताब ले जाने के बाद जब दूसरे दिन उसने मुझे वह किताब लौटाई तो वैसे ही उसके पन्ने पलटकर देखते समय यह पाया कि किताब का एक पन्ना बीच से फटा हुआ है। यह देखते ही घर में माँ की लाल–लाल आँखें याद हो आईं। एक बार इस तरह मुझसे किताब फटने और पेंसिल खो जाने पर गुस्से से आँखें लालकर माँ ने डाँटते हुए कहा था."तू किताब, पेंसिल खाती है या पढ़ती है, हुँ? तेरे लिए और कितना खरीदूँ? तू इनका महत्व कब समझेगी?" माँ यह कहकर ही शांत नहीं हुई थीं, बल्कि उसके साथ–साथ पीठ पर सटाक–सटाक कर छड़ी की मार भी पड़ी थी।

किताब का फटा पृष्ठ देखते ही संभावित पिटाई के भय से मेरी आँखें भी रोते–रोते लाल हो गई थीं। मैंने गिरिकांत से कहा था– "इसे ले जा। नई खरीदकर

दे और नहीं तो पन्ने फाड़ने के एवज में मुझे दो रुपये दे।" वह चुप होकर मेरी ओर करुण दृष्टि से देखता रहा। उस समय मैं उसकी करुणा की भाषा नहीं समझ पाई थी। उस समय तो मन में बस यही चिंता थी कि माँ के पूछने पर उन्हें किस तरह फाँकी दूँगी। उस दिन के बाद गिरिकांत कई दिनों तक स्कूल नहीं आया था।

"माँ, मैथ सीखा दो न?"

अह! अनुराग के पुकारने पर स्मृति पर विराम लगा। वह एक ही बात पर अड़ा हुआ था। सवालों का हल नहीं करने पर टीचर पनिशमेंट देंगी। 'बैड ब्वाय' कहेंगी।

गाड़ी को गैरेज में रखने की आवाज सुनाई पड़ी। इसका मतलब सौष्ठव आ गए। बच गई। अनुराग से बोली– "पापा आ गए। जाओ! मैं तुम्हें समय नहीं दे पा रही हूँ। देखते नहीं कितनी व्यस्त हूँ?"

व्यस्तता। आजकल यह शब्द जैसे न छोड़ने वाली फेविकोल वाली गोंद हो। गाय द्वारा घास की जुगाली करने की तरह मैं भी अपने मन में गुंजन बरुवा की बातों की जुगाली करती हुई अपने काम में लग गई। घरवाले ने खबर दी है कि शाम को उसके मित्रगण आएँगे। बहुत काम बाकी हैं। उपन्यास का लिखना दो अध्यायों तक आकर अटका हुआ है। दिन में कॉलेज की क्लास। रोजाना पैंतालीस मिनट का लेक्चर। सहकर्मी जीवन नैपरी का आजकल मुझसे सटकर बैठने का जोड़–तोड़ बिठाना। इस्स! मेरी भावनाएँ भी कहाँ से कहाँ तक सरकती जा रही हैं। टीवी की न्यूज देखने का भी तनिक अवकाश नहीं मिलता। नहीं, नहीं। देश की खोज–खबर रखनी चाहिए। सुबह साढ़े आठ बजे ही बेटे को लेकर निकलने से कभी–कभी अखबार देखने तक का समय नहीं मिलता।

गुंजन बरुवा की आकृति मेरे मानसपटल पर उभर आई। गुंजन बरुवा का नाम और बातचीत करने की उनकी शैली मेरे मन के बागीचे में गुंजन क्यों कर रही है? मैं अपनी कल्पना में लोकप्रिय तथा विख्यात लेखक मेघमल्लार की आकृति की कल्पना करने लगी। मेघमल्लार ने आश्चर्यजनक रूप से अपना परिचय गोपनीय रखा है। आत्मकथा में ही अपने गोपनीय अध्याय खोलेंगे। इस संबंध में पाठकों तथा लेखक–लेखिकाओं के बीच तरह–तरह की कहानियाँ और अफवाहें फैली हुई हैं। पता नहीं, गुंजन बरुवा ने वैसे एक लेखक की आत्मकथा के लोकार्पण के लिए मेरी जैसी अल्पख्यात लेखिका को क्यों चुना है?

व्यस्तता। इत्मीनान से सोचने का अवसर दिन में नहीं मिल पाता। काम करते रहने के बीच मन में जरूरी–गैरजरूरी विचार आते रहते हैं। डाइनिंग टेबल पर बैठकर कॉफी और बातों का अड्डा चल रहा है। सौष्ठव के बचपन के दोस्त आए हुए हैं। उनका ठहाका चारों ओर गूँज रहा है। लड़कपन की शरारतों से लेकर कॉलेज के दिनों की प्रेम–कहानियाँ, वर्तमान में अपनी–अपनी पत्नी के साथ प्रत्येक के खट्टे–मीठे अनुभवों के साथ–साथ अपनी–अपनी नौकरी की बातें बताते हुए वे लोग एक खिचड़ी

अड्डे में मस्त हैं। उनकी बातों में तत्कालीन असम के राजनीतिक, सामाजिक वातावरण की बात भी अछूती नहीं रही है। सौष्ठव अपने बचपन तथा कॉलेज के दिनों की बातें बड़े उत्साह से बता रहे हैं यद्यपि वहाँ मेरे उपस्थित होने के कारण पत्नी संबंधी कहानी को बड़ी चतुराई से टाल दिया है। बाकी लोगों की पत्नियाँ अनुपस्थित हैं, इसलिए वे उनकी बातें जी खोलकर कर रहे हैं।

इधर गुंजन बरुवा की आकृति मुझे बार–बार परेशान कर रही है। अह! एक तीव्र आकर्षण महसूस कर रही हूँ। ऐसा क्यों हो रहा है मुझमें? गुंजन बरुवा के इस सुखद लगने वाले आचरण को किसी कहानी या उपन्यास में प्रस्तुत करने की बात तो कहीं नहीं सोच रही मैं? सोचने लगी। मन और विवेक के बीच किंचित विचार बनते रहे। क्या? क्या है असली बात? ऊँ...ऊँ...ऊँ...

कहाँ? यहाँ उस तरह गुंजन बरुवा को प्रस्तुत करने की तो बात ही नहीं उठती। तो फिर...धत नहीं, नहीं। भावनाओं को इस तरह भटकने देना ठीक नहीं है।

"हाः हाः हाः.. अरे सौष्ठव, तुम्हें याद है न? कॉलेज में तुम नंदिनी के पीछे कम पड़े थे? बाद में उसके चंगुल में न पड़कर तुम्हारा भला ही हुआ था, समझे?"

मैंने सौष्ठव की ओर तिरस्कार की दृष्टि से देखा। पनीर पकौड़े की प्लेट उन चारों के बीच रखी। वे लोग अर्थात् पुलिस अधिकारी विस्मय शाइकिया, विश्वविद्यालय के राजनीति विज्ञान के अध्यापक आरोहण कलिता, हमारे जिले के परगना अधिकारी अक्षय आनंद और हाईकोर्ट के नामी वकील मेरे पति सौष्ठव। वे लोग अपने–अपने विभागों के कामों की बातें रस ले–लेकर कर रहे थे। अड्डे में किसी के कुछ भी कहने पर कोई रोक–टोक नहीं थी। कोई कुछ बोल रहा है। इसी बीच किसी के मन में कोई बात आई तो वह बीच में ही बोलना शुरू कर देता है। जिस तरह नदी के प्रवाह में बाधा पड़ने पर उसकी धारा दूसरी ओर मुड़ जाती है, ठीक वही हालत उनके बीच हो रही बातों की है। बहुत दिनों के बाद समय निकालकर आज वे एक साथ बैठे हैं। यदि किसी इमरजेंसी कॉल के न आने की अवस्था में पुलिस अधिकारी विस्मय शाइकिया को अचानक न जाना पड़ा तो उनका यह अड्डा संभवतः रात बारह बजे तक चलेगा। अभी रात के दस बज रहे हैं। व्हिस्की की बोतलों और गिलासों के ठनठनाने की आवाजें आ रही हैं।

विस्मय शाइकिया द्वारा कॉलेज के दिनों की सौष्ठव की प्रेमिका नंदिनी की बातें शुरू करते ही मेरे वहाँ उपस्थित रहने के कारण सौष्ठव ने विस्मय की ओर देखा और मुझे दिखाकर उसे इशारा किया। छह–सात माह का बच्चा माँ की छाती का दूध पीने के बाद अपनी जीभ निकालकर उसे दोनों होंठों के बीच जिस तरह दबा लेता है, ठीक वैसे ही विस्मय शाइकिया ने दोनों होठों के बीच अपनी जीभ दबा, सिर पर हाथ रखकर अपने नेत्र विस्फारित कर दिए। यह दृश्य मेरी निगाहों से छिपा न रह सका। मैंने उनकी बातें न सुनने और कुछ न देखने का दिखावा किया। विस्मय शाइकिया ने उस

प्रसंग को बदलने के लिए कहा– "असमी, क्या कुछ देर तक हमारा साथ देने को तुम्हारा मन नहीं करता? और कितना यंत्र की तरह बनी रहोगी? हमें देखो। अरे भाई, पुलिस की नौकरी है। जानती ही हो कितनी व्यस्तता, कितनी टेंशन, कितनी बदनामी होती है हमारी, फिर भी देखो समय सुविधा निकालकर कितनी मस्ती करते हैं, हा हा हा..."

विस्मय शाइकिया की बात सुनकर मैं मुस्कुरा पड़ी। कुछ कहने के लिए मुँह खोला ही था कि अक्षय आनंद कह उठे– "नहीं, नहीं, असमी की एक अलग लाइफ है। वह उसी में मस्त है। है न असमी? हा हा हा..."

मैं फिर मुस्कुरा उठी। मेरे मन में तीव्र इच्छा होती है कि इन मित्रों के साथ बैठ दो पेग गले के नीचे उतारकर मैं भी जिंदगी का नया स्वाद चखूँ। लेकिन मेरे बाह्य आचरण की गतिविधि से जाने–पहचाने हलकों में मेरा परिचय कुछ अलग तरह का है। लोग कहते हैं कि असमी बाकी दस औरतों से अलग है। यह सुनना अच्छा लगता है। ऐसे मंतव्य मेरे कानों में पड़ते ही हैं। जो काम सभी लोग कर रहे हैं, उसी काम को यदि कोई नए सिरे से करता है तो उसकी खूब चर्चा और निंदा होती है। मन में ललक होने पर भी ऐसे काम नहीं कर पाती। 'अच्छी कहानी के प्रति मन में एक दुर्बलता जो है...'

जीवन की एकरसता से ऊबकर भीतर ही भीतर मैं विरक्त हो गई हूँ। एक परिवर्तन, एक नए तृप्तिदायक अवसाद के बारे में सोच–सोचकर मेरे हृदय की अनुभूति लहूलुहान हो गई है। बोहेमियन होने का मन करता है। प्रेयस भाव मुझे चारों ओर से आच्छन्न किए हुए है। उन लोगों के साथ बैठ जाऊँ क्या? कैसा लगेगा? जिसको जो सोचना हो, सोचे।

गुंजन बरुवा....? फिर गुंजन बरुवा की आकृति उभर रही है! अह! क्या सोच रही थी? हाँ, हाँ...आज सभी बाह्य शालीनता छोड़कर मन के अधीन हो जाऊँ ? एक पैग लेकर देखूँ?

वाह! क्या ठहाका है। यह सौष्ठव का ही कंठ है न? अरे! अरे! शराब के नशे में उनकी आवाज बदल गई है। अब सौष्ठव मुझसे न कही गई बातें अपने मित्रों से कहेंगे। वैसे मैंने सौष्ठव के मनोजगत की बहुत–सी बातें जान ली हैं। लेकिन सौष्ठव को आजतक मेरे मन के भीतर की बातें जान पाने का अवसर नहीं मिल पाया है। इससे खुद को बहुत बुद्धिमती समझने लगी हूँ। सौष्ठव कह रहे हैं–

"प्रेम में पड़े रहना, समझे? प्रेम करो भाई। जो लोग प्रेम में पड़ते हैं उनके पास आने में वार्द्धक्य को लाज लगती है। अपनी वाली के पास इतना समय देने की फुर्सत ही कहाँ है? प्रेम जीवन का एनर्जी देने वाला टैबलेट है।"

अच्छा तो सौष्ठव के मन में भी ऐसी वासना है? जबकि मेरे सामने ऐसे रहेंगे मानो पत्नी और संतान के अतिरिक्त अपनी भी कोई दुनिया हो सकती है, अब तक

इसका पता ही नहीं है उन्हें। मानो पत्नी, संतान और वकालत के सिवाय उन्हें और कोई चिंता ही नहीं है। हुँह! मैं समय नहीं दे पाती? इन मर्दों को कोई न कोई बहाना चाहिए। दिन भर की हजार व्यस्तताओं के बीच किसमें दम बचा रहता है? रात को जब सोने जाती हूँ उस समय मन सरपट भागता है। मैं भी चाहती हूँ कि मेरी देह में प्रथम प्रेम के स्पर्श की सिहरन जग उठे। सुबह का कॉलेज, घरेलू कामों के दायित्व देह की चाहत पर अपना प्रभाव न डालें। इस चाहत को भुला देने के पीछे ही न पड़ जाएँ। कई–कई दिन इस चाहत को तृप्त करने की मेरी भी प्रबल इच्छा होती है। लेकिन...

"हा हा हा... ऐ सौष्ठव संभलकर। जबान फिसली नहीं कि अपने घर से ही निर्वासित हो जाओगे। इस समय तुम सुरक्षित जगह पर नहीं हो, समझे? हा हा हा... नारी सुरक्षा कानून बहुत स्ट्रांग हो गया है हा हा हा..."

एक के बाद एक चिकन फ्राई, पकौड़े, काजू, ड्राई फ्राइड आलू पहले ही दे आई हूँ। अब उठकर जाने की जरूरत नहीं है इसलिए उपन्यास का तीसरा अध्याय लिखने बैठ गई हूँ। लेकिन लिखने में मन नहीं रम रहा है। दूसरे कमरे से आ रही विस्मय, सौष्ठव, आरोहण और अक्षय की बातें सुनने की इच्छा हो रही है। सोच रही हूँ, ये लोग भी तो मेरी कहानी का एक–एक चरित्र हो सकते हैं।

व्यस्तता..... भावना के साथ–साथ व्यस्तता। सभा में मेरा क्या बोलना अच्छा रहेगा? सभा कल ही है। सुबह ही जाना पड़ेगा। अरे इतना सोचना भी क्या। इस तरह की सभा में बैठकर तत्काल जो अनुभव होगा, अपने संभाषण में वही कह दूँगी और क्या? मेघमल्लार का लिखा काफी पढ़ा है। बोलने में दिक्कत नहीं होगी। फिर भी सभा में जाने के लिए भीतर ही भीतर उद्‌विग्न हो गई हूँ। गुंजन बरुवा द्‌वारा स्थापित स्कूल से तीन किलोमीटर दूर माधवपुर प्राथमिक स्कूल है। मैंने वहीं पढ़ाई की थी। उस समय पिताजी माधवपुर गाँव की डिस्पेंसरी में कंपाउंडर थे। डिस्पेंसरी में कोई डॉक्टर न होने के कारण पिताजी ही डॉक्टर बन गए थे। जितू, मंटू, पापरी, पदुम, रंगिली और गिरिकांत मेरे साथ ही पढ़ते थे। स्कूल के लेजर टाइम में पास–पड़ोस के घरों के पीछे पेड़ों पर लगे जलपाई, जामू और पनियाल की खोज में खूब घूमते रहते थे हम। पेन की खोंच से कच्चे पनियाल के पक जाने की बात भी याद आई। इन सब बातों को सोचकर मेरे होंठों पर लजीली मुस्कान थिरक उठी। खुद से भी लाज लगती है क्या?

"जानते हो, सबसे इंटरेस्टिंग क्या है? उस प्राइमरी स्कूल में हमारे साथ पढ़ने वाली दंदूर की याद है न?"

अक्षय आनंद बोल रहे थे। मैं चकित हो गई। बोलते समय वे एक विशेष भंगिमा में दोनों हाथों से ताली बजा रहे थे।

"हाँ, हाँ। क्या हुआ? दंदूर माने दमयंती की बात कर रहे हो न?"

"हाँ। और किसकी बात करूँगा। वह आजकल इसी शहर में रहती है। यहीं स्थाई घर बना लिया है। उस दिन महिलाओं के झुंड के साथ आकर मुझे एक मेमोरेंडम थमा दिया। पीड़ित नारियों पर विचार करना होगा। उसका वेश और रूप देखकर उसके पति बेचारे पर दया आ रही थी। हा हा हा..."

"और फटे कपड़े पहनने वाली उस शेंगुनना को अब पहचान ही नहीं पाओगे। हा हा हा..."

रसोई में गई। बर्तनों को धो–पोंछकर साफ किया और सुबह के लिए साग–सब्जियाँ काटकर फ्रीज में रख दिया। अचानक दूर से दिखने वाले अस्पष्ट पहाड़ से उड़कर पंख फड़फड़ाते हुए सामने आए चिन्हे–अचिन्हे पंछियों की मानिंद लड़कपन के वनों से झट से उड़ आए एक चेहरे ने मेरे मन के आँगन में आकर बहुत सी खबरों का पुलिंदा खोल दिया।

"हा हा हा... इस बार परकीया प्रेम से संबंधित इतने मर्डर केस आए हैं कि पूछो मत। ऐसे और कितने केस फाइल करोगे...बताओ?"

बातचीत के बीच में विस्मय शाइकिया बोल पड़े। शायद इसके पहले तक परकीया प्रेम के बारे में कोई गरमागरम चर्चा हो रही थी। मुझे खुद पर गुस्सा आया कि उस समय मैं रसोई में क्यों गई थी। अफसोस, कुछ सुन नहीं पाई। लेकिन मेरा अफसोस बहुत देर तक कायम नहीं रह सका। सहपाठी लड़के का चेहरा फिर अंतर्नेत्रों के सामने प्रकट हो गया। कभी–कभी कुछ पुरानी बातों को सोचकर बड़ा अच्छा लगता है। बहुत दिनों के बाद दादी द्वारा पुराना संदूक खोलने पर तह किए गए कपड़ों के भीतर से निकलने वाली भीनी सुगंध की तरह कपड़े की प्रत्येक तह खोलने के बाद मैं लंबी साँस लेती थी। पुरानी स्मृतियाँ भी कुछ वैसी ही होती हैं। अभिलाषाओं के सुगंध की तरह।

"नहीं, नहीं। देखते चलो भाई। देश की राजनीति में एक नया तूफान उठा है। किसे उखाड़ दे, किसे स्थापित कर दे, कोई ठिकाना नहीं।"

बहुत देर तक चुप रहने के बाद आरोहण अब बोल रहे हैं। वे बहुत कम बोलते हैं। मैंने कलम पकड़े हाथ को सावधानी से गाल पर रखकर सोचना शुरू किया।

सभा का उद्घाटन समारोह। गुंजन बरुवा मेरी बगल में बैठे हुए हैं। मैं भीतर ही भीतर एक अजानी सिहरन का अनुभव कर रही हूँ। मेघमल्लार तब तक भी नहीं आए हैं। मैंने उनकी अनुपस्थिति में ही पुस्तक का लोकार्पण किया। स्थानीय संवाददाताओं ने मेरा और मेरी बगल में बैठे गुंजन बरुवा के फोटो खींचे। कल के अखबारों में मेघमल्लार का असल परिचय सबके सामने प्रकट किया जाएगा। पाठकों के लिए जहाँ यह उत्सुकता भरी खबर होगी, वहीं खबर देनेवाले के कई अत्यंत गर्व की बात होगी। लेकिन मेघमल्लार हैं कहाँ? संवाददाताओं से गुंजन बरुवा ने क्या

कहा? वे मुझे गाड़ी तक छोड़ने आए। उनके चेहरे पर हँसी बदस्तूर कायम थी। आत्मकथा को पढ़कर मुझसे अनुरोध किया कि मैं उस पर यथाशीघ्र अपनी राय दूँ। सभा खत्म होते–होते साँझ हो गई थी। पच्चीस किलोमीटर की दूरी तय करने के बाद घर पहुँचते–पहुँचते साढ़े नौ से कुछ ऊपर का ही समय हो गया।

सुबह उठते ही कॉलेज, स्कूल और ऑफिस जाने की तैयारी करनी होगी। रसोई में जाकर सुबह का कुछ काम पहले ही कर आई। नहा–धोकर कुछ हद तक ताजा हुई और टेबल पर जा बैठी। अब मैं मेघमल्लार की आत्मकथा के पृष्ठ पलटूँगी। लेखक के नाम पर नजर दौड़ाई। अर्थवह्। हाँ, हाँ, मेघमल्लार की लेखन शैली से ही आत्मकथा के नामकरण के संबंध में मैंने यह अनुमान लगा लिया था कि इसमें जिंदगी की व्याख्या की गई होगी। चार सौ पृष्ठों का ग्रंथ है यह।

पढ़ना शुरू किया। प्रत्येक वाक्य ने मुझे विस्मित, विगलित, आकर्षित किया। उस समय मैं वर्तमान में नहीं थी। मेघमल्लार की आत्मकथा के प्रथम अध्याय में वर्णित घटनाएँ मुझे पीछे छोड़ आए बचपन में ले गईं। ऐसा नाटकीय भी हो सकता है क्या? इतनी आकस्मिकता? इतना काकतालीय? जिंदगी सचमुच नाटक ही तो है जहाँ यह पृथ्वी एक रंगमंच है। बहुत दूर छोड़ आए वनों से उड़कर आया भँवरा मेरे मन के बागीचे में गुन–गुन कर रहा था। लेकिन मैं...? पढ़ती गई। मानसपटल पर लड़कपन का एक करुण दृश्य उभर आया।

गिरिकांत नाम के मलिन चेहरे वाले लड़के को मैंने एक बार फिर देखा। मैं उसे तन्मयता से देख रही हूँ। मेघमल्लार की आत्मकथा मेरे दोनों हाथों में है। मेरी दोनों आँखों से निकली अश्रु की धारा चूकर गिरिकांत नाम वाले शब्द पर पड़ रही है। यह नाम आत्मकथा के प्रथम पृष्ठ पर ही था। तो वह भी कुछ भी नहीं भूला था? एक दिन मुझे चौंकाने के लिए उसने अपना नाम–धाम सब कुछ बदल लिया था? हाँ, हाँ...। उसने लिखा है..."उस दिन मैं असमी को कुछ कह नहीं पाया था। यंत्रणा से मेरा बाल–हृदय फटकर चूर–चूर हो गया था। माँ के हाथों के थप्पड़ से मुझे जो पीड़ा हुई थी, मेरे लिए उससे ज्यादा असहनीय यह हो गया था कि मैं असमी के सामने अपराधी हो गया हूँ। उस दिन...।"

मुझे वह दृश्य याद आ गया है। मैं गिरिकांत द्वारा कहा गया वह वाक्य भूली नहीं हूँ। गणित की किताब के भीतर के फटे पन्ने के बदले जब मैंने गिरिकांत से गणित की नई किताब खरीदकर देने अथवा दो रुपये देने के लिए जोर–जबरदस्ती की थी, तब वह अगले दिन से पाँच दिनों तक स्कूल नहीं आया था। घर में माँ की लाल–लाल आँखों और छड़ी की पिटाई के डर से मैंने गणित की किताब ही नहीं खोली थी। माँ को विश्वास हो जाए ऐसा कोई बहाना भी याद नहीं आया था। मैं झुँझलाकर खाली समय में गिरिकांत के घर चली गई। बुलू और मिनती भी मेरे साथ गईं। इसके पहले मैं गिरिकांत के घर नहीं गई थी।

घर कहने के नाम पर सरकंडों की बेढ़ वाले दो कमरे थे। बेढ़ पर लेपी हुई मिट्टी के टुकड़े खिसककर गिर गए थे। गिरिकांत ने अपने सामने जैसे बाघ देख लिया हो। मुझे देखते ही वह भयभीत दृष्टि लिए बेढ़ के उस पार खड़ा रहा। उसकी माँ फर्श पर रखे पीढ़े पर बैठी थीं। उन्होंने मलिन वस्त्र पहना हुआ था। एल्युमिनियम की एक कटोरी में रखा थोड़ा सूखा चिउड़ा मग्न होकर खा रहा तीन वर्षीय शिशु शायद गिरिकांत का भाई था। उसकी माँ की गोद में भी नौ माह का एक शिशु था। वह माँ की छाती का दूध पी रहा था। यह दृश्य मेरे मन को बड़ा खराब लगा था लेकिन मैं तो उस समय अत्यंत स्वार्थी हो गई थी। मैं तो बस यही सोच रही थी कि जैसे भी हो, मुझे माँ के हाथों मार खाने से बचना है। मैंने गिरिकांत की माँ को यह बता दिया कि मैं उनके घर क्यों आई हूँ। साथ ही यह भी कहा "या तो वह नई किताब दे या फिर उसके बदले दो रुपये दे।"

गिरिकांत को बुखार हो आया था, जिसके कारण वह स्कूल नहीं जा पाया था। मुझे चकित करते हुए गिरिकांत की माँ ने दूध पी रहे शिशु को अपनी छाती से अलग कर उसे जमीन पर पटक दिया और जोर–जोर से रोना शुरू किया। फिर बेढ़ में खोंसी हुई एक छड़ी निकालकर बेढ़ के उस पार खड़े गिरिकांत को पीटना शुरू किया। इसके साथ–साथ उसे गालियाँ भी बकती रही– "अरे मुए, अभागे बता कि अब नई किताब कहाँ से लाकर दूँ? अरे हतश्री! स्कूल में जाकर शहर भर में बदमाशी कर रहा है...हुँ?"

गिरिकांत रो रहा था। रोते–रोते उसने माँ से कहा था कि फर्श पर बैठकर गणित का सवाल हल करते समय उसके तीन वर्षीय भाई ने किताब को खींचकर उसका वह पन्ना फाड़ दिया था, उसने नहीं फाड़ा था।

गिरिकांत का रोना देखकर मेरा कोमल मन शोक से मुरझा गया था। स्वयं को दोषी जैसा समझ रही थी। सजल आँखों से लौट आई थी। माँ के हाथों पिटा गिरिकांत बहुत देर तक नहीं रोया था। बाहर के दरवाजे पर आकर उसने कहा था– "सुनो असमी, किसी न किसी दिन मैं तुम्हें गणित की कोई एक किताब खरीद दूँगा।"

पिताजी के ट्रांसफर के कारण मैं वहाँ से चली आई थी। माधवपुर प्राइमरी स्कूल से निकलकर नगर के स्कूल में नाम लिखाया था। नया परिवेश, कॉलेज, यूनिवर्सिटी, नौकरी। विवाहित जीवन के बाद व्यस्तता। पैंतीस वर्ष बीत गए। इन पैंतीस वर्षों में गिरिकांत कहाँ होगा? कैसा होगा? बीच–बीच में याद आने पर भी एक ही बात को सोचने की फुर्सत नहीं थी। या फिर गिरिकांत का पता लगाने के लिए इस समय कोई विशेष उत्कंठा भी नहीं थी। किसी समय सामना होने पर भी गिरिकांत को पहचान नहीं पाती। गिरिकांत की देह का भूगोल बदल गया था। नाम बदल गया था। जिंदगी की राह बदल गई थी। इस आत्मकथा ने गुंजन बरुवा उर्फ मेघमल्लार की ओट में उपस्थित गिरिकांत की कहानी उजागर कर दी है। उसकी जिंदगी के बदले हुए पृष्ठ

हैं ये...।

"अपनी आत्मकथा 'गणित के पृष्ठ' बड़ी उत्कंठा के साथ अपनी बाल सखी, लेखिका असमी दत्त के हाथों सौंप रहा हूँ, जिसका नाम मेरी समस्त रचनाओं की नेपथ्य–प्रेरणा है।"

अह! गिरिकांत कुछ भी नहीं भूला था। गिरिकांत के उन दिनों के विमर्ष मुखमंडल से आज के सुंदर, मार्जित पुरुष गिरिकांत तथा गुंजन बरुवा उर्फ मेघमल्लार के मुखमंडल को मिलाकर देखा।

आश्विन के आकाश से टपकती शबनम की बूँदों की तरह मेरी आँखों से भी शबनम की बूँदें टपक रही हैं। कुछ अबोध आत्मग्लानि, कुछ गर्व, कुछ अनाविल प्रीति के आनंद से मैं विह्वल हो उठी हूँ।

❑❑❑

अनूदित खंड (कहानी)
जापानी कहानी

शेष पुष्प

नाकागामी केंजी

श्रीविलास सिंह

बिना अंतराल के लगातार पड़ रही गर्मी के कारण, बेंचों पर रखे गमलों में लगे फूलों के सारे पौधे मुरझा गए थे। उन लोगों ने यह जानकर कि धूप से गर्म जल उनकी जड़ों को क्षति ही पहुँचाएगा, उन्हें दिन में सींचना बंद कर रखा था। उन सबने एक दूसरे को विश्वास दिलाने का खूब प्रयत्न किया कि मुरझाए हुए फूलों का भी अपना अलग ही सौंदर्य होता है, किंतु भीतर ही भीतर गहरी साँस भरी, इस आशा के साथ कि कोई न कोई उनके गमलों में लगे पौधों को गर्मी से बचा लेने के किसी उपाय के साथ जरूर आएगा।

'मैं अब और अधिक परवाह नहीं करती। मेरे पास वह पौधा वर्षों से था। इससे मुझे ढेरों बीज भी मिले थे।'

'मैं सच बताती हूँ कि वो बीज जो तुमने मुझे दिए थे, मेरे घर में उनमें अलग रंग के फूल खिले और वे कभी भी नहीं बदले।'

गली में रहने वाली वृद्ध स्त्रियों ने अपनी बाल्टियाँ भरने से पूर्व सूर्य के डूबने की प्रतीक्षा की। पहले उन्होंने तपती हुई बेंचों पर पानी डाला फिर पौधों की सिंचाई की। मुरझाई हुई कलियों से मृत्यु की गंध निकली और गर्म जल की महक में मिश्रित होती हुई, उठकर हवा में भर गई थी।

अन्य हर व्यक्ति उन वृद्ध महिलाओं की शिकायतें सुनता सम्मोहित सा हो गया था, जो अपने गमलों के धूप में झुलसने से पीड़ित थीं किंतु वे उन्हें बचाने का कोई उपाय नहीं सोच पा रही थी। अपेक्षाकृत युवा लोगों ने कहा कि वे सिर्फ इतना कर सकते हैं कि पौधों को घर के भीतर कहीं छायादार जगह पर रखें अथवा उनपर किसी परदे की छाया कर दें। किंतु वृद्ध महिलाएँ उनकी किसी भी सलाह पर अमल करने के पक्ष में नहीं लग रही थीं। फूलों को रखने का लाभ ही क्या यदि आते जाते लोग उन्हें प्रशंसा की नजर से न देखें?

'इससे कोई विशेष लाभ नहीं होगा, ऐसे गर्म मौसम में तो बिलकुल भी नहीं।'

'तुम उन्हें कटे हुए फूलों की भाँति भी प्रयोग नहीं कर सकते। वे अधिक देर तक खिले नहीं रहेंगे।'

छाया में बैठी, वृद्ध स्त्रियाँ गप्प लड़ा रहीं थीं और एक दूसरे की बात पर सिर हिला रहीं थीं मानों उन्हें गर्म धूप में मुरझा रहे फूलों का दृश्य देखकर आनंद आ रहा हो।

इसी प्रचंड गर्मी के मध्य गली, जिसमें वे वृद्ध महिलाएँ रहती थीं, के कोने पर स्थिर मकान को ध्वस्त करके सड़क को चौड़ा करने की एक योजना पर कार्य प्रारंभ हो गया।

इस परियोजना के संबंध में अफवाहें बहुत पहले से ही चल रहीं थीं किंतु उन मकानों में रहने वाले लोगों ने, जो इसके कारण प्रभावित होते, जब सुना कि कार्य प्रारंभ होने वाला है, निरंतर बैठकें करने लगे। फिर भी, वृद्ध महिलाएँ नहीं जानती थीं कि कोने पर के मकान को गिराने के बदले में क्या वायदे किए गए हैं। वे सिर्फ इतना जानती थीं कि वह परियोजना कोने वाले मकान से शुरू होकर लगभग वहाँ तक विस्तृत थी जहाँ वे रहती थीं। पहले एक 'बैक हो' मशीन आएगी और कमान को अगल–बगल और ऊपर से हिलाकर ध्वस्त कर देगी, फिर एक बुलडोजर आएगा और इसके टुकड़ों को अलग–अलग कर देगा। क्योंकि बैठकों में युवा लोग ही निर्णय ले रहे थे, वृद्ध महिलाएँ सिवाय प्रतीक्षा करने के और कुछ नहीं कर सकती थी। ध्वस्त हो रहे मकान से धूल की बारिश होने की दशा में वे कपड़े की पट्टियाँ पानी में भिगोती और पौधों की पत्तियों को एक–एक कर पोंछती रहती।

कोने वाला मकान इतनी खस्ताहाल स्थिति में था कि यदि उन आदमियों ने उसमें एक मोटी रस्सी बाँधी होती और उसे अपनी पूरी शक्ति लगाकर खींचते तो उसे धराशायी कर देते। उन्हें किसी ऐसी फौलादी मशीनरी की आवश्यकता नहीं थी जो इतना शोर मचा रहीं थीं। दीवारें गिरने की कगार पर दिख रहीं थी क्योंकि वे भीतर से खोखली हो चुकी थी, और छत बीच से लटक गई थी, मानों अपना ही बोझ उठा पाने में सक्षम न रही हो। मकान पहले के किसी अलग ही समय से संबंधित था। बस वे वृद्ध महिलाएँ ही ऐसी थीं जिन्हें याद था कि छत उस समय से संबंधित थी जब 'आपसी साख संघ खपरैल की नई छतों के संबंध में वित्त उपलब्ध कराया करते थे।

मकान की छत मूलतः देवदार की छाल की बनी हुई थी। पुराने दिनों में जब इस इलाके में खूब लकड़ी पैदा होती थी, आप एक दो खपरैलों के दाम में देवदार की ढेरों छाल खरीद सकते थे। आसानी से उपलब्ध सामान को प्रयोग करने में समझदारी भी थी। देवदार की छाल के टुकड़ों के जोड़ों पर लकड़ी लगी थी और जब लकड़ी पुरानी होकर ख़राब हो गई, उन्होंने उन छालों को उनके स्थान पर बनाए रखने के लिए बच्चों के सिरों के आकार के बराबर के पत्थर लगा दिए। कोने पर का वह मकान दिखता भी उसी तरह था।

समय के साथ बाजार में सस्ती खपरैल दिखने लगी और पहाड़ों से लकड़ी का आना बंद हो गया, छाल की कमी हो गई और यदि कोई उसे किसी तरह पा भी जाता

तो वह महँगी हो गई थी। किसी ने यह दावा करते हुए कि वे बेहतर दिखती हैं, छत में खपरैल का प्रयोग करने की सलाह दी। स्थानीय निवासियों ने इकट्ठे होकर एक साख संघ का निर्माण किया क्योंकि अपने दम पर छत बदलवा पाने का खर्च वहाँ कोई नहीं उठा सकता था।

जिन्हें अंततः साख संघ से मदद प्राप्त हुई। उनमें कोने वाले मकान का निवासी भी था, और इस तरह उसने मकान की छत–छाल से खपरैल में परिवर्तित कर दी। कुछ वर्षों बाद छत बैठने लगी, क्योंकि देवदार की छाल के हिसाब से बनी होने के कारण वह खपरैल का अतिरिक्त भार नहीं वहन कर पा रही थी। खपरैलें टूटते हुए दाँतों की भाँति खाली जगह छोड़ती हुई, कई जगह से गिर गई, और अन्य जगहों पर जहाँ की खपरैलें ढीली हो गई थी, चिड़ियों ने घोंसले बना लिए तथा घास के बीजों ने जड़ पकड़ लिया। एक बार जब उस मकान में रहने वाला कोई भी नहीं रहा, उसके पतन की गति तीव्र हो गई। 'बैक हो' के पंजे के एक दो झटकों में ही मकान चुपचाप अपने आप भहरा गया मानों वह धक्का दिए जाने की प्रतीक्षा ही कर रहा था।

यद्यपि मकान में कुछ नहीं शेष था सिवाय ढाँचे के, सबने यह भविष्यवाणी की थी कि इसके गिराए जाने पर बहुत अधिक धूल और गंदगी के बादल उठेंगे क्योंकि यह यहाँ कोने पर बहुत लंबे समय से स्थित था। किंतु मकान आसानी से ध्वस्त हो गया। मानों वह वहाँ कभी था ही नहीं।

एक बार जब कोने वाला मकान ध्वस्त कर दिया गया, वहाँ का परिदृश्य बहुत हद तक सुधर गया। कूड़ा ढोने वाले एक ट्रक को कबाड़ के तख्तों और लकड़ी के खंभों को लादकर इंसीनरेटर तक के कई चक्कर लगाने पड़े। जब उन्होंने भूमि को समतल करना शुरू किया, एक अफवाह फैल गई कि मकान में एक स्थान से, जो संभवतः आलू भंडारण हेतु प्रयुक्त होता था, कुछ अवशेष मिले थे जो स्पष्ट रूप से किसी व्यक्ति के अंतिम अवशेष थे। ऐसा लगा जैसे यह अफवाह सूर्य के तीव्र प्रकाश में एकाएक प्रगट हो गई थी। जिन्होंने यह अफवाह फैलाई और जिन्होंने इसे सुना दोनों ने ही अपनी आवाजें धीमी रखी। किसी ने पुलिस नहीं बुलाई। उन्होंने अवशेषों को उसी गड्ढे में रहने दिया और मजदूरों द्वारा उसे भरवाकर बुलडोजर से समतल कर दिया। किसी भी स्थिति में वे हड्डियाँ बहुत पुरानी थीं। और चूँकि तोड़फोड़ का यह काम गली के ही ठेकेदारों को मिला हुआ था वे ठीक–ठीक जानते थे कि उस मकान में किस प्रकार के लोग रहा करते थे।

पुलिस को इसकी सूचना देने और उन्हें इस संबंध में होने वाली जाँच के साथ खबरे फ़ैलाने देने की बजाय उन्होंने निर्णय लिया कि बहुत बेहतर होगा कि अवशेषों को वैसे ही रहने दिया जाए जैसे वे थे। वृद्ध औरतें आपस में यह पूछते हुए खुसुर पुसुर करती रहीं कि मात्र इस कारण कि कुछ हड्डियाँ निकल आई थी, अतीत में फिर से झाँकने का क्या लाभ होगा। उन्हें जिस बात की अधिक चिंता हो रही थी वह थी

कि अब जब कोनेवाला मकान छाया देने के लिए नहीं था, चिलचिलाती धूप की मार पौधों को सीधे पड़ रही थी। उसका भाग्य चिंदी होते कागज के एक टुकड़े की भाँति था।

आवारा जुकिची ने नांटो में महिला को देखा, जहाँ वह अपने साथियों से अलग हुआ था। उनका दल 'ईसे' के इस कस्बे में मियाजावा के दूर के इलाके में स्थित अपने रिहायती कैंप से अपना काम पूरा करने के बाद आया था। वहाँ कैंप में हर बात उसके अनुकूल हुई थी, मजदूरी अच्छी थी और उसने जुए में बड़ी धनराशि जीती थी। अब जबकि वह उससे भी अधिक धन लिए चल रहा था जितना कभी पहले उसने अपने जीवन में नहीं देखा था, वह अपने गृहनगर की हवाओं को महसूस कर सकता था जो जिद करके उसे वापस बुला रही थीं, क्योंकि वे सब प्रवासी पक्षियों की भाँति एक लेबर कैंप से दूसरे तक धक्के खाते फिर रहे थे।

वह जानता था कि एक बार जब वह घर पहुँच गया तो उसके पास करने को कुछ नहीं रहेगा। सारा दिन गली की बूढ़ी औरतें बाहर बैठी धूप में बड़बड़ा रही होंगी। हो सकता है, वे कहीं बाहर दूर जाना चाह रहे हों, लेकिन कभी गए नहीं थे, अथवा कुछ और काम कर पाने के लिए बहुत थके होने के कारण शीघ्र ही वापस आ गए थे और किसी ने ढेर सारे बच्चों को बाहर धकेल दिया था जो बिना छाया के बाहर कुत्तों को दौड़ते और एक दूसरे पर डंडे भाँजते हुए उबल रहे थे। यह उस तरह का कस्बा था।

अगले कैंप के लिए जाने से पूर्व, जुकिची और उसके अन्य साथियों ने ईसे की पुरानी गोदी से, जहाँ पानी के जहाज हवा के अपने पक्ष में पलटने की प्रतीक्षा करते लंगर डाले रहते थे, द्वीप तक के लिए नाव पकड़ने का निर्णय लिया था। वे अभी भी नाव की प्रतीक्षा कर रहे थे कि जुकिची ने महिलाओं को आते जाते देखा, उनके कंधे ठंड से झुके हुए थे, इस बात से उसे नववर्ष में अपने कस्बे की स्मृति हो आई।

जब वे उस रात देर तक पीते हुए नशे में हो गए, जुकिची का अपने साथियों से झगड़ा हो गया। अगली सुबह सराय में उनमें से एक ने कहा कि उन्हें रात की सभी चीजें भूल जानी चाहिए और साथ रहना चाहिए लेकिन जुकिची अपनी रजाई के नीचे ही अपना सिर ढाँके पड़ा रहा। उसे वहाँ से जाने की कोई इच्छा नहीं हो रही थी।

''तुम लोग जाओ। मैं रुक रहा हूँ।''

उसके जुकिची की काम करने की इच्छा और कम हो गई। इस सबसे ऊबकर, एक मित्र ने जुकिची के ऊपर से रजाई खींचनी चाही लेकिन जुकिची ने उसे ऊपर की ओर से पकड़ रखा था, इसलिए एक अन्य ने उसकी रजाई को नीचे की ओर से उठा दिया।

''आओ, कमीने। तुझे इस कारण यहीं नहीं रह जाना चाहिए क्योंकि वह जो कल तेरे साथ थी, इतनी अच्छी थी?''

कामगारों ने जुकिची के धड़ और पैरों के संधिस्थल की ओर देखा और जोर से हँसने लगे। अंततः उन्होंने उसे खुश करने का प्रयत्न छोड़ दिया और चले गए लेकिन उसे बता दिया कि वे कहाँ जा रहे थे, पहले नदी पार के पहाड़ों पर और यदि वहाँ सब ठीक नहीं रहा तो वे उसके आगे की किसी जगह के लिए भी प्रयत्न करेंगे।

जुकिची ने दोपहर के तुरंत बाद सराय छोड़ दी और नांटो में इधर–उधर भटकता रहा। उस कस्बे की हर चीज उसके गृहनगर जैसी दिख रही थी फिर भी भिन्न थी। उसे धूप में किसी कुत्ते की तरह चलते रहना था।

स्त्री कुएँ पर धुलाई की नाँद के पास बैठी कपड़े धो रही थी। गुलदाउदी के पौधों का एक झुंड कुएँ के पास बहुत अधिक बढ़ गए, खर–पतवार की तरह फैल रहा था और मछुआरों की लालटेनें जमीन पर यहाँ वहाँ बिखरी हुई थी। यह मछुआरों के एक निर्जन गाँव का अपराह्न का सामान्य दृश्य था, किंतु महिला जिस तरह से गतिशील थीं उसमें कुछ विचित्र सा था। जुकिची रुक गया और उसे देखने लगा।

पालथी मारकर बैठे हुए स्त्री ने पहले पंप के हत्थे के लिए टटोला फिर जब वह मिल गया, वह खड़ी हो गई और उसने पंप चलाना शुरू कर दिया। अपना हाथ बढ़ाकर यह महसूस करने के पश्चात् कि पानी आने लगा है, उसने फिर पंप का हत्था नीचे दबाया।

स्त्री का चेहरा सुंदर था, और उसकी देह के एक–एक पोर से उसका स्त्रीत्व छलक रहा था, किंतु वह नेत्रहीन थी।

उसको एक झलक देखना मात्र जुकिची के लिए बहुत था।

उसने उससे बात की और पंप का हत्था उसके हाथ से ले लिया। पहले पहल वह हड़बड़ा गई, किंतु जब उसे भान हुआ कि वह कोई राह चलता अजनबी है जिसने दयावश उसकी मदद करनी चाही है और उसे कोई हानि नहीं पहुँचाएगा, उसने उसे रुक–रुककर अपने बारे में बता दिया।

दो दिन पश्चात जुकिची नेत्रहीन स्त्री को अपने साथ वापस अपने गृह नगर ले आया। बहुत लंबे समय से कोने वाला मकान खाली पड़ा हुआ था। उसका आखिरी रहवासी एक जाना माना चोर केन्किची था। एक के बाद एक सनकी योजनाएँ बनाकर उसने मकान में कई परिवर्तन किए थे, बचकर भागने के लिए मकान के पीछे की ओर एक छिद्र बनाया था और छद्म दीवार की आड़ में सामान रखने की एक जगह बनाई थी। जब जुकिची स्त्री के साथ वहाँ पहुँचा, उसके मित्रों और समर्थकों ने उस जगह को ऊपर से नीचे तक साफ सुथरा कर दिया।

महिला मुख्य कक्ष के एक कोने में बैठी थी, प्रदर्शन के लिए अपने स्टैंड पर रखी शानदार गुड़ियाँ की भाँति। वह मात्र सुनकर यह जानती हुई सी लग रही थी कि मजे लेने वाले युवा व्यक्तियों को मात्र ठुड्डी हिलाकर आदेश देता कठोर जुकिची अपने पसंदीदा माहौल में था। जब भी जुकिची उससे कुछ कहता वह उसकी आवाज़ अथवा

अन्य आती हुई ध्वनियों की ओर मुड़ जाती और कहती, 'इसे मुझे करने दो। उस दिन और उसके अगले दिन पीने–पिलाने की दावत होती रही। पाँच दिन बीत चुके थे जब जुकिची ने अपने को उसके साथ अकेले पाया। उसने महसूस किया कि वह उसके साथ जितनी विनम्रता से पेश आए वही कम होगा। अंधेरे में घिरे मकान में, जहाँ उसकी आँखें भी देख पाने में उतनी ही अक्षम थी जितनी उस स्त्री की, स्त्री की देह का कोमल स्पर्श और उसकी गंध उसके भीतर तक उतरती उसकी कामना को आमंत्रण दे रही थी। वह स्त्री के संतुष्टिदायक अमृतकोश में, जो अब उसकी संतुष्ट कामना की धारा में एकाकार हो गया था, अपना चेहरा डुबोए हुए था। उसने तब स्त्री के चेहरे की ओर देखा जब उसने अपनी संतुष्टि प्रकट की। उसने उससे पूछा कि वह देख पाने में सक्षम हुए बिना किस प्रकार जीवन बिता सकी थी।

''वह कुछ भी नहीं है, ''उसने कहा, ''मैं ऐसे पैदा ही हुई थी।''

जब वह जुकिची के अपने प्रति चाहत से अधीर हो जाती, वह अपनी तरफ से पहल करती। वह दिन में मात्र उसकी ओर देखकर संतुष्ट रहता। नेत्रहीन स्त्री जिस तरह से चलती उससे जुकिची को पंख खोलती किसी सुंदर चिड़िया की स्मृति हो आती। उस घर की दीवार को छूकर अपनी राह तलाशते जब तक कि वह खंभे को न छू लेती, अथवा अपनी लकड़ी की चप्पलें पहने मिट्टी के फर्श वाली रसोई में सिंक के सामने जाकर किसी चीज को धोती होती अथवा घर की सफाई कर रही होती, उसे देख जुकिची को महसूस होता मानों वह सुंदर चिड़ियाँ उसके सर्वांग को छेड़ती उसे आनंदातिरेक की स्थिति में ला रही हो।

जब वह किसी खंभे से टकरा जाती अथवा किसी ऊँची नीची जगह पर कदम चूक जाती, वह पिंजरे की चिड़ियाँ की सी हो जाती, अपने कटे हुए पंखों के पिंजरे की तीलियों से टकरा जाने से अपनी कैद के लिए कुढ़ती हुई सी। उन क्षणों में अथवा जब वह अपने को चोटिल कर लेती, जुकिची उसे संभालता और पूछता चोट तो नहीं लगी। जब वह किसी जख्म से रक्त बहता देखता, वह उसे तब तक अपने आलिंगन में लिए रहता जब तक दर्द समाप्त न हो जाता। जब चुकिची उसे अपनी बाँहों में लिए रहता, पीड़ा सहती हुई स्त्री जवाब देती, ''मैं ठीक हूँ। इससे दर्द नहीं हो रहा।'' जुकिची का एक स्पर्श अथवा आलिंगन स्त्री के होठों पर एक गहरी साँस ला देता, मानों वह अपनी न देख पाने की सीमाएँ उन क्षणों में भूल जाती रही हो।

जुकिची के हमेशा से ही अनेक मित्र थे, इसलिए जब वह और वह स्त्री दिन में एक दूसरे के पास–पास बैठे होते और कोई मित्र घर में आ जाता तो, जुकिची स्त्री की नेत्रहीनता का लाभ उठाकर उसको आलिंगन में भर लेता। किसी चिड़ियाँ के मालिक की भाँति जो अपनी चिड़ियों के पंखों और गाने को लेकर गर्वित होता है, जुकिची भी उसे सबको दिखाने हेतु उत्सुक रहता। वह उसे बस बाद में वह पूछती, 'वहाँ कौन है?' मानों वह किसी और व्यक्ति की वहाँ उपस्थिति की हल्की सी अनुभूति

कर रही हो। उसे अपने करीब खींचता हुआ जुकिची उसके कान पर अपने होंठ रख, फुसफुसाता हुआ कहता, 'यहाँ कोई नहीं है। बस हम दोनों हैं।' यद्यपि स्त्री ने अनुमान लगा लिया था कि वास्तव में क्या चल रहा था, लेकिन वह अपना सिर हिलाती और जुकिची के गालों से अपना गाल सटा लेती, अपने को सुरक्षित महसूस करते हुए अब उसने दिन के समय की दुनिया को जुकिची से मिलने आने देने की स्वीकृति दे दी थी।

एकबार जो उसने नांटो की उस स्त्री के साथ कोने पर स्थित मकान में अपना नया जीवन शुरू किया, जुकिची कभी भी काम करने के लिए घर से बाहर नहीं गया। कैंप में की गई कमाई और जुए में जीती गई बड़ी रकम से वह अपने मित्रों के साथ खाने–पीने का एक लंबा उत्सव सा मना रहा था। कोने वाला वह मकान पियक्कड़ युवाओं की तेज आवाजों और मस्तिष्कविहीन स्त्रियों की खिलखिलाहटों से दिन रात गूंजता रहता। गली के लोगों के लिए, बिना कोई भी काम–धाम किए युवा लम्पटों के उस झुंड का इस तरह रंगरलियाँ मनाना एक तरह की जन समस्या थी।

समय के साथ, गली में एक भी प्राणी नहीं बचा था जो जुकिची की नेत्रहीन स्त्री को न पहचानता हो। लोग आश्चर्यचकित थे कि वह अपनी इतनी बड़ी परेशानी के बावजूद हँस सकती थी। उसे जुकिची के प्रति निश्चय ही पागल होना चाहिए और वह भी उसके प्रति अविश्वनीय रूप से अच्छा होगा। लेकिन जब बात जुकिची के गैंग की होती, वे लोग एक मील दूर से ही मुसीबत को आता हुआ महसूस कर लेते, इसलिए उन लोगों ने उस स्त्री के साथ मित्रवत बातचीत से अपने आप को दूर ही रखा था।

वास्तव में उन्हें उस स्त्री के साथ बात करने का कभी कोई अवसर ही नहीं मिला। जब भी कभी वह कुएँ से पानी लेने अथवा कपड़े धोने आती, जुकिची सदैव बाल्टी अथवा कपड़े धोने का पात्र लिए उसके साथ होता और जब तक वह काम पूरा करती, जुकिची उसकी बगल में खड़ा उसकी प्रतीक्षा करता रहता। उनको ऐसा महसूस होता मानों जुकिची स्त्री के कामों को स्वयं करना चाहता था। किंतु वह मना करती थी, हमेशा यह कहती हुई कि एक पुरुष को इस तरह के काम नहीं करने चाहिए, और उसने हमेशा से यह सब स्वयं ही किया था, मानों वह गली के स्त्री पुरुषों की दृष्टि को महसूस कर सकती थी जो उन्हें साँसें रोके देख रहे होते थे।

वह पकड़े धोने का पात्र भरती, उसमें साबुन का झाग बनाती, कपड़े धोती और उन्हें खंगालती। वस्तुतः वह उन सब लोगों को दिखा रही होती थी– और स्वयं को भी–कि वह जुकिची की स्त्री थी। यह बात जुकिची को विचित्र रूप से असुविधाजनक लगती। इतना पास खड़ा हुआ कि वह उसे छू सकता था, वह उसके साथ हर समय लगा रहता। स्त्री का चेहरा एक शानदार गुड़ियाँ की भाँति था। वह सचमुच शानदार तरीके से चलती थी– एक कामुक सी लचक के साथ– जब वह धीमें से हाँफती हुई

पंप चलाती, फिर पालथी मारकर बैठ जाती और झाग में डूबे हाथों से कपड़े धोती। आसपास की हर आवाज पर सिर घुमाती हुई वह नेत्रहीनों जैसी कोई मनहूसियत नहीं दर्शाती बल्कि जुकिची को और अधिक प्यारी लगा करती। वह इस दुनिया में रहने वाले किसी भी प्राणी की तुलना में अपनी नेत्रहीनता के लिए अधिक पीड़ा नहीं दर्शाती थी।

उसे देखते हुए, जुकिची अपनी देह में पीड़ा सी अनुभव करता। यह स्पष्ट था कि उसके विचार स्त्री के विचारों से भिन्न थे। उसकी कोई इच्छा उसके साथ घर बसाकर व्यवस्थित होने की नहीं थी। किसी प्रवासी पक्षी की भाँति, जो अपने घर से दूर–दूर आवारागर्दी करता रहता है, वह भी इस जगह से उस जगह भटकता रहता था, ऐसी जगहों पर रुकता हुआ जहाँ अच्छा पैसा मिलने की संभावना होती, जहाँ उसके मित्र होते और यदि संभव होता, जहाँ वह किसी स्त्री तक आसानी से पहुँच सकता। जब पैसा इकट्ठा हो जाता, वह काम छोड़ देता और अपने दिन बिना कुछ किए धरे बिताता।

एक गृहस्थी शुरू करने अथवा एक जगह व्यवस्थित होने की किसी मंशा के बिना, जुकिची उस स्त्री को अपने साथ रहने के लिए अपने गृहनगर लेकर इसलिए आया था क्योंकि वह एक तरह की जड़विहीनता की भावना से उत्प्रेरित था जो उसके भीतर तब उत्पन्न हो जाती थी जब कोई एक काम पूरा कर लेता था, उसके पास खर्च करने को पैसा होता था और वह दूसरे काम की तलाश में होता था। किंतु एक बार जब वह उस नेत्रहीन स्त्री को अपने साथ लेकर वहाँ आ गया, उसने उसकी जड़विहीनता की अनुभूति को तीव्र राहत प्रदान की।

जिस तरीके से स्त्री चलती थी, जिस तरह उसकी आँखें घूमती थीं, जिस तरह वह चीजों को महसूस करने के लिए अपने हाथ चलाती, जिस तरीके से वह उसे खाने अथवा पीने की कोई वस्तु देती– वह उसे उत्तेजित कर देती और उसके पुरुषत्व से सीधे संवाद करती। वह उसका विश्वास करती थी, उसके साथ रहकर सुख अनुभव करती थी, और जुकिची के लिए वह उसकी कामना थी।

फिर भी जुकीची ने अनुभव किया कि जब उसके पास के पैसे खत्म हो जाएँगे, उनके बीच का बंधन टूट जाएगा। वह मकान के भीतर बँधे हुए पंखों वाले पिंजरे में बंद पक्षी की भाँति रहती थी, जुकिची के साथी की भूमिका निभाती हुई, उससे मिलने आए उसके मित्रों के साथ घुलती–मिलती हुई और जब कभी वह पी लेती तब प्रसन्नता से हँसती हुई युवा स्त्री पुरुषों की आवाजें एक अपशकुनी अनुभूति के साथ गली में फैलती हुई मकान से बाहर छलकती रहती। दिन व्यतीत होने के साथ, स्त्री और जुकिची दोनों जानते थे कि अंत निकट था। अपने दोस्तों को दावतें देते देते जुकिची ने मजदूरी और जुए का सारा माल उड़ा दिया था। जिस दिन पैसे समाप्त हो गए, वह लकड़ी की एक टाल पर लकड़ी के लट्ठों को उठाने धरने का काम करने

के लिए चला गया। उस दिन के पश्चात्, जुकिची काम के सिलसिले में पूरे दिन घर से दूर रहता।

गली के लोग स्त्री को अकेले कुएँ से पानी निकालते, और उसे चारों ओर छलकाते हुए घर तक ले जाते हुए देखते। कुएँ पर कपड़े धोने वाली औरतें, जो इतनी संख्या में होतीं कि उससे एक लॉन्ड्री का व्यवसाय अच्छे से चल जाता, उसे बाल्टी और कपड़े धोने का पात्र लेकर कपड़े धोने के लिए वापस आती देखकर कुएँ के चारों तरफ सिकुड़ सी जाती। उसे ज्ञात न होता कि एक पड़ोसन उसे जगह देने हेतु एक ओर सरक गई थी, न यही कि वह पानी ठीक से बाल्टी में न डाल पाने के कारण और लोगों को भिगों रही थी।

गली की औरतें उसे चुपचाप देखती रहती। उन्होंने एक–दूसरे को उससे बात न करने की चेतावनी सी दे रखी थी, न ही संवेदनावश न ही आलोचना के लिए। एक नेत्रहीन स्त्री के लिए एक सामान्य स्त्री की भाँति व्यवहार करना असंभव था, विशेषतः तब जब वह स्थान उसका जन्मस्थान न हो।

जुकिची संध्या को घर आया। स्त्री ने पानी का पात्र भरने का पूरा प्रयत्न किया था किंतु उसने स्नानागार गर्म नहीं किया था क्योंकि उसे आग से डर लगता था। जुकिची ने पानी गर्म किया, स्नान किया और स्त्री की भी नहाने में मदद की। ऐसा महसूस हुआ जैसे वे एकदम नव–विवाहित हों। किंतु जुकिची जानता था कि उसके धुले हुए कपड़े और उसका रात का भोजन स्त्री के विशेष प्रयत्नों का फल है। उनके पास तब तक पर्याप्त धन होगा जब तक वह सुबह से रात तक काम करता हुआ बाहर रहेगा। उसने महसूस किया कि उनका नया संबंध अब अधिक समय तक नहीं चल पाएगा।

स्त्री के परिश्रम से जुकिची को पीड़ा होती थी। अँधेरे घर में वह उसकी आनंद में डूबी चीखें सुनता था और उसे आलिंगनबद्ध कर लेता था मानों उसके समक्ष पूजा हेतु झुक रहा हो, पूरे समय यह जानते हुए कि उसके भीतर का पुरुष भी नेत्रहीन था। एक अपार अंधेरे में घूर्णन करता नेत्रहीन पुरुष जो एक घनीभूत ठोस पदार्थ हो गया था ऊपर की ओर उछाल दिया गया, ऊष्मा से पिघलता हुआ और फिर घुल जाता हुआ। काश वह भी उसी तरह नेत्रहीन हो पाता। अँधेरे में जुकिची को अपने में समेटे स्त्री चीख रही होती, मानों अंततः उसे स्वतंत्र कर दिया गया था।

अधिक समय नहीं व्यतीत हुआ था जब गली के लोगों ने स्त्री की हँसी उस समय भी सुनना शुरू कर दिया जब जुकिची बाहर गया होता। वे इस भय के साथ दूर से ही देखते रहते कि अब न जाने क्या मुसीबत आएगी।

सुबह काम पर जाने और सांझ को लौटने तक जुकिची हमेशा की भाँति ही रहता। किंतु किसी ने उसे सूचना न दी कि उसके न रहने पर उसके मित्र उसके घर आते–जाते थे। एक दिन जब स्त्री के हँसने की खनक घर से बाहर गई, गली के

लोगों ने अपने कान लगा दिए और जान गए कि वह आनंद से चीख रही थी। निश्चय ही वह यह काम जुकिचि के चले जाने के बाद उसके मित्रों के साथ करती होगी।

गली के लोगों को कुछ बुरा घटित होने की आशंका होने लगी। जब कोई स्त्री कोई प्रेमी बनाती थी तो उसे उसके आदमी द्वारा सामान्यतः बहुत कठोर सजा दी जाती थी। किंतु एक नेत्रहीन स्त्री के मामले में यह मान लिया जाता कि उसके साथ जबरदस्ती की गई होगी जबकि वह सहमति से साझीदार थी। एक पुरुष ऐसी स्त्री को आसानी से पीछा करके गिरा सकता था क्योंकि वह भाग नहीं सकती थी, उसे छुरा मार देने अथवा बाँध देने की धमकी दे सकता था, वह उसे एक शब्द से नियंत्रित कर सकता था। लोग सोचते यदि जुकिची को पता चल गया कि उसकी स्त्री का कोई प्रेमी था, तो वह इसी निष्कर्ष पर पहुँचेगा वह अपने मित्रों से पत्नी की नेत्रहीनता का फायदा उठाकर उसे धोखा देने के लिए घृणा करेगा और उनसे कठोर प्रतिशोध लेगा। अपना दम साधे गली के लोग विपत्ति के घटित होने की प्रतीक्षा करने लगे।

उसके कुछ दिनों पश्चात लोगों को जुकिची गली में दिखना बंद हो गया। सबने कि यही सोचा कि उसे कोई अच्छा काम मिल गया था और उसने कुछ समय के लिए घर छोड़ दिया था। प्रतिदिन, बिना नागा स्त्री की हँसी सुबह तड़के ही मकान से बाहर छनकर आने लगती। स्त्री ने तब तक मकान की बगल में गुलदाऊदी के कई पौधे रोप दिए थे। कोई नहीं जानता था कि वे उसके पास कहाँ से आए। लोग उससे वास्तव में कहना चाहते थे कि जब जुकिची को पता चलेगा कि उसका कोई गुप्त प्रेमी था, उसका अंत बहुत भयानक होगा, किंतु उन्होंने बस यह कहा ''तुमने फूलों के पौधे लगाए हैं, कितनी अच्छी बात की है।''

ये संभवतः उससे बोले गए उन लोगों के, जो उस स्त्री को और जुकिची को देख रहे थे, प्रथम शब्द थे।

''मैं इनके रंग नहीं देख सकती किंतु इनकी महक बहुत प्यारी होती है।'' उसने, जो उस व्यक्ति के दूसरी ओर देखते हुए कहा।

जुकिची फिर कभी वापस नहीं आया। स्त्री की हँसी जारी रही।

❑❑❑

अनूदित खंड (कविता)
तेलुगु कविता

मनिशिगा प्रवहिंचालनि

सी. नारायण रेड्डी

"प्रवाहम चलनशीलानिकि प्रतिरूपं
ई स्त्रुष्टि कैना ये व्यक्ति कैना
पृथ्वी तना चुट्टू ताने
रात्रिम बवल्लू प्रवहिस्तुने उनटून दि
आ प्रवाहम ओक्का क्षणं आगिंदा
समस्त प्राणी कोटि
संक्शोब्हम लो कूरुकु पोतुंदी
गाली प्रवाहिंचिनप्पुड़े अदि
तना राका तो तललूपे तरुशाखला
तललनु निमुरुतू पोतुंदी
अंदुलो एनता सौहार्द मुंदनी
स्तंभिंची पोवडम दानी ओंटीकी सरि पडदु
निलिचिपोइना नीटी कनटे
पोरली पारे नीटी तरगल्लोने
आत्मविश्वासम उरकलेस्तू उनटूंदी
आ जला धारले गिरी शिखराला पै नुंची
दूकिनप्पुडू
तिरुगुलेनी साहसम नुरगलेत्तुतु उंटूंदी
श्वास तना लो प्रवहिंचिनपुडे
वेणुवु नादा स्वरूपिणीगा जीविस्तुंदी
अदि आगिते दानिकी अस्तित्वमे लेदु

तोलिपोट्दु लो तूर्पू दिक्कुना उदैंचे
सूर्या किरणालू
तामू पुट्टीना चोटने उनडालनुकोवु
विश्वमंतटा प्रवहिंचनिदे अवि
ऊरुकोवु
निजालतो उन्न ये उद्यमं आशयाला कैना
प्रवाहमें जीवा गुणं
अवि स्तब्द मई पोते आ उद्यमं
कलेबरा प्रायम
अप्पुडप्पुडू नंनू नेनू प्रश्निंचुकुंटानु –
एनदुकला
ना जीवितांनी पोडीगिस्तु पोतुन्नावनी
दानिकी एपूडू ओके समाधानं –
मनिशिगा प्रवहिंचालनि–
प्रवहिस्तूने उनडालनि."1

❑❑❑

हिंदी अनुवाद

मानवता का प्रवाह

मोहम्मद जमील अहमद

प्रवाह चलन शीलता का प्रति रूप है
सृष्टि को और हर व्यक्ति को
पृथ्वी दिन रात
अपने आप गोल फिरती है
वह प्रवाह एक क्षण रुका क्या ?
समस्त प्राणी
संखोभ में भरे हुए हैं
हवा का प्रवाह
पेड़ की शाखाओं के पत्तों को
सहलाते हुए आगे बढ़ता है
उसमें कितना सौहार्द है
हवा का प्रवाह कभी रुकता नहीं
स्थिर जल से
प्रवाहित जल में ही
आत्मविश्वास झलकता है
वही जल धाराएँ गिरी शिखरों पर से
छलांग लगाते हैं तो अटूट साहस दिखाई देता है
श्वास प्रवाहित होने से
बाँसुरी की नाद सुनाई देती है
वह रुक गए तो उसका अस्तित्व समाप्त हो जाता है
प्रातः काल पूरब में उदय होने वाले
सूर्य किरण
वहीं रुकते नहीं

विश्व भर में छा जाते हैं
विद्रोह में सच्चाई प्रवाहित होती है
वह रुक जाए तो
कंकाल बन जाएगा
जब जब मैं अपने आप से प्रश्न करता हूँ –
क्यूँ मेरे जीवन को बढ़ाता जा रहा हूँ
उसका उत्तर एक ही आता है
मानवता का प्रवाह होना चाहिए
प्रवाहित होते रहना चाहिए।

❑❑❑

हिंदी अनुवाद

परता पूँप

पार्वती तिर्की

परता नू पूँप पुईंद'आ लगी
सन्नी कुके पूँप ती बेचा लगी

पूँप ती बेचा लगी–
पूँप ता हेक्खा ही बेरा कमआ लगी
खेसेर ता हंसली कम' आ लगी
मुदी अरा कानफूली कम' आ लगी
आ कुके पूँप ती बेचा लगी–
आदिन परता पूँप अजगम दव लग्गी।
अंवगेम
परता नू पूँप पुईंद' आ लगी।

❑❑❑

हिंदी अनुवाद

जंगली फूल

पार्वती तिर्की

जंगल में फूल खिल रहे हैं
उन फूलों से एक छोटी बच्ची खेल रही है

वह छोटी बच्ची जो फूलों से खेल रही–
फूलों से हाथ का बेरा बना रही
गले का हार गुंथ रही
अंगुलियों में मुंद्री और कान में कानफूल सजा रही,

वह छोटी बच्ची जो फूलों से खेल रही है,
उसे जंगली फूलों से बहुत प्रेम है–
इसलिए
जंगल में फूल खिल रहे हैं।

❑❑❑

खुले मेरे ख्वाबों के पर धीरे–धीरे
रामदरश मिश्र की गज़लें

ओम निश्चल

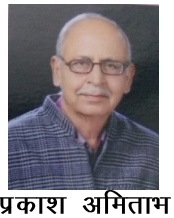

वेदप्रकाश अमिताभ

ओम निश्चल ने उचित ही ग़ज़लों को रामदरश मिश्र जी की काव्यात्मक अभिव्यक्ति का विस्तार माना है। गीतों की दुनिया से ग़ज़लों में 'शिफ्ट' होकर भी मिश्र जी का गीतकार जब–तब कौंध उठता है। कई ग़ज़लों में 'गीत' की तरह एक संवेदना, एक विजन आद्योपांत संश्लिष्ट हैं। वैसे भी कई रचनाकार 'ग़ज़ल' को गीतकाव्य में ही समेटते हैं। स्व. नाथूराम शंकर शर्मा 'शंकर' ने अपनी ग़ज़लों को 'राजगीत' की संज्ञा दी थी। मिश्र जी के नए संग्रह 'खुले मेरे ख्वाबों के पर धीरे–धीरे' की 'भूमिका' से ज्ञात होता है कि बहुत से गीत भी इकट्ठे हो गए हैं। गीत और ग़ज़ल की अंतर्यात्रा समानांतर चल रही है। यह सुखद है कि उनके जन्मशती वर्ष में भी छंद–परंपरा का प्रवाह जरूरी और प्रासंगिक बना हुआ है। इन ग़ज़लों में जहाँ सिंहावलोकन, आत्मालोचन, आत्ममंथन के अंतरंग स्वर हैं, वहीं समय–समाज की विडंबनाओं–विसंगतियों को भी अनदेखा नहीं किया गया है। जगबीती और आपबीती इनमें परस्पर संश्लिष्ट हैं।

'स्मृति' की आवाजाही ने कई स्थलों पर पाठकीय संवेदना से अपनत्व स्थापित किया है। सबसे मुखर है गाँव की स्मृति, जिसकी जमीं साथ लेकर रचनाकार महानगर में आया था। इसी जमीं से उसे आज भी प्रेरणा मिलती है, जिजीविषा का संबल मिलता है– पाँव के नीचे जमीं में है कोई 'संजीवनी'। ज्यों–ज्यों गाँव दूर होता गया, त्यों–त्यों ग्राम–गंध सघन और तीव्र होती गई– 'दूर होती गई ज्यों–ज्यों अपनी जमीं, पास आती रही अपनी खुशबू लिए' हालाँकि शहर की गुंजलक कमजोर नहीं थी– 'मैं पुकारता खेतों की साँसों भरी हवाओं को/ज्यों–ज्यों हँसता शहर मुझे अपनी माया में कसता था, लेकिन गाँव मिश्र जी की चेतना में 'सदा महमहाता' रहा है। वस्तुतः बचपन में जिया गया गाँव उन्हें 'सदा मुस्कुराता हुआ' याद आता रहा है। 'रहा गाँव तुझको पुकारता' सूचना मात्र न होकर वास्तविकता है। यही स्थिति बचपन की है जो बार–बार पुकार उठता है–

चाहता हूँ मेरा बचपन न मुझे आए याद
टेर जाता है वो रह–रह के मगर, क्या कीजे?

बचपन के टेरने में 'माँ' का स्मरण अपरिहार्य है, जो रग–रग में दुआ–सी तैरती रही है। माँ के लिए 'अँगीठी' का अप्रस्तुत बहुत व्यंजनापूर्ण है– 'जलती रहती है अँगीठी–सी रसोई घर के बीच/देके पूरी जिंदगी कुछ भी कहाँ खोती है माँ'/याद नहीं आता कि किसी अन्य कवि ने माँ को अँगीठी से उपमित किया है। 'घर' की स्मृति भी इन ग़ज़लों में प्रायः कौंधती है– 'दूर जितना ही चला जाता हूँ पास आता है घर'। गाँव, घर, माँ की स्मृति किसी अतीत–मोह की परिचायक नहीं है, अपनी जड़ों से जुड़े रहने और कुछ मूल्यों की विरासत को सहेजने का भाव इसमें अंतर्निहित है।

इन ग़ज़लों में अवमूल्यन और अमानवीयकरण के प्रतीक रूप में अँधेरा बार–बार आया है। 'अँधेरे की ये घाटियाँ मूँकती हैं', 'कभी से चल रहे हैं सोचते अँधेरे में', 'सिकुड़ी सी काँपती है अँधेरों के डर में कैद', 'दिन की भरी सभा में यह अंधकार क्यों है', आदि में चतुर्दिक व्याप्त यह अँधेरा डराने वाला है, सारा परिदृश्य सहमा हुआ है। लेकिन मिश्र जी की मूल्यनिष्ठा निराश नहीं होती है। उन्हें 'तम से किसी का भी टकराना अच्छा लगता हैं। कई रचनाओं में अँधेरे के कंट्रास्ट में रोशनी की उपस्थिति उनके ज्योतिर्मय विजन गवाही देती है– 'तुमको देखा कि घन अँधेरे में/जैसे कोई ज्योति का शिखर देखा'। अँधेरे की घिरती घटा के सामने सुनसान में जलते हुए दिए आश्वस्ति जगाते हैं और 'माँ' यानी की संपूर्ण परंपरा भी ज्योतिर्मयी है– 'घोर अँजियारे में जलती प्यार की ज्योती है माँ। एक ओर 'डरी चाँदनी', 'बेदर्द मौसम', 'फांसी है वे दुनिया', 'यातनाओं के दिन' हैं तो दूसरी ओर धूप में हँसता गुलमुहर, फूलों का कारवाँ, गुलों की दास्तां भी है जो विजन को सकारात्मक संतुलन देते हैं। मिश्र जी की प्रसिद्ध रचना 'बनाया है मैंने ये घर धीरे–धीरे' भी इस संग्रह में है और इसमें 'उठाता गया यों ही सर धीरे–धीरे', पिया खुद अपना ज़हर धीरे–धीरे' में मूल्यों की दीप्ति देखते ही बनती है। आखिरकार यह संग्रह उस मनीसी की रचना है जिसे 'चुपके–चुपके कलम चलाना आज भी अच्छा लगता है।

❑❑❑

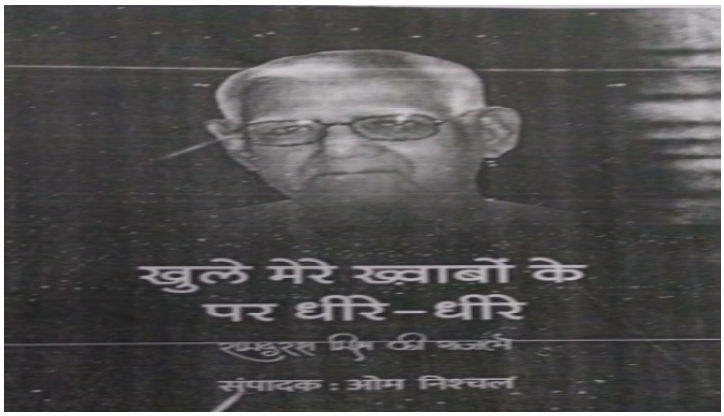

टूटे पंखों से परवाज़ तक

सुमित्रा महरोल

विपिन बिहारी

आत्मकथा लिखना एक कठिन विधा है। जीवन में कई ऐसी घटनाएँ घटती हैं, जिन्हें सार्वजनिक करने में प्रत्येक व्यक्ति घबराता है। वह अपनी सामाजिकता की सोचकर जीवन के उन पहलुओं को छुपाने में ही अपनी भलाई समझता है, परंतु आत्मकथा वह कभी नहीं हो सकती, जिसमें जीवन की सिर्फ सामान्य बातें ही दुनिया के सामने उजागर की जाती हों। असल आत्मकथा उसे ही कहा जा सकता है, जिसमें जीवन के स्याह–सफेद सभी आ जाएँ। जैसा कि माना जाता है, जिस चीज से किसी आत्मकथाकार को डर लगता है, वह अमूमन प्रत्येक व्यक्ति से जुड़ी होती है। यह अलग बात है कि कौन उन पहलुओं पर अपनी कैसी दृष्टि डालता है।

दलित आत्मकथाओं ने दलित साहित्य के उत्थान के लिए एक मुकाम तय कर दिया है। दलित साहित्य में जो कुछ गुजरता है, वह दलित आत्मकथाओं से होकर ही गुजरता है। माना जाता है कि हिंदी दलित साहित्य में पहली आत्मकथा ओमप्रकाश वाल्मिकी की 'जूठन' है। तत्पश्चात मोहनदास नैमिषराय की 'अपने–अपने पिंजरे', सूरजपाल चौहान की 'अभिशप्त' डॉ. धर्मवीर की 'पत्नी और भेड़िया', श्यौराज सिंह बेचैन की 'मेरा बचपन मेरे कंधों पर' एवं डॉ. तुलसीराम की 'मुर्दहिया' एवं 'मणिकर्णिका' प्रकाश में आई। इस जिक्र में संभवतः कोई दलित आत्मकथाकार छूट भी सकते हैं।

इन सबके बाद सुखद ये है कि दलित साहित्य में महिला आत्मकथाकारों ने भी पुरजोर तरीके से अपनी उपस्थिति दर्ज की है। उन्होंने भी बड़ी बेबाकी के साथ अपनी बातें आत्मकथा के रूप में रखी हैं। उनके लिए आत्मकथा लिखना सहज–सरल बिल्कुल ही नहीं है, जहाँ महिलाओं के चाल–चरित्र पर पल–पल नजर रखी जाती हो, ऐसे में उनके द्वारा आत्मकथा लिखना बहुत ही जोखिम भरा काम माना जा सकता है। दलित महिलाओं द्वारा लिखी गई आत्मकथाओं में सुशीला टाकभौरे की 'शिकंजे का दर्द' ध्यातव्य है। यद्यपि दलित महिलाओं द्वारा आत्मकथा बहुत कम ही लिखी गई है। इस मायने में सुमित्रा महरोल की आत्मकथा 'टूटे पंखों से परवाज

तक' दूसरी आत्मकथा कही जा सकती है।

'टूटे पंखों से परवाज तक' में डॉ. सुमित्रा महरोल की संघर्षगाथा उभर कर आई है। शारीरिक रूप से अक्षम होते हुए भी उन्होंने अपने संघर्ष के बल पर जीवन जीने के लिए अपनी लकीरें खींची हैं और अपनी एकनिष्ठता के बल पर अपना मनचाहा भी हासिल किया है। कहीं वह विवश भी होती हैं, कहीं वह जिद्दी भी दिखती हैं। कहीं वह अपमान भी सहती हैं, कहीं वह जवाब बनकर खड़ी भी नजर आती हैं। उनकी इस आत्मकथा से एक संदेश निकलकर आता है कि यदि दृढ़ इच्छा हो तो शारीरिक अक्षमता मंजिल तय करने में कभी बाधा नहीं बन सकती है। जब उन्हें अपने ही परिवार से उपेक्षा मिलती है तो ऐसे में उनका महत्व और बढ़ जाता है।

उनका जन्म समाज में सबसे हीन समझी जाने वाली जाति में हुआ। उन्होंने अपनी माँ से सुना था कि वे बचपन में बहुत स्वस्थ और चंचल थी। उनसे बड़े भाई अपने हमउम्रों के साथ खेलने निकल जाते थे। वह अपने घुटनों के बल रेंगती हुई घर के सामानों से खेला करती थी। उन्होंने बचपन में छोटी–छोटी घटनाओं का जिक्र किया है, जैसे उनकी माँ उन्हें दाल–रोटी खाने को देती थीं। वह कुछ देर तक दाल में रोटी डुबा–डुबाकर खाती थीं। फिर अचानक उन्हें क्या हो जाता था कि कटोरी उठाकर दाल को पानी की तरह पीने का प्रयत्न करती थीं। कुछ ही दाल उनके मुँह में जा पाती थी, बाकी दाल उनकी गर्दन, छाती, पेट को भिगोते हुए पाँवों पर आ गिरती थी। उन्हें ऐसे में नहलाया जाता था। एक बार ऐसा ही हुआ था। नहलाने के बाद वह सो गई थीं। सोते–सोते ही उन्हें जानलेवा बुखार चढ़ गया था। उसी बुखार ने उनकी जिंदगी की रूपरेखा ही बदल दी थी। उनके इलाज के लिए झोलाछाप डॉक्टर के पास ले जाया गया था। जब उनका बुखार उतरा था, तो उनके दोनों पैर सुन्न हो गए थे। जब उनके पैर के बारे में उनके माता–पिता को पता हुआ था, तब उन्हें सरकारी अस्पताल ले जाया गया था। परंतु उनके पैर नहीं ठीक हो पाए। उनके पिता को अपने काम से फुर्सत नहीं होती थी। उनका इलाज सरकारी अस्पताल के भरोसे हुआ था।

'काश, उन तात्कालिक परेशानियों को नजरअंदाज कर किसी ढंग के डॉक्टर से लगकर मेरा इलाज कराया गया होता तो आगामी जिंदगी में मुझे इतने खून के आँसू न रोने पड़ते।' (पृष्ठ 9) यहीं से उनके जीवन में संघर्ष प्रारंभ हो जाता है। वह हमेशा रोती–बिसूरती रहती थी, जिससे बुजुर्गों की मंडली डिस्टर्ब होती थी। उनमें से कोई उन्हें धमकाता भी था, तब वह सहम जाती थीं। नए मेहमान के रूप में उनका एक भाई जन्म लेता है। भाई के जन्म लेने के बाद उनसे माँ की भी गोद छीन जाती है। कभी–कभी माँ भी उन पर झुँझला उठती थी। पिता का भी उन्हें दुलार–प्यार नहीं मिलता।

वह लिखती हैं– 'छोटे–अबोध बच्चे इस दुनिया में सबसे निरीह प्राणियों में से

एक हैं, क्योंकि वह अपने हर काम के लिए दूसरों पर निर्भर होते हैं।'(पृष्ठ 10) ये शब्द बड़ा ही मार्मिक और मारक हैं। जो बालक शारीरिक और मानसिक रूप से विकलांग होते हैं, उन्हें विशिष्ट सहयोग व स्नेह की दरकार होती है।

उनके परिवार की स्थिति ऐसी नहीं थी कि उन पर विशेष ध्यान रखा जाता। पिता अकेले कमानेवाले थे। उनका छोटा भाई अक्सर अस्वस्थ रहता था और उसे अक्सर अस्पताल ले जाना पड़ता था। जब उनके पिता को सरकारी फ्लैट मिला, जिस दिन सभी नए घर में पहुँचते हैं तो उन्हें अन्य सामानों की तरह एक स्टूल पर रख दिया जाता है। उनकी दादी जब उस घर में आती है, उन्हें अपनी गोद में लेकर पड़ोसियों के पास जाने लगती हैं। उनके बारे में पड़ोसी पूछते हैं।

इसी तरह समय बीत रहा था। अब वह जैसे–तैसे चलने की कोशिश करने लगी थी। उनका दायाँ पैर साठ प्रतिशत पोलियों की चपेट में था। दाएँ पैर की दशा कुछ ठीक थी। दाएँ पैर पर शरीर का वजन छोड़कर जैसे ही वह बायाँ पैर आगे बढ़ातीं, लंगड़ाकर वह ढेर हो जातीं, परंतु वह हार नहीं मानती और वह वजन साधने और संतुलन बनाने के लिए हाथों का सहारा लेना शुरू कर देती हैं। अब वह बच्चों के साथ लूडो, साँप–सीढ़ी व गिट्टे भी खेलने लगती हैं।

जब वह छह साढ़े छह की हुई थीं। एक दिन उनके घरवाले जल्दी–जल्दी तैयार होने लगते हैं। जब उन्हें छोटे भाई से पता चलता है कि उनके माता–पिता पप्पू को लेकर फिल्म देखने जा रहे हैं। वह भी फिल्म देखने की जिद्द करती हैं, परंतु उन पर कोई ध्यान नहीं दिया जाता और उनके माता–पिता भी उन्हें फिल्म दिखाने के लिए अपने साथ नहीं ले जाते। उनका करूण–क्रंदन भी उनके माता–पिता को पिघला नहीं पाया था।

'अपनी यह पराजय मेरा मन स्वीकार नहीं रहा था। उपेक्षा के गहरे आघात से मैं विकल हो उठी।' (पृष्ठ13)

छोटी उम्र में यह साधारण–सी घटना उन्हें भीतर तक उद्वेलित कर देती है। जब वे स्कूल जाना शुरू करती हैं। स्कूल जाने के लिए बच्चों को माता–पिता अच्छे से तैयार करते हैं, परंतु उनके साथ ऐसा नहीं होता था। उन्हें इस तरह तैयार किया जाता कि वह और ही अनाकर्षक लगतीं। स्कूल में वह अकेली होती थीं। उनके साथ कोई बच्चा साथ नहीं होता था। इस स्थिति में उनका आत्मविश्वास खंडित होता था। वह स्कूल में सहमी–सहमी रहतीं। जब कोई चीज पढ़ाई जाती, यदि वह उन्हें समझ में नहीं आती तो कोई टीचर उनसे कुछ पूछता भी नहीं था। टीचर जो कुछ ब्लैकबोर्ड पर लिख देता, उसे ही वह अपनी कॉपी में उतार लेतीं। जब उन्हें होमवर्क मिलता तो घर में उन्हें कोई भी मदद नहीं करता था।

पिता डेसू में क्लर्क थे। पब्लिक स्कूल में काफी खर्च होते थे। जब उन्होंने

देखा कि पब्लिक स्कूल में उनकी कोई खास प्रगति नहीं है तो उन्हें सरकारी स्कूल में डाल दिया जाता है। सरकारी स्कूल में क्या होता है, सभी को पता है। जब उन्हें होमवर्क मिलता, वह स्वयं किसी की मदद से कर लेती थीं, परंतु गणित नहीं कर पाती थीं। तब वह उनके क्लास का लड़का जिसका नाम अनुपम होता है, उससे मदद लेती थीं।

विशिष्ट अवसरों पर स्कूल में जब कोई सांस्कृतिक कार्यक्रम का आयोजन किया जाता या अन्य गतिविधियाँ होतीं, उनकी व्यग्रता बढ़ जाती। उनका भी मन होता, उन गतिविधियों में शामिल होने के लिए, तब उनके निवास स्थान पर मनाए जानेवाले श्री कृष्ण जन्माष्टमी महोत्सव में उन्हें नाच में भाग लेने का मौका मिलता है। उस दिन वह बहुत खुश होती हैं।

'मेरी छोटी–छोटी आँखों में खुशियों का मानो सागर हिलोरें ले रहा था।'(पृष्ठ 19)

'जीवन में घटित कुछ अति साधारण घटनाएँ कभी–कभी इतना गहरा असर डालती हैं कि मन में कहीं भीतर तक बैठ जाती हैं।' (पृष्ठ 21) ऐसी ही एक घटना उनके साथ स्कूल में घटती है। तब वह पब्लिक स्कूल में पढ़ती थीं। उनके स्कूल से पिकनिक टूर पर जाना था। वह पिकनिक जाने की तैयारी करती हैं। उनका उत्साह देखने लायक होता है। नियत समय पर स्कूल से बस निकलती है। बस चिल्ड्रेन पार्क के बाहर खड़ी कर दी जाती है अध्यापिकाएँ बच्चों को आदेश देती हैं कि वे कुछ खा–पी लें। जब सभी खा–पी लेते हैं, तभी उनकी कक्षा की एक अटेंडेंट उन्हें बुलाती है और बातों में लगाकर पार्क में थोड़ी दूर ले जाती है। उसकी बात पर वह खीजती हैं। जब वह नियत जगह पर वापस आती हैं, पर उन्हें वहाँ कोई बच्चा नहीं मिलता है। उनके पूछने पर जवाब मिलता है, वे थोड़ी देर में आनेवाले हैं। वह सवाल करती हैं, उन्हें छोड़कर क्यों चले गए वे। वह उनका इंतजार करती हैं। पार्क में दूसरे स्कूल के भी बच्चे आए हुए होते हैं। सभी अपनी–अपनी तरह से घूम रहे होते हैं। वह दूर बैठी ये सब देख रही होती हैं। उन्हें क्यों बिठाया गया, ये बात उन्हें समझ में नहीं आती है। अचानक उनके शरीर में करंट दौड़ जाता है, जब उनके स्कूल के बच्चे उन्हें नजर आते हैं, परंतु वे तो पार्क से बाहर निकलने वाले गेट की तरफ जा रहे होते हैं। उनकी आस धाराशायी हो जाती है कि वह पार्क में बच्चों के साथ अपनी तरह से सैर करेंगी।

'मेरा चेहरा फक सफेद पड़ गया व दिल में हौल उठने लगी।' (पृष्ठ 25) वह मैम से गिड़गिड़ाती हैं, परंतु वह उनकी कुछ नहीं सुनती है और एक अटेंडेंट द्वारा उन्हें गोद में उठाकर बस की सीट पर बिठा दिया जाता है। उन्हें अपनों से मिली चोटें विह्वल कर देती हैं। वह आज तक नहीं जान पाईं कि पार्क में घुमाना ही नहीं था तो उन्हें साथ क्यों लाया गया था।

जब वह कक्षा पाँच उत्तीर्ण कर जाती हैं तो उनके रहने की जगह बदल जाती

है। पिता को फ्लैट आवंटित किया जाता है। उन्हें वहीं के सरकारी स्कूल में दाखिला करवा दिया जाता है, जहाँ बुनियादी सुविधाओं का अभाव होता है। यह स्कूल उनके घर से करीब डेढ़ किलोमीटर की दूरी पर होता है। पिता उन्हें स्कूल छोड़ आते थे, परंतु वापस लौटने की कोई व्यवस्था नहीं की गई थी। शारीरिक अक्षमता के चलते कड़कड़ाती धूप में चलकर आना उनके लिए अत्यंत कष्टप्रद होता था। जब वह स्कूल से वापस आती थीं, रास्ते में सभी की दृष्टि के केंद्र में आ जाती थीं। यह स्थिति उनके लिए अत्यधिक पीड़ादायक होती थी। छुट्टी की घंटी बजते ही उनका मन भारी हो उठता था। एक दिन छुट्टी के बाद स्कूल से निकलते ही दिल्ली परिवहन निगम की बस रूकती है। वह उसमें चढ़ जाती हैं और दस मिनट के बाद घर पहुँच जाती हैं। जल्दी घर आया देख उनकी माँ उनसे सवाल करती हैं– 'आज इतनी जल्दी कैसे आ गई?' (पृष्ठ 30) वह कैसे बस में चढ़ती है, इस पर भी उनसे सवाल पूछे जाते हैं। उनकी माँ को उनके बस से आने में अच्छा भी लगता है।

उनके पड़ोस में एक गोयल परिवार होता है। मिसेज गोयल दोपहर में उनकी माँ से बतियाने आ जाती थी। उनका भी आना–जाना उस परिवार में शुरू हो जाता है। उस परिवार में नियमित रूप से नंदन, चंदामामा नाम की बाल पत्रिकाएँ आती थीं। उन्हें पढ़ने की ऐसी लत लगती है कि वह हर माह उनके आने का इंतजार करती थीं। वह जहाँ भी जातीं, किताबों पर विशेष नजर रखती थीं। पढ़ने की भूख उनकी इतनी बढ़ गई थी कि वह एक स्थानीय लाइब्रेरी ज्वाइन कर लेती हैं और उसकी सदस्य बन जाती हैं। परंतु जब वह दूसरे फ्लैट में जाती हैं तो वहाँ कोई लाइब्रेरी नहीं होती है, परंतु गुलशन नंदा, प्रेम बाजपेयी आदि के उपन्यास पचास पैसे रोज के किराए पर पढ़ने को मिल जाते हैं। वह जो प्रोत्साहन, दिशा–निर्देश व प्रेरणा व्यक्तियों में ढूँढ़ती थीं, वह उन्हें किताबों में मिलती है। उनका आत्मविश्वास धीरे–धीरे बढ़ता है और सारा ध्यान पढ़ाई में लगाती हैं। टीचरें उनकी सराहना करते हैं और स्कूल की लड़कियों से भी दोस्ती हो जाती है। माँ–पिता उनकी विकलांगता का बोझ दूसरे पर नहीं डालना चाहते हैं। उनकी सोच थी, उनकी लड़की है तो उनसे जो बन पड़ेगा, उनके लिए वे करेंगे। उनके भाई कभी भी साइकिल पर बिठाकर कहीं नहीं ले जाते हैं। उन्हें कहीं भी जाना होता था, वह अकेली ही जाती थीं। माँ से वह घरेलू काम को भी निपटाना सीख लेती हैं, परंतु उन्हें काम करने भी नहीं दिया जाता था। एक विकलांग बच्चे की क्या–क्या आवश्यकताएँ होती हैं, उन्हें किसी ने समझने की कोशिश नहीं की। इसका सुखद परिणाम यह होता है कि वह अपनी समस्याओं से खुद लड़ना सीख जाती हैं। और वह ग्यारह वर्ष की उम्र में दिल्ली परिवहन निगम की बसों में यात्रा करने लग जाती हैं।

छठी क्लास में उनकी एक सवर्ण लड़की से दोस्ती होती है। परीक्षा के समय

वह उसकी मदद कर देती थीं। जब लड़की के भाई का विवाह होना होता है तो उस मौके पर वह जाती हैं, परंतु लड़की उनसे कटी–कटी रहती है, जबकि वह उसके घरेलू कामों में उसकी मदद करना चाहती हैं। लेकिन उनसे मदद नहीं ली जाती है। इसके पीछे का कारण यह होता है कि वह साधारण रूप–रंग, कद–काठी एवं कपड़े से उन्हें दलित होने की चुगली कर रहे होते हैं। जब इनके भाई की शादी होती है तो उस लड़की के परिवार को भी आमंत्रित किया जाता है, परंतु जब उसके परिवार को नाश्ता दिया जाता है तो लड़की के परिवारवाले नाश्ता करने से मना कर देते हैं।

बारहवीं के बाद वह दिल्ली के कमला नेहरू कॉलेज में बी.ए. की पढ़ाई के लिए दाखिला लेती हैं। वहाँ की लड़कियाँ संभ्रांत घरों की होती हैं, जो आधुनिक परिधानों में सजी–संवरी होती हैं। वह उनके बीच अपने लिए कोई जगह नहीं बना पाती हैं। उनके अनुसार– विकलांग व्यक्ति के मित्रों की संख्या बहुत सीमित होती है। (पृष्ठ 40) जब वह साहित्य से जुड़ती हैं, उनकी दृष्टि को विस्तार मिलता है। जब वह बी.ए. द्वितीय वर्ष में होती हैं, तब उन्हें लाइब्रेरी जाने के दौरान राजनीतिक विज्ञान की लेक्चरर सुजाता वर्मा मिलती हैं। उनसे बातें होती हैं और सुजाता वर्मा उनसे कहती हैं–शाबास, बहुत बहादुर हो तुम। –(पृष्ठ 42) उनके बारे में ऐसा पहली बार ही कोई कहता है। वह चौंक पड़ती हैं। परंतु यह खुशी ज्यादा दिन नहीं रह पाती। सुजाता वर्मा कमला नेहरू कॉलेज की नौकरी छोड़ दूसरे कॉलेज में चली जाती हैं। सुजाता वर्मा का जिस दिन आखिरी होता है, वह कढ़ाई किए हुए लेडीज रूमालों का एक सेट उन्हें भेंट करती हैं। तब सुजाता वर्मा अपनत्व के साथ उन्हें गले लगा लेती हैं।

जब वह एम.ए. (हिंदी) में दिल्ली विश्वविद्यालय में दाखिला लेती हैं, वहाँ का वातावरण साफ–सुथरा होता है, परंतु वहाँ भी उन्हें किसी से मित्रता नहीं हो पाती है। ऐसे वातावरण में उन्हें घोर निराशा होती है।

'जीने तक की इच्छा खत्म होने लगती है इन क्षणों में। '(पृष्ठ 49)

आज के विख्यात रामदरश मिश्र, विश्वनाथ त्रिपाठी, नित्यानंद तिवारी, निर्मला जैन से शिक्षा ग्रहण के दौरान उनकी भी इच्छा होती है लेक्चरर बनने की। उन प्रोफेसरों द्वारा उन्हें भरपूर मार्गदर्शन, प्रोत्साहन मिलता है, परंतु विश्वनाथ त्रिपाठी से कुछ पूछने पर 'बाद में आना' कहकर टालते हैं, जबकि बाद में उनकी पीएचडी उनके ही निर्देशन में होती है।

शारीरिक रूप से विकलांग व्यक्तियों के लिए बैंकों में स्पेशल भर्ती में उन्हें स्टेट बैंक पटियाला में कैशियर कम क्लर्क के पद पर उनकी नियुक्ति हो जाती है, जबकि बैंक की नौकरी उनका ध्येय न होते हुए भी आर्थिक स्वतंत्रता के लिए जरूरी थी। इस प्रकार वह साहित्य की दुनिया में विचरने वाली पैसे के लेन–देन की दुनिया में विचरने लगती हैं। बैंक में कुछ युवक अविवाहित भी होते हैं और अपनी जीवन संगिनी की

प्रतीक्षा में रत होते हैं, परंतु वह विवाह के रिजेक्टेड पीस होती हैं। इसके बारे में वह सोच भी नहीं सकती हैं। लंच टाइम में वह पुस्तकें पढ़ती होती हैं। जब उनकी सहकर्मी अपनी सास–ननद के किस्से में व्यस्त होती हैं, परंतु इस दौरान भी वह अपने शोध निर्देशक से फोन पर समय नियतकर उनसे मिलने जाती हैं। ऐसे में भी उनका शोध कार्य चलता होता है। इसमें उन्हें कड़ी मेहनत करनी पड़ रही थी। आने–जाने के लिए वह तिपहिया वाहन खरीद लेती हैं। पहली बार जब वह तिपहिया चलाती हैं तो वह रोमांच से भर उठती हैं, जबकि उनके पिता तिपहिया से जाने पर चिंता जाहिर करते हैं, पर वह उन्हें आश्वस्त करती हैं।

उनके पिता को कानून की अच्छी समझ थी। उनसे सलाह लेने के लिए सवर्ण भी आते थे। वह एक घटना का जिक्र करती हैं। उनके पिता के दफ्तर का एक सवर्ण कर्मचारी उनके पास कुछ सलाह लेने आता है, परंतु उसे जब चाय पीने के लिए दी जाती है, तब वह खुलकर नहीं पी पाता है। जब चाय ठंडी हो जाती है, तब वह इधर–उधर झाँककर एक ही बार में चाय पी जाता है।

उनके बड़े भाई का जब विवाह होता है, तब परिचित–रिश्तेदारों को मिठाइयाँ बाँटी जाती हैं। उनके पिता अपने एक सहकर्मी के घर मिठाई का डिब्बा भिजवाते हैं। वह किसी तरह सहकर्मी मिठाई का डिब्बा रख तो लिया जाता है, परंतु उसे मेहतरानी को दे देता है। इन सब घटनाओं से उन्हें अपमान एवं दुख होता है।

जिस बैंक में वह काम करती हैं, वह उनके आवास से दूर पड़ता है। वह घर के पासवाली शाखा में प्रार्थना पत्र देकर स्थानांतरण करवा लेती हैं। उस शाखा में एक सुदर्शन लड़का अक्सर आया करता है। काम करने के दौरान उससे बातचीत भी होती है। वह उन्हें अक्सर देखा करता है, जिसकी ताप वह महसूस करती हैं। वह यह भी सोचती हैं, भला वह उसे क्यों देखेगा? संभवतः उन्हें ऐसा भ्रम भी हो सकता है। वह यह कतई मानने के लिए तैयार नहीं होती हैं। वह उसकी पसंद हो सकती है, परंतु जब उनकी फोन पर बातें होने लगती हैं तब उन्हें लगता है कि उनकी दुनिया ही बदल गई है। परंतु जब वह उन्हें यह सूचना देता है कि वह नौकरी के सिलसिले में कनाडा जा रहा है। उनका सबकुछ बदल जाता है, जैसे वह सपने में जी रही हैं और सपने भी कहाँ सच की धरातल पर खरे उतरते हैं।

उनकी पीएचडी पूरी होते–होते वह सत्ताईस की हो जाती हैं। रिश्तेदारों में उनकी उम्र की सारी लड़कियों के विवाह पहले ही हो चुके होते हैं। वह उद्‌विग्न और निराश हो जाती हैं। ऐसे समय में उनके पास कोई नहीं होता है, जिससे वह अपने अवसाद को बाँट सकें। सामाजिक अस्वीकृति से जीवन जीना कितना कठिन होता है, वह समझती हैं। उनके पिता उनके विवाह के लिए कई बिचौलिओं से संपर्क साधते हैं, परंतु कहीं बात नहीं बनती। उनके माता–पिता अपनी विकलांग बेटी के लिए

शारीरिक रूप से सक्षम लड़का ढूँढ़ने की कोशिश करते हैं, चाहे लड़का जैसा भी हो। एक तरह से उनके माता–पिता बिचौलिए के भरोसे बैठ जाते हैं। अंत में सारा लोक–लाज छोड़कर समाचार–पत्र में वह स्वयं विज्ञापन देती हैं। विज्ञापन से उनके पास बहुत पत्र आते हैं, परंतु यहाँ भी झोल होता है। विज्ञापन की आड़ में लोग अपना मनोरंजन करते हैं। लड़का–वड़का नहीं होता है, केवल मुलाकात के नाम पर नाश्ता–पानी और खातिरदारी का आनंद उठाते हैं।

उनके मामा समाचार–पत्र में किसी लड़के द्वारा दिए गए विज्ञापन को पढ़कर विज्ञापनदाता लड़के से संपर्क करते हैं। लड़का उत्तरप्रदेश के स्वास्थ्य विभाग में फार्मासिस्ट होता है। उसकी शिक्षा एम.ए. तक होती है, परंतु तब भी उनके मन में शंकाएँ होती हैं। जब स्वयं उस लड़के से मिलते हैं। सवाल करने पर लड़का जवाब देता है– तमाम तरह की मानसिक विकलांगताओं को झेलने के बजाय शारीरिक विकलांगता को अनदेखा करना ज्यादा न्यायोचित है। (पृष्ठ 74) दोनों वैवाहिक बंधन में बँधने के लिए तैयार होते हैं। इस संबंध में सारा कुछ हो जाने पर लड़के के भाई और भाभी आते हैं। लड़के के भाई तटस्थ रहते हैं, परंतु भाभी लड़के पर भड़क उठती हैं।

तमाम तरह के हंगामे, नाराजगियों के बाद उनका विवाह हो जाता है, परंतु विवाह के बाद तुरंत ही उन्हें पता चल जाता है कि जिससे उनका विवाह हुआ है, उनकी कसौटी पर वह बिलकुल खरा नहीं है। उसमें कुछ भी ऐसा नहीं है, जो उनके मन से मेल खाता हो। ससुराल में दिल्ली जैसी सुविधाएँ नहीं हैं।

विवाह के कुछ दिनों के बाद ही वह गाजियाबाद आ जाती हैं। वहाँ तीन कमरों का किचन, बाथरूम सहित सरकारी मकान, जो उनके पति सतीश को आवंटित होता है। इस प्रकार उनकी गृहस्थी खट्टे–मीठे अनुभवों के साथ शुरू हो जाती है।

कुछ दिनों के बाद वह अपने पति के साथ पुष्प विहार आ जाती हैं। पुष्प विहार आते ही उनकी पी.एचडी का वायवा हो जाता है। उनकी बैंक की एवं पति की नौकरी होने से जिंदगी सुकून से कट रही होती है। परिवारवालें उनसे जल्दी संतान की अपेक्षा लगा लेते हैं, क्योंकि उनके पति के बड़े भाई जो विवाह के बीस वर्ष के बाद भी संतानसुख से वंचित थे। उन्हें भी आपत्ति नहीं होती है, परंतु अपने हाथ में कुछ नहीं होता है। पुष्प विहार के अपने उस घर में तीन बार उम्मीद से होती हैं, परंतु किसी नामालूम कारण से नाउम्मीद होना पड़ता है। उनके जीवन में न जाने कितनी परीक्षाएँ होनी होती है। विकलांग और दलित होने के अभिशाप तो होते ही हैं। वह उपवास, मन्नत न मानते हुए अस्पताल की शरण में जाती हैं। इसका नतीजा होता है कि उनके वेतन का अधिकांश हिस्सा इलाज में ही चला जाता है। पुष्प विहार से उनके पति को अपने कार्यस्थल पहुँचने में बहुत समय व ऊर्जा खर्च हो जाती है। अनथक प्रयास के बाद भी उनके पति दिल्ली अपना स्थानांतरण नहीं करवा पाते हैं। वह बैंक से लोन

लेकर घर खरीदना चाहती हैं। पहले उनकी सोच होती है कि लेक्चरर का जॉब मिलने पर, जिस कॉलेज में उनकी पदस्थापना होगी, उसके आस–पास ही घर लेने की। अनेक इंटरव्यू के बाद भी वह लेक्चरर नहीं बन पाती हैं। इस प्रकार वह एक फ्लैट जिसका क्षेत्रफल सौ गज का होता है, खरीदती हैं। फ्लैट को वह अपने तरीके से सजाती हैं। उनके पति सतीश गाजियाबाद शहर में अपना स्थानांतरण करवा लेते हैं। उन्हें अब कार्यस्थल जाने में समय नहीं लगता है, परंतु उनका एक सपना अब भी अधूरा होता है, उनके लेक्चरर बनने का। जिसके लिए वह कड़ी मेहनत करती रही हैं।

शहरी परिवेश में भी दलित उत्पीड़न होते हैं, परंतु वे बाह्य न होकर आंतरिक होते हैं। इस प्रकार की कई घटनाएँ उनके साथ घटती हैं। परंतु तथाकथित सवर्ण ये भी जानते होते हैं, जातिगत आक्षेप उन्हें मुसीबत में डाल सकते हैं।

काफी भागदौड़, इंटरव्यू के बाद आखिर में श्यामलाल कॉलेज (सांध्य) में वह लेक्चरर चुन ली जाती हैं। यह सूचना उनके लिए एक तरह से अविश्वसनीय होता है– 'मुझे लगा मेरे पैरों के नीचे से जमीन निकल गई है। मैं मानो आसमान में उड़ रही हूँ।' (पृष्ठ 100) दो महीने के बाद उन्हें दूसरी खुशी भी मिलती है कि वह उम्मीद से हो गई हैं। एक तरह से उनके जीवन में एक सुखद मोड़ आता है।

नन्हें शिशु के घर आ जाने से दोनों पति–पत्नी खुश तो होते ही हैं, उनके ससुरालवाले भी खुश होते हैं। ससुराल से उनके मान–सम्मान मिलने में कोई कमी नहीं होती है। प्रसव से पूर्व उनका भरपूर ख्याल रखा जाता है। अब उनका जीवन अति व्यस्त हो जाता है। पहले उनके पास वेस्पा स्कूटर होता है, परंतु शुभम (उनका पुत्र) के जन्म के महीने दिन के बाद ही वह मारुति 800 कार खरीद लेती हैं। जिस घर में वह रह रही होती हैं, उन्हें आने–जाने में कई असुविधाएँ होती हैं। वह दूसरे मकान की तलाश में होती हैं। फिर वह उस घर को बेचकर रामप्रस्थ नामक कॉलोनी में दो हजार गज भूतल पर बने एक मकान में आ जाती हैं। घर के सामने पार्क भी होता है, जिसमें शुभम खूब धमाचौकड़ी मचाता है। सतीश तो उसमें टहलने भी जाते हैं सुबह–सुबह।

अब उनकी सारी स्थितियाँ सामान्य–सी हो गई होती हैं। बचपन के लिखने–पढ़ने का शौक फिर से जवान होने लगता है और अपने समाज को विषय बनाकर वह लिखना शुरू कर देती हैं। उनका लिखा रमणिका गुप्ता द्वारा संपादित पत्रिका 'युद्धरत आम आदमी' में छपती है। उनकी पहली रचना एक कहानी होती है, जो केंद्रीय हिंदी निदेशालय की पत्रिका 'भाषा' में छपती है। अखबारों में उनकी कविताएँ भी छपती हैं। जिस प्रकार हर रचनाकार अपनी पहली रचना के छपने पर खुश होता है, उसी प्रकार वह भी खुश होती हैं। जब भी उन्हें समय मिलता है, वह लिखने लग जाती हैं। इसी क्रम में उनकी मुलाकात कई दलित लेखकों से होती है। अब तो वह

साहित्यिक कार्यक्रमों में भी जाने लगती हैं।

जिंदगी की जिस जद्दोजहद से उन्होंने साहस और धैर्यपूर्वक सामना किया, इसका उन्हें परिणाम भी मिलता है। उनके दोनों बेटे आई.आई.टी जैसे देश की सबसे कठिन परीक्षा में उत्तीर्ण होते हैं, साथ ही उन्हें जिंदगी जीने की जो सुविधाएँ चाहिए, वे हासिल होती हैं। समग्र रूप से देखा जाए तो 'टूटे पंखों से परवाज तक' संघर्ष और हासिल का दस्तावेज है।

❑❑❑

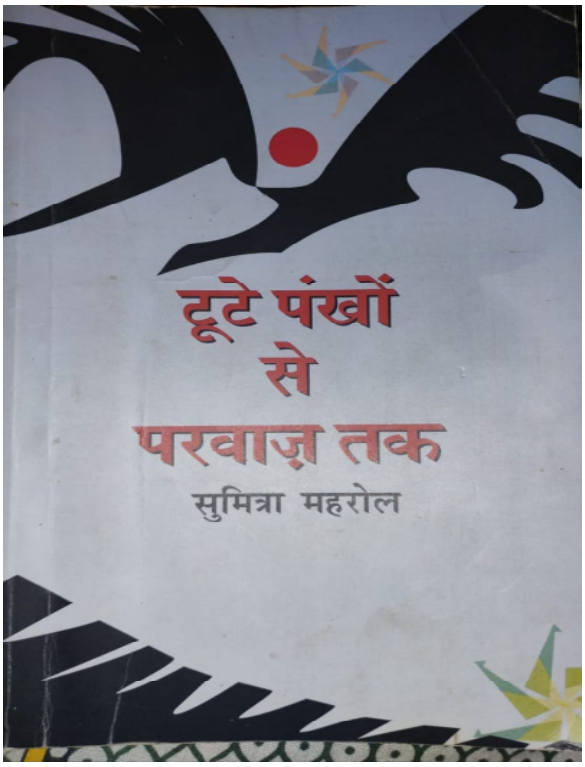

संपर्क सूत्र

1. चक्रधर त्रिपाठी, कुलपति, ओडिशा केंद्रीय विश्वविद्यालय, कोरापुट–763004

   फोन–9777599280 , ई मेल– chakra.vb@rediffmail.com

2. सुधा सिंह, 227, कनिष्क अपार्टमेंट, सी एंड डी ब्लॉक, शालीमार बाग, दिल्ली–110088

   फोन– 9718539322, ई मेल–2sudhasingh21@gmail.com

3. दिनेश कुमार चौबे, अध्यक्ष, हिंदी विभाग, पूर्वोत्तर पर्वतीय विश्वविद्यालय, नेहू, शिलांग, मेघालय–793022

   फोन–9436312134, ईमेल– dkcnehu76@gmail.com

4. ओम विकास, सी–15, तरंग अपार्टमेंट्स, 19 आई.पी.एक्सटेंशन, दिल्ली–110092

   फोन–9868404129, ई मेल–dr.omvikas@gmail.com

5. कोयल विश्वास, एसोसिएट प्रोफेसर एवं विभागाध्यक्ष (हिंदी), माउंट कारमेल कॉलेज, नं–58, पैलेस रोड, वसंतनगर, बंगलौर–560052

   फोन–9035042342, ई मेल–koyalbiswas@gmail.com

   Koyal Biswas, Associate professor and HOD, Hindi Mount Carmel College, No-58, Palace Road, Vasanthnagar, Bangalore-560052

6. ब्रजलता शर्मा, फ्लैट नंबर–307, टावर–2, ए.वी.जे. होम्स, सेक्टर– बीटा–2, ग्रेटर नोएडा, गौतम बुद्ध नगर, उत्तर प्रदेश–201310

   फोन–8826440688, ई मेल–brajlata1976@gmail.com

7. प्रियंका, सहायक प्राध्यापक, हिंदी विभाग, माउंट कारमेल कॉलेज, स्वायत्त, बैंगलोर–560052

   फोन–7290859844, ई मेल–prix3030@gmail.com

   Priyanka, Asst. professor, Deptt. of Hindi, Mount Carmel College (Autonomous) Bangalore-560052

8. गुंजन शर्मा, स्कूल ऑफ एजुकेशन स्टडीज, अंबेडकर विश्वविद्यालय, लोधी रोड़ कैंपस, नई दिल्ली–110003

   फोन– 9899445849, ई मेल– gunjan@aud.ac.in

9. अजय कुमार सिंह, स्कूल ऑफ एजुकेशन स्टडीज, इंदिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय, दिल्ली–110068

फोन–9811601175, ई मेल– ajays@ignou.ac.in

10. अमन कुमार, एफएफसी, कौशल्या अपार्टमेंट, संत अपार्टमेंट के पास, शक्ति एन्क्लेव, बुराड़ी, शालीमार महल के पास, दिल्ली–110084

फोन–9310720047, ई मेल–amanp62@kmc.du.ac.in

11. प्रियंजन शर्मा, 318 सिविल बाज़ार, दारी रोड़, धर्मशाला काँगड़ा, हिमाचल प्रदेश–176215

फोन–7780855042, ई मेल–prianjansharma@gmail.com

12. विवेकानन्द, पी–एच.डी (शोधार्थी) हिंदी विभाग, त्रिपुरा विश्वविद्यालय, एन एच 8, यूनिवर्सिटी रोड, सूर्यमणिनगर, मधुपुर, अगरतला, त्रिपुरा–799022

फोन–9621224500, ई मेल–vivekanandyadav386@gmail.com

13. अखिलेश आर्येंदु द्वारा आर्यन क्लासेज, 500/7 गली नं–5, विश्वास नगर, शाहदरा, दिल्ली–110032

फोन–9868235056, ई मेल–akhilesh.aryendu@gmail.com

14. वाय जी काले, फ्लैट नं–201, साई 19 अपार्टमेंट, गुरुकुल विद्या मंदिर के नजदीक, अनुपम सोसायटी, नागपुर–440013

फोन–9422981220, ई मेल–sharma_abhinay@yahoo.co.in

Y G Kale, Flat no. 201, Sai 19 apartment, near Gurukul Vidya Mandir School, Anupam Society, Nagpur-440013

15. अभिनय कुमार शर्मा, फ्लैट नं–201, साई 19 अपार्टमेंट, गुरुकुल विद्या मंदिर के नजदीक, अनुपम सोसायटी, नागपुर–440013

फोन–9422981220, ई मेल–sharma_abhinay@yahoo.co.in

Abhinay Kumar Sharma, Flat no. 201, Sai 19 apartment, near Gurukul Vidya Mandir School, Anupam Society, Nagpur-440013

16. राजेन्द्र कुमार सेन आचार्य, हिंदी विभाग भाषा, साहित्य एवं संस्कृति संकाय पंजाब केन्द्रीय विश्वविद्यालय गाँवः घुद्दा, बादल–बठिंडा मार्ग जिला बठिंडा, पंजाब–151401

फोन–9888618975, ई मेल–rajinder.kumar@cup.edu.in

17. योगेन्द्र नाथ शर्मा ''अरुण'' पूर्व प्राचार्य एवं अध्यक्ष, हिंदी विभाग, 74/3, न्यू नेहरूनगर, रूड़की–247667 (उत्तराखंड)

    फोन–9412070351, ई मेल–ynsarun@gmail.com

18. कुमकुम शर्मा, 1/47, बहार–ए, सहारा स्टेट्स जानकीपुरम, लखनऊ–226021

    फोन–8960000962, ई मेल–sharmak229@gmail.com

19. रजनी दिसोदिया, 10, मिरांडा हाउस, शिक्षक निवास, छात्र मार्ग, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली–110007

    फोन–9810019108, ई मेल–rajni.disodia@gmail.com

20. डॉ. जसवीर त्यागी, एसोसिएट प्रोफेसर, हिंदी–विभाग, राजधानी कॉलेज, राजा गार्डन, दिल्ली–110015

    फोन–9818389571, ई मेल–drjasvirtyagi@gmail.com

21. रुमी लस्कर बोरा, निबिड़ालय, सिक्स माइल, सूरजनगर, त्रिवेणीपथ, हाउस नं–30, गुवाहाटी–781022

    फोन–8638308794, ई मेल–rumi.laskar.bora@gmail.com

    Rumi Laskar Bora, Nibiralay Six Mile Surujnagar, Tribenipath, House no-30, Guwahati-781022

22. विजय कुमार यादव, सुरभि अपार्टमेंट, फ्लैट– 3डी, 4/2, बनर्जीपाड़ा रोड, पो. तालपुकुर, बैरकपुर, जिला–उत्तर 24 परगना (पश्चिम बंगाल)–700123

    फोन–9619888793, ई मेल–vijayuco@yahoo.com

    Vijay Kumar Yadav, Suravi Apartment, Flat-3D, Banerjeepara Road, P.O. Talpukur, Barrackpore, Dist. North 24 Parganas (W.B.) PIN- 700123

23. श्रीविलास सिंह, फ्लैट न. 402/T-5 सिविटेक फ़्लोरेंशिया, रामप्रस्थ ग्रीन्स, वैशाली, गाजियाबाद–201010

    फोन–8851054620 ई मेल–singhsbirs@gmail.com

24. मोहम्मद जमील अहमद, अध्यक्ष, हिंदी विभाग, तेलंगाना विश्वविद्यालय, दिचपल्ली, निज़ामाबाद, तेलंगाना–503322

    फोन–9989734326, ई मेल–ahmedjameelmd@gmail.com

    Md. Jameel Ahmed, Head, Deptt. of Hindi, Telangana University, Dichpally, Nizamabad, Telangana-503322

25. पार्वती तिर्की, सहायक प्रोफेसर, सोसो मोड़, कार्तिक नगर, दुंदुरिया, जिला–गुमला, झारखंड–835207

फोन–9262235165, ई मेल–ptirkey333@gmail.com

26. ओम निश्चल, जी–1/506 ए, उत्तम नगर, नई दिल्ली–110059

फोन–9810042770, ई मेल–dromnishchal@gmail.com

27. वेदप्रकाश अमिताभ, डी–131, रमेश विहार, अलीगढ़–202007

फोन–9837004113, ई मेल–amittabhved1947@gmail.com

28. सुमित्रा महरोल, डी–160, ग्राउंड फ्लोर, रामप्रस्थ कॉलोनी, गाजियाबाद–201011

फोन–9650466938, ई मेल–drsumitra21@gmail.com

29. विपिन बिहारी, 61बी, रेलवे कॉलोनी जपला, पलामू, झारखंड–822116

फोन–8298139504, ई मेल–writervipinbihari@gmail.com

❑❑❑

केंद्रीय हिंदी निदेशालय
भाषा पत्रिका की सदस्यता हेतु आवेदन पत्र

सेवा में,

निदेशक

केंद्रीय हिंदी निदेशालय, उच्चतर शिक्षा विभाग,

शिक्षा मंत्रालय, पश्चिमी खंड–7, आर. के. पुरम्, नई दिल्ली – 110066

ई.मेल – chdsalesunit@gmail.com

फोन नं. – 011–26105211 एक्सटेंशन नं. 201, 244

महोदय/महोदया,

कृपया मुझे भाषा (द्वैमासिक पत्रिका) का एक वर्ष के लिए / पाँच वर्ष के लिए/ दस वर्ष के लिए/ बीस वर्ष के लिए दिनांक ..... से सदस्य बनाने की कृपा करें। मैं पत्रिका का वार्षिक/ पंचवर्षीय/ दसवर्षीय/ बीसवर्षीय सदस्यता शुल्क ..... रुपए, निदेशक, केंद्रीय हिंदी निदेशालय, नई दिल्ली के पक्ष में नई दिल्ली स्थित अनुसूचित बैंक में देय डिमांड ड्राफ्ट सं. ..... दिनांक ..... भेज रहा/रही हूँ। कृपया पावती भिजवाएँ।

नाम : .....

पूरा पता : .....

.....

.....

मोबाइल/दूरभाष : .....

ई–मेल : .....

संबद्धता/व्यवसाय : .....

आयु : .....

पूरा पता जिस पर पत्रिका प्रेषित की जाए : .....

सदस्यता	शुल्क डाक खर्च सहित
वार्षिक सदस्यता	रु. 125.00
पंचवर्षीय सदस्यता	रु. 625.00
दसवर्षीय सदस्यता	रु. 1250.00
बीसवर्षीय सदस्यता	रु. 2500.00

सदस्यता शुल्क सीधे www.bharatkosh.gov.in – Quick Payment – Ministry (007 Higher Education)- Purpose (Education receipt) में digital mode से जमा करवाई जा सकती है।

डिमांड ड्राफ्ट निदेशक, केंद्रीय हिंदी निदेशालय के पक्ष में नई दिल्ली स्थित अनुसूचित बैंक में देय होना चाहिए। कृपया ड्राफ्ट के पीछे अपना नाम एवं पूरा पता भी लिखें।

नाम एवं हस्ताक्षर

नोटः कृपया पते में परिवर्तन होने की दशा में कम से कम दो माह पूर्व सूचित करने का कष्ट करें।

भाषा एकक द्वारा प्रकाशित भारतीय भाषाओं एवं हिंदी की विविध विधाओं के सर्वेक्षण पर आधारित 'वार्षिकी' पत्रिका के 2022 अंक के मूल्य निर्धारण हेतु दिनांक 15/02/2024 को आयोजित बैठक में बाहरी विशेषज्ञों श्री तरुण दवे और श्री अतुल सक्सेना के साथ भाषा एकक की संपादकीय टीम (दाएँ से डॉ.अनिता डगोरे, डॉ. किरण झा, श्रीमती मीनाक्षी जंगपांगी और श्री प्रदीप कुमार ठाकुर)

दिनांक 10–01–2024 से 12–01–2024 तक केंद्रीय हिंदी निदेशालय, शिक्षा मंत्रालय (उच्चतर शिक्षा विभाग), भारत सरकार तथा क्रिस्तु जयंती कॉलेज,बंगलूरु एवं कर्नाटक राज्य विश्वविद्यालय कॉलेज हिंदी प्राध्यापक संघ के संयुक्त तत्वावधान में 'भाषा' पत्रिका की ओर से 'राष्ट्रीय शिक्षा नीति–2020 और भारतीय भाषाएँ, विषय पर आयोजित राष्ट्रीय साहित्यिक परिसंवाद के उद्घाटन सत्र के बाद ली गई एक तस्वीर में बाहरी विशेषज्ञों (बाएँ से डॉ. राधाकृष्णन पी.ए., प्रो. नरेंद्र मिश्र, प्रो.सुखदेव सिंह मिन्हास, मोहनदास नैमिशराय और डॉ. एस. ए. मंजुनाथ) शोधार्थियों और विद्यार्थियों के साथ 'भाषा' पत्रिका की संपादक डॉ. अनिता डगोरे और सहायक निदेशक मीनाक्षी जंगपांगी।

पंजी संख्या. 10646/61
ISSN 0523-1418

भाषा (दवैमासिक)
BHASHA-BIMONTHLY
पी. ई. डी. 305.1.2024
700

भाषा

जनवरी–फरवरी 2024

केंद्रीय हिंदी निदेशालय
शिक्षा मंत्रालय, भारत सरकार
पश्चिमी खंड–7, रामकृष्णपुरम, नई दिल्ली–110066
दूरभाषः–011–20862356/26105211
एक्सटेंशन– 248/213/253
www.chd.education.gov.in
www.chdpublication.education.gov.in
bhashaunit@gmail.com